श्रीहर्षदेवप्रणीत

नागानन्दम्

सम्पादक

प्रो० हरिवंश लाल लूथरा

एम० ए०, बी० ए० (ऑनर्स)

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

गवर्नमेण्ट कालेज रोहतक

१९५८

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

दिल्ली — जालन्धर — लखनऊ

दो शब्द

पुस्तक आपके हाथ में है इसका मूल्यांकन करना तथा कुन्दमाला के उपलब्ध संस्करणों में इसका स्थान निर्धारित करना आपका काम है। हाँ, इतना लिख देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि आज से तीन वर्ष पूर्व हमने 'कुन्दमाला' का संस्करण प्रस्तुत किया था, छात्रों तथा महानुभाव प्राध्यापकों ने जिस चाव से उसका स्वागत किया है प्रस्तुत नाटक के सम्पादन के लिए हमें उसी से प्रेरणा एवं उत्साह मिला है।

छात्र तथा अध्यापक को पुस्तक अध्ययन करते समय व्याकरण तथा अनुवाद सम्बन्धी किसी भी कठिनाई के समाधान के लिए पृष्ठ न पलटना पड़े इस बात का हमने विशेष ध्यान रखा है। शाब्दिक किन्तु सुबोध अनुवाद संस्कृत श्लोकों का अन्वय समस्त समासों का विग्रह शब्द व्युत्पत्ति पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख नाट्य शास्त्र सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कई स्थलों पर नाटक के गुण दोषों का विवेचन तथा कठिन शब्दों के अर्थ यथा स्थान दिए गए हैं। भूमिका में हमने लेखक एवं नाटक सम्बन्धी प्रायः उन सभी समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो इण्टरमीडियट एवं अन्य उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुस्तक के अन्त पर कुछ उपयोगी परिशिष्ट भी जोड़ दिए गए हैं।

हम उन लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिनके 'नागानन्दम्' के भिन्न भिन्न संस्करणों से हमें विशेष सहायता मिली है।

पुस्तक के प्रकाशक महोदय के भी हम विशेष रूप से अनुगृहीत हैं जिन्होंने हमारी सुविधा का ध्यान रखते हुए इसे दिल्ली में न छपवा कर रोहतक में छपवाया है।

६२ माडल टाऊन
रोहतक
१३ अप्रैल १९५८

हरिवंश लाल लूथड़ा

भूमिका

नागानन्द के रचयिता—श्री हर्ष देव

सरस्वती तथा लक्ष्मी का एक ही स्थान पर सम्मिलन दुर्लभ है, किन्तु कभी कभी ऐसे व्यक्ति भी जन्म लेते हैं जो श्री सम्पन्न होते हुए भी शारदा का स्नेह-पात्र बन जाते हैं। "नागानन्दम्" नाटक के लेखक भी ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्हो ने सम्राट् होने के नाते राज्य भार के उत्तरदायित्व को निभाया है तथा साथ ही साथ साहित्य के क्षेत्र में भी प्रशसनीय योग दिया है।

नागानन्दम् के अतिरिक्त, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका—दो अन्य नाटक भी इन्ही महानुभाव के नाम से सम्बद्ध हैं। इन तीनो नाटको की प्रस्तावना में इन का नाम श्री हर्ष देव बताया गया है। इस के साथ ही लेखक के एक महान् सम्राट् तथा निपुण कवि होने की बात भी कही गई है किन्तु इस उल्लेख से इन के वश, स्थान एव काल के विषय में हमें कोई जानकारी प्राप्त नही होती। अत यह प्रश्न सहज ही उठ सकता है कि इन नाटकों के लेखक कौन से हर्ष देव हैं?

सस्कृत साहित्य में हर्ष नामक पाँच कवियो का उल्लेख मिलता है—

(१) नैषध चरित के लेखक श्री हर्ष (१२ वी शताब्दी)।
(२) काव्य प्रदीप के लेखक गोविन्द ठक्कुर के छोटे भाई (१५ वी शताब्दी)
(३) काश्मीर के राजा श्री हर्ष (११ वी शताब्दी का अतिम भाग)
(४) धारा-नरेश भोज के पितामह तथा मुञ्ज के पिता श्री हर्ष (दसवी शताब्दी का प्रारम्भिक काल)
(५) प्रभाकर वर्धन के पुत्र, थानेसर के राजा, हर्ष देव (६०६ ई० से ६४७ ई० तक)

प्रसिद्ध ग्रन्थो, दशरूपक तथा ध्वन्यालोक में, जिन की रचना क्रमश दसवी तथा नवीं शताब्दी में हुई है, हर्ष रचित तीन नाटकों का उल्लेख है। अत स्पष्ट

ही इन नाटकों की रचना नवी शताब्दी से पहले हो चुकी होगी। ऊपर के पांच कवियों में से थानेसर के राजा श्री हर्ष देव ही ऐसे हैं जिन का शासन-काल ६ वी शताब्दी से पूर्व का है। पहले दो लेखकों का तो वैसे भी राज्य गद्दी से कोई सम्बन्ध नही था। अत. हमें सहज ही यह स्वीकार करना होगा कि इन तीन नाटकों की प्रस्तावना में जिस हर्ष देव का उल्लेख है, वे श्री प्रभाकर वर्धन के सपुत्र, भारत के सातवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध सम्राट् श्री हर्ष वर्धन ही हैं।

हर्ष की नाटक-त्रयी

इन तीन नाटकों के कर्तृत्व की समस्या यहीं पर समाप्त नही हो जाती। 'काव्य प्रकाश के सुविख्यात लेखक मम्मट ने अपने ग्रन्थ में, काव्य को धनोपार्जन का साधन बताते हुए लिखा है कि धावक तथा कई अन्य कवियों ने श्री हर्ष से धन प्राप्त किया। ['श्री हर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्।'] इस की व्याख्या करते हुए टीकाकार उद्योतकार ने लिखा है कि धावक ने राजा हर्ष के नाम पर रत्नावली लिखकर बहुत से धन को प्राप्त किया। [धावक' सन्नामा कवि । स हि श्रीहर्षनृपनाम्ना रत्नावलीनाम्नीं नाटिकां कृत्वा बहुधन लब्धवानिति प्रसिद्धि'।]

मम्मट तथा उद्योतकार की इन उक्तियों के आधार पर कई आलोचकों ने इस मत को व्यक्त किया है कि वास्तव में ये तीन नाटक श्री हर्ष की रचनाएं नहीं हैं।

(१) परखारे तथा विलसन आदि आलोचकों के विचार में रत्नावली का वास्तविक लेखक धावक नाम का कवि था और उस ने रुपया ले कर इस नाटक को श्री हर्ष के पास बेच दिया था।

(२) प्रसिद्ध पश्चिमी आलोचक ब्यूहलर ने रत्नावली को बाण की रचना माना है। उन का यह मत उद्योतकार की टीका के उन काश्मीरी संस्करणों पर आश्रित है जिन में धावक के स्थान पर बाण का उल्लेख है। ब्यूहलर ने अपने मत की पुष्टि में रत्नावली तथा बाण-रचित हर्ष चरित में उपलब्ध एक समान श्लोक (द्विपान्यस्मादपि०) का हवाला भी दिया है।

(३) एक अन्य आलोचक कावल का मत है कि रत्नावली का लेखक बाण है तथा 'नागानन्दम्' का धावक और प्रियदर्शिका का रचयिता ज्ञात नही है।

किन्तु ये सभी धारणाएँ निर्मूल प्रतीत होती हैं। धावक की साहित्य साधना के सम्बन्ध में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। किसी भी अन्य उपलब्ध कृति से उस के प्रतिष्ठित लेखक होने का परिचय नही मिलता। बाण के तो इन में किसी एक अथवा अधिक नाटकों के रचयिता होने की सम्भावना तक नही की जा सकती क्योंकि इन नाटकों की सरल एवं प्रवाह पूर्ण और बाण की ओजस्वी तथा समास बहुला रचना शैली में पृथ्वी आकाश का अन्तर है।

इस के अतिरिक्त इन तीनों नाटकों की भाषा रचना शैली तथा विचार धारा में इतना अधिक साम्य है कि इन में से कर्तृत्व की दृष्टि से किसी एक नाटक को अलग कर सकना प्राय असम्भव है। तीनों नाटकों की स्थापना एक दूसरे से मिलती है। जिस श्लोक में श्री हर्ष के रचयिता होने की बात का उल्लेख है वह तीनों नाटकों में अक्षरश एक समान है। इन रचनाओं की कुछ उक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन निर्विवाद रूप से सिद्ध करता है कि ये तीनों कृतियाँ एक ही कलाकार की साहित्य साधना का परिणाम हैं। कुछ समान श्लोकों, वाक्यों एवं वाक्यांशों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

नागानन्दम्	प्रियदर्शिका
१ प्रथम अंक का चौदहवाँ श्लोक (०रक्ति व्यञ्जन०)	तृतीय अंक का दसवाँ श्लोक
२ चतुर्थ अंक का पहला श्लोक (अन्त पुराणाम्०)	तृतीय अंक का तीसरा श्लोक
३ कन्यका हि निर्दोषदर्शना भवति। (प्रथम अङ्क)	निर्दोषदर्शना कन्यका खलियम्। (द्वितीय अङ्क)
४ अये मध्यमाध्यास्ते नभस्तलस्य भगवान् सहस्रदीधित। (प्रथम अङ्क)	अये कथ नभोमध्यमध्यास्ते भगवान् सहस्रदीधित। (द्वितीय अङ्क)
५ शरदातपजनितोऽप्य म सतापोऽधिकतर बाधते। (द्वितीय अङ्क)	अधिक खलु शरदातपन सन्तसायद्यापि न मञ्ज्ञानि सन्ताप मुञ्चन्ति। (तृतीय अङ्क)

नागानन्दम	रत्नावली
१ न्याय्ये वर्त्मनि योजित प्रकृतय (प्र० अङ्क)	राज्य निर्जितशत्रु । (प्र० अङ्क)
२ भगवन् कुसुमायुध येन त्वं रूपशोभया निर्जितासि तस्य त्वया न किमपि कृतम् । मम पुनरनपराद्धाया अप्यबलेति कृत्वा प्रहरन्न लज्जसे । (द्वि० अङ्क)	भगवन् कुसुमायुध निर्जितसुरासुरो भूत्वा स्त्रीजने प्रहरन् न लज्जसे । (द्वि० अङ्क)
३. दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता । (तृ० अङ्क)	प्रणयविषदा दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता । (तृ० अङ्क)

प्रियदर्शिका और रत्नावली तो मानो एक ही कहानी के दो रूप हैं। दोनो चार अङ्को की नाटिकाएँ है। दोनो की 'नान्दी' मे शिव तथा पार्वती की स्तुति है। दोनो वत्सराज की परिणय कथा से सम्बद्ध हैं। दोनो में नायिका को एक जैसी कठिनाइयो का सामना करना पडता है तथा दोनो में ही वासवदत्ता स्वय अन्त में नायिका का हाथ राजा के हाथ में देती है। प्रो० जागीरदार ने अपनी पुस्तक Drama in Sanskrit literature मे तो यहाँ तक लिखा है कि "दोनो नाटक केवल इस लिए अलग अलग है क्योंकि उनके नाम अलग अलग है और उनके नाम इस लिए अलग है क्योंकि उनकी नायिकाओं के नाम एक दूसरे से भिन्न हैं। यथार्थ में उन दो में विशेष अन्तर नही है।" उनके विचार मे रत्नावली प्रियदर्शिका का ही सशोधित रूप है।

तीनों नाटकों में इतना अधिक साम्य उपस्थित होने पर हम निर्विवाद रूप से कह सकते है कि इनकी रचना का श्रेय एक ही व्यक्ति को प्राप्त है तथा

निम्नलिखित प्रमाण निश्चय ही इस मत की पुष्टि करते हैं कि यह व्यक्ति **सम्राट् हर्षवर्धन के अतिरिक्त अन्य नहीं हो सकता।**

१ बाण ने हर्षचरितम् में सम्राट् के सुविख्यात साहित्यिक गुणों का वर्णन किया है और भारत में हम ऐसे राजाओं से अपरिचित नहीं हैं जिन्होंने राज्य कोष के साथ साथ साहित्य भण्डार को भी अमूल्य रत्नों की देन से समृद्ध बनाया है।

२ चीनी यात्री इत्सिंग ने, जिसने श्री हर्ष के शासनकाल में भारत की विस्तृत यात्रा की थी, स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि राजा शीलादित्य (हर्ष) ने उस बोधिसत्त्व जीमूतवाहन के इतिहास की रचना की जिसने एक नाग की प्राण रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान दिया था तथा इस रचना को कुछ अभिनेताओं ने संगीत, नृत्य एवं अभिनय के साथ रंगमञ्च पर प्रस्तुत किया।

३ आठवीं शताब्दी में **दामोदर गुप्त** ने अपने ग्रन्थ **कुट्टनीमत** में रत्नावली के प्रथम अंक का चौबीसवाँ श्लोक उद्धृत करते हुए लिखा है कि इस नाटक का लेखक एक सम्राट है।

४ **जयदेव (१३ वीं शताब्दी)** तथा सेथल **(११ वी शताब्दी)** ने भी इन नाटकों के हर्ष की रचनाएँ होने की ओर स्पष्ट संकेत किया है।

इन प्रबल प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन तीन नाटकों के रचयिता सम्राट हर्षवर्धन ही हैं। जहाँ तक काव्य प्रकाश की उक्ति "श्रीहर्षादेर्धावक दीनामिव धनम्। का सम्बन्ध है इसका तो यही सामान्य अर्थ लगाया जा सकता है कि सम्राट हर्ष ने धावक को उसकी विद्वत्ता एवं साहित्यिक गुणों के उपलक्ष में बहुत सा धन पुरस्कार रूप में दिया। राजा का गुणियों तथा विद्वानों के प्रति उदारता का पर्याप्त परिचय हमें बाण के हर्ष चरितम् से भी मिलता है।

नागानन्दम् की संक्षिप्त कथा

प्रथम अङ्क

स्थापना—

नान्दी में बुद्ध की स्तुति के पश्चात्, सूत्रधार 'नागानन्दम्' नाटक का संक्षिप्त परिचय देता है। 'लेखक, श्री हर्ष, निपुण कवि हैं सभा गुण ग्राहिणी है, कथा आकर्षक है तथा अभिनेता कार्य-कुशल हैं अत नाटक की सफलता निश्चित है।" तब वह अपनी धर्मपत्नी को बुलाता है। उससे उसे मालूम होता है कि उसके माता पिता तपोवन को चल गए हैं। जीमूतवाहन की तरह माता पिता की सेवा करने के लिए वह भी उनका अनुसरण करता है।

मुख्य दृश्य—

तपोवन में, गौरी मन्दिर के निकट, जीमूतवाहन अपने मित्र आत्रेय (विदूषक) के साथ दृष्टिगोचर होता है। उसके माता पिता राज्य-भार का त्याग तपोवन में रहने के लिए आए हैं। उन्ही की सेवा के लिए नायक भी कार्य-भार मन्त्रियो को सौंप कर यहीं पर आ गया है तथा माता पिता के लिए उपयुक्त निवास स्थान की तालाश में है। सहसा मधुर एव आकर्षक संगीत की ध्वनि उनके कानों में पड़ती है। उसी का अनुसरण करते हुए वे गौरी मन्दिर में पहुँचते हैं। मन्दिर में नाटक की नायिका—राजकुमारी मलयवती—वीणा वादन में सलग्न है। उस का शारीरिक सौन्दर्य तथा कण्ठ का माधुर्य नायक पर जादु का सा असर करते हैं। मलयवती भी जीमूतवाहन के प्रेम-पाश में बन्ध जाती है। उसी समय एक तपस्वी वहाँ प्रवेश करता है। वह मलयवती को, उस के पिता विश्वावसु के आदेश से बुलाने आया है। तपस्वी से हमें यह भी पता लगता है कि नायिका का भाई मित्रावसु अपनी बहन के वैवाहिक सम्बन्ध के लिए जीमूतवाहन के पास गया हुआ है तथा मलयवती उस के लौटने की प्रतीक्षा में है। नायिका विवश सी हो कर वहाँ से चल पड़ती है। अब तक नायक तथा नायिका— दोनो एक दूसरे के परिचय से पूर्णतया अनभिज्ञ है।

दूसरा अङ्क

विरह अग्नि से सतप्त नायिका, अपने ताप को शान्त करने के लिए चन्दन लतागृह की ओर चल पड़ी है। दासी चतुरिका मधुर शब्दों से उसे आश्वासन दे रही है। तब नायक तथा विदूषक प्रवेश करते हैं। नायक ने स्वप्न में देखा है कि नायिका चन्दन लतागृह में शिलातल पर बैठी है तथा प्रेम में रूठी होने के कारण रो रही है। वह उसी शिलातल की ओर आता है तथा उस पर नायिका का चित्र बनाता है। नायिका तथा चटी छिप कर, नायक तथा विदूषक के वार्तालाप को सुनती हैं। नायिका को भ्रम हो जाता है कि नायक किसी अन्य सुन्दरी पर आसक्त है। मलयवती यह सोच कर अत्यन्त निराश हो जाती है।

तब मित्रावसु अपने पिता की ओर से, बहन मलयवती के विवाह का प्रस्ताव लिए प्रविष्ट होता है। नायक अपनी प्रियतमा के चित्र को केले के पत्ते से ढक देता है। जीमूतवाहन उस की बहन को अपनी प्रियतमा से भिन्न समझ कर उस के प्रस्ताव को ठुकरा देता है, किन्तु विदूषक मित्रावसु को इस सम्बन्ध में नायक के माता पिता को मिलने की सम्मति दे कर टाल देता है। मित्रावसु चला जाता है।

नायिका इस घटना से अत्यन्त दुःखी एवं निराश हो कर आत्म हत्या करने का निश्चय कर लेती है। अपनी दासी को किसी बहाने परे भेज कर, वह गले में फांसी लगाती है। दासी का पहले से ही इस का कुछ सन्देह सा होता है अतः वह दूर न जा कर लौट आती है और स्वामिनी को फंदा लगाते देख, सहायता के लिए चिल्लाती है। नायक शीघ्र ही वहां पहुँचता है तथा नायिका को बचा लेता है। यह जान कर कि मलयवती ही उसकी प्रियतमा है वह स्तम्भित रह जाता है। नायिका को शिलातल पर चित्र दिखा कर वह उसे अपने प्रेम का विश्वास दिलाता है। उस समय एक दासी प्रविष्ट हो कर सूचना देती है कि जीमूतवाहन के माता पिता ने मित्रावसु के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। विवाह उसी दिन

होता है और नायक को अपनी चोंच में उठा कर ले जाता है। देवता, नायक के इस अनुपम बलिदान के उपलक्ष मे पुष्प-वर्षा करते हैं और स्वर्ग मे नगाडे बजाते हैं।

पांचवां अङ्क

नायक ने लौटने में बहुत देर लगा दी है, अत चिन्तित विश्वावसु उस का पता लगाने के लिए द्वारपाल को, जीमूतवाहन के माता पिता के पास भेजता है। नायक के वृद्ध माता-पिता मलयवती के साथ बैठे हैं। वे सारे नायक के समुद्र-तट से लौटने में देर लगाने पर, अधीर हो उठते हैं। तत्काल सरस मांस से युक्त एक शिरोमणि पिता के चरणो मे आ गिरता है। वे उसे नायक का समझ कर अत्यधिक सतप्त होते हैं। शङ्खचूड को दक्षिण गोकर्ण से लौटने पर ज्ञात होता है कि गरुड नायक को नाग समझ कर उठा ले गया है, अत वह जीमूतवाहन के रक्त की धारा का शीघ्र ही अनुसरण करता है ताकि वह अपने आप को गरुड के सम्मुख पेश करके नायक को बचा ले। वह चिन्तित एवं व्यथित माता-पिता के पास से गुजरता है और उन्हे दुखद घटना की सूचना देता है। माता-पिता तथा मलयवती भी अपने प्राणो को त्यागने का निश्चय कर लेते हैं और वह अग्नि होत्र से पवित्र अग्नि लेकर शङ्खचूड के साथ ही गरुड का भी पीछा करते हैं ताकि नायक के गरुड का ग्रास बन चुकने की दशा मे वे अपने आप को उसी अग्नि से जला ले।

शङ्खचूड पर्वत शिखर पर गरुड के पास पहुँचता है और उसे बताता है कि वासुकि ने आपके आहार के लिए मुझे ही भेजा था। गरुड को विश्वास हो जाता है कि मैं नायक जैसे सुविख्यात महान् आत्मा का हनन कर जघन्य पाप का भागी बन गया हूँ। वह भी अग्नि प्रवेश द्वारा अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहता है। नायक के माता-पिता प्रविष्ट होते हैं अत. नायक को शोचनीय दशा में देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। पिता की अनुमति से नायक गरुड को उपदेश देता है—"प्राणी-मात्र की हिंसा से रुक जाओ।

परोपकार के कार्यों द्वारा अपने पाप का पश्चात्ताप करो।' गरुड इस आदेश को शिरोधार्य मान वैसा करने का वचन देता है।

नायक शङ्खचूड को अपनी माँ के पास लौटने के लिए कहता है किन्तु शङ्खचूड ने नायक के माता पिता के साथ ही मरने का निश्चय कर रखा है। मर्मच्छेदिनी पीडा के साथ नायक के प्राण पखेरु उड जाते हैं। गरुड, नायक एवं अन्य खाए हुए नागों को पुनर्जीवित करने के लिए स्वर्ग से अमृत लाने के लिए उड जाता है। नायक के माता पिता, मलयवती तथा शङ्खचूड, अग्नि में प्रवेश करने की तैयारी करते हैं।

मलयवती, गौरी का आह्वान करती है और उस पर असत्य वादिनी का दोष आरोपण करती है, क्योंकि उसने तो मलयवती को विद्याधर चक्रवर्ती की सह धर्मिणी होने का वर दिया था। भगवती गौरी, मलयवती की श्रद्धा एवं नायक के आत्म बलिदान से प्रसन्न होकर, नायक को पुनर्जीवित कर देती है तथा उसे विद्याधरों के सम्राट्-पद पर स्थापित कर देती है। स्वर्ग से अमृत की वर्षा से मरे हुए नाग भी पुनः प्राणों को प्राप्त करते हैं तथा कथा का सुखद अन्त हो जाता है।

नागानन्दम् का मूल स्रोत

नाटक की स्थापना में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि नाटक की कथा "विद्याधर जातक" से ली गई है। ("श्रीहर्षदेवेन विद्याधरजातक-प्रतिबद्धं नागानन्दम् नाटकं कृतम्") किन्तु उपलब्ध जातक कथासंग्रह में विद्याधर जातक नाम की कोई कहानी नहीं मिलती। क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथा-मञ्जरी तथा सोमदेवरचित कथासरित्सागर, दो ऐसी रचनाएँ अवश्य मिलती हैं जिन में 'नागानन्दम् नाटक' के कथानक का संक्षिप्त एवं विस्तृत रूप मिलता है। किन्तु स्पष्ट ही ये दो कृतियाँ हमारे नाटक का स्रोत नहीं हो सकतीं क्योंकि ये दोनों ग्यारहवीं शताब्दी की रचनाएँ हैं जबकि नागानन्दम् की रचना सातवीं शताब्दी में हुई है। हमें यह सहज ही स्वीकार करना होगा

कि इन दो रचनाओ तथा नागानन्दम् की कथा का एक ही मूल स्रोत है। बृहत्कथा मञ्जरी तथा सरित्सागर—दोनो एक प्राचीन विशाल ग्रन्थ बृहत्कथा के भिन्न २ सस्करण हैं। यह सुविख्यात रचना गुणाढय द्वारा सम्भवत प्रथम शताब्दी ई० पू० मे लिखी गई थी। नागानन्दम् नाटक के लेखक सम्राट हर्ष अपने कथानक के लिए इसी महान् ग्रन्थ के ऋणी हैं। दुर्भाग्य से बृहत्कथा का मौलिक रूप आज उपलब्ध नही है किन्तु ११ वी शताब्दी मे रचित जिन दो काश्मीरी सस्करणो की ओर पहले सकेत किया गया है, उनसे इस विशाल ग्रन्थ की रूपरेखा का भली भाँति अनुमान लगाया जा सकता है।

नाट्यकला के दृष्टिकोण से तथा बौद्धिक सिद्धान्त 'अहिंसा' के कलात्मक प्रतिपादन के लिए लेखक ने मौलिक कथा मे जो परिवर्धन किए हैं, उनका सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

१ मौलिक कथा में जीमूतवाहन का जन्म कल्पवृक्ष की कृपा से हुआ है। प्रस्तुत नाटक नायक के जन्म के सम्बध में कोई सकेत नही है।

२ मौलिक कथा में नायक राज्य को त्याग देता है जब उसे अपने सम्बन्धियो की राज्य को हस्तगत करने की अभिलाषा की सूचना मिलती है। नाटक में वह तपोवन में वृद्ध माता पिता की सेवा करने के लिए राज्य भार से छुट्टी पा लेता है। यहाँ लेखक का अभिप्राय नायक के चरित्र की उस विशेषता को अभिव्यक्त करना है जिसके कारण वह राज्य श्री के भोग से गुरु चरणो की सेवा को श्रेयस्कर समझता है।

३ मौलिक कथा में, नायक, गौरी-मन्दिर में देवी दर्शन के लिए जाता है और वहाँ उसकी नायिका से भेंट होती है। वहाँ पर वह उसकी सखियो से उसके नाम एव वश का परिचय प्राप्त करता है तथा आत्म परिचय भी देता है।

नाटक में नायक तथा नायिका के प्रथम सम्मिलन की घटना रोचक एव आकर्षक ढग से प्रस्तुत की गई है। यहाँ नायक सगीत की मधुर ध्वनि

म आकर्षित होकर मन्दिर मे प्रविष्ट होता है तथा जीमूतवाहन और मलयवती प्रेम पाश मे बन्ध जाते हैं किन्तु बिना एक दूसरे का परिचय प्राप्त किए तपस्वी के आकस्मिक आगमन से वियुक्त हो जाते हैं। तदपश्चात् मित्रावसु अपनी बहन मलयवती के विवाह का प्रस्ताव करता है किन्तु नायक उस अपनी प्रियतमा से भिन्न युवति समझ कर उस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। नायिका भी *मित्रावसु तथा नायक के बीच वार्तालाप से पैदा हुई भ्रान्ति के कारण* अपने गले में फाँसी लगाने का निश्चय कर लेती है। यह सारी रोचक घटना नाटककार की निजी कल्पना का परिणाम है।

४ मौलिक कथा मे आकाश वाणी नायिका को आत्म हत्या करने से रोकती है तथा विद्याधरो के भावी सम्राट् से उसके विवाह का वचन देता है। वहाँ स्वप्न मे वरदान का उल्लेख नहीं है।

लेखक ने इस नाटक में नायिका की रक्षा नायक द्वारा करवा के घटना को चमत्कार पूर्ण बना दिया है। यह परिवर्तन कलात्मक होने के कारण दर्शकों के हृदयों को हर लेता है।

५ मौलिक कथा मे विट एव चेट का कहीं भी उल्लेख नही है, न ही मतङ्ग द्वारा नायक के राज्य पर आक्रमण का वर्णन है। प्रस्तुत नाटक में सारे का सारा तीसरा अङ्क कवि की कल्पना का परिणाम है। इसमें हमें हास्य रस की मधुर छटा के दर्शन होते हैं। इस प्रकार कहानी में करुण एव हास्य रस का समन्वय नाटक को अधिक आकर्षक बना देता है। नायक के राज्य पर आक्रमण का समाचार नायक की परोपकार भावना को अभिव्यक्त करने में सहायता देता है।

६ मौलिक कथा में शिला चित्र का उल्लेख नही है।

७ मौलिक कथा में लाल वस्त्रो के जोड़े का वध्य चिह्न के रूप मे कहीं भी जिक्र नहीं है। लेखक ने इसकी कल्पना कदाचित् इस लिए की है कि गरुड की भ्रान्ति अधिक स्वाभाविक दीख पड़े।

८ मौलिक कथा में नायक का चूड़ामणि मलयवती के चरणों में गिरता है किन्तु नाटक में उसे पिता के चरणों में गिरा कर लेखक ने नायक की पितृ भक्ति का परिचय दिया है।

नाटक में जीमूतकेतु को, दुःखद घटना की सूचना शङ्खचूड़ से दिलवा कर, लेखक ने कथा को अधिक करुण बना दिया है।

९ मौलिक कथा में गरुड नायक को वरदान देता है किन्तु नाटक में उसका उल्लेख नहीं किया गया। इसमें लेखक का अभिप्राय नायक को गरुड से उच्च पदवी प्रदान करना है।

श्री हर्ष ने प्रस्तुत नाटक में जो परिवर्तन एवं परिवर्धन किए हैं, उनका उद्देश्य स्पष्ट ही, कथा को अधिक रोचक एवं चमत्कृत बनाना तथा नायक के चरित्र की सर्व प्रमुख विशेषता—अहिंसा तथा परोपकार की भावना—को उभारना है।

नागानन्दम्—सामान्य समालोचना

नागानन्दम्, हर्ष के अन्य दो नाटकों—प्रियदर्शिका तथा रत्नावली—से सर्वथा भिन्न है। यथार्थ में समस्त संस्कृत साहित्य में, कथानक की दृष्टि से, अपने ही ढंग का यह एक अनोखा नाटक है। एक नाग के प्राणों की रक्षा के लिए जीमूतवाहन के आत्म-बलिदान की कहानी द्वारा लेखक ने मानव धर्म के सर्वोत्तम सिद्धान्त अहिंसा तथा त्याग की जो अभिव्यक्ति की है, वह वस्तुतः अनूठी है। नाट्य-कला की दृष्टि से यह रचना कहाँ तक सफल हो पाई है, यह एक विवादास्पद विषय है। नाटक के मुख्य तत्वों को ध्यान में रख कर हम इसकी विवेचना करेंगे।

कथावस्तु—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हर्ष, प्रस्तुत नाटक के कथानक के लिए गुणाढ्य की बृहत्कथा का ऋणी है। बोधिसत्व की कथा को नाट्य रूप

देते समय उसने कालिदास से भाव प्रेरणा भी ली है। गौरी मन्दिर में नायक और नायिका का प्रथम मिलन रूढिगत है तथा दूसरे अ क में उनक विरह वर्णन में मौलिकता का प्राय अभाव है। किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, नाटक में कितने ही ऐसे स्थल हैं जो लेखक की कल्पना शक्ति एव प्रतिभा का प्रर्याप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं। नायक तथा नायिका के एक दूसर के प्रम क सम्बन्ध में भ्रान्ति में पडना तथा अन्तिम अ क में त्याग की भावना का उच्चतम शिखर पर पहुँचाना, लेखक की प्रौढ प्रतिभा के द्योतक हैं। हास्य विनोद से परिपूर्ण तृतीय अ क भी हर्ष की कल्पना का परिणाम है।

नागानन्दम् एक रोचक नाटक है। इसे पढने अथवा देखते समय हमारी रुचि अन्तिम दृश्य तक बनी रहती है। घटनाओ की विचित्रता एव विविधता तथा उनका परस्पर घात प्रतिघात हमे अपनी ओर निरन्तर आकृष्ट किए रहता है। यह नाटक की महत्त्वपूर्ण तथा प्रशसनीय विशेषता है। भाषा तथा भावो की सरलता तथा कथानक की द्रुत प्रगति ने इस उत्कण्ठा को बनाए रखने में विशेष योग दिया है।

नाटक के कथानक के निर्माण मे एक गम्भीर त्रुटि है जिसकी सहज ही उपेक्षा को नही जा सकती। नागानन्द मे कार्य व्यापार की एकता (Unity of Action) का अभाव है। पहल तीन अ को तथा अन्तिम दो अ कों की घटनाओ में प्रत्यक्ष रूप से कोई भी सम्बन्ध दीख नही पडता। पहले तीन अ को में नायक तथा नायिका के परस्पर प्रेम तथा विवाह की कथा का वर्णन है और चौथे तथा पाचवें अ क में नायक क आत्मोत्सर्ग की कहानी है। कथानक क पहले भाग से दूसर भाग का विकास स्वाभाविक प्रतीत नही होता। यदि रचना तीसर अ क पर ही समाप्त हो जाती तो यह छोटा सा सुखान्त नाटक बन जाता। इसक अतिरिक्त दूसर भाग मे हमे नायक के जिस अपरिमित परोपकार भावना तथा आ म बलिदान क लिए दृढ निश्चय के दर्शन होते हैं व पहले भाग में उसकी काम लोलुपता तथा विरहजनित अधीरता से मेल

नहीं खाते । मलयवती के लिए उस का असीम प्रेम जो प्रथम भाग का मुख्य विषय है, न तो उसे बलि पथ पर अग्रसर होने के लिए उत्साहित करता है और न ही उस की प्रिया का आकर्षण उसके हृदय में मनुजोचित संघर्ष को जन्म देता है । दोनों में से किसी एक दशा के भी घटित होने पर नाटक के कथानक का विकास नितान्त स्वाभाविक प्रतीत होता । इसके अतिरिक्त विदूषक तथा चतुरिका, जिन्हों ने पहले तीन अङ्कों में विशेष भाग लिया है, अन्तिम दो अङ्कों में दृष्टिगोचर तक नहीं होते ।

नाटक के कथानक के विकास में तारतम्य का अभाव, लेखक को स्वयं न खटका हो, ऐसी बात नहीं है । उस ने दोनों भागों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ प्रयत्न किए हैं । जिन की सफलता एवं असफलता के विषय में आलोचकों के मत भिन्न भिन्न हैं । उन प्रयत्नों का संक्षिप्त ब्योरा निम्नलिखित है ।

१ नाटक का प्रथम भाग यद्यपि मुख्य रूप से नायक और नायिका की प्रेम कथा से सम्बद्ध है, तथापि उस में ऐसे स्थलों का अभाव नहीं हैं। जहाँ लेखक ने नायक की आत्म त्याग तथा परोपकार भावना की ओर पर्याप्त संकेत न किए हों । समय समय पर दी गई निम्नलिखित उक्तियां उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत की जा रही हैं ।

नायक —" ननु स्वदारीरात् प्रभृति सर्वं परार्थमेव मया परिपाल्यते" ।

मित्रावसु — यथामूनपि सन्त्यजेत्करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यत ।

नायक.—एष इनाभ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयास ।

इन उक्तियों से नायक के चरित्र की जो विशेषता अभिव्यक्त होती है, वही दूसरे भाग के कथानक के लिए आधार स्तम्भ का काम देती है।

२. नायक का मलयवती से विवाह, अप्रत्यक्ष रूप से नायक के आत्म बलिदान में सहायक हुआ है । ससुराल से कञ्चुकी द्वारा भेजा गया लाल वस्त्रों का जोड़ा नायक को ठीक अवसर पर प्राप्त होता है और जीमूतवाहन

उमे, शङ्खचूड की अनुपस्थिति में, वध्य चिह्न के रूप में ओढ़ कर वध्य-शिला पर चढ जाता है। उस समय उस के मुख से निकले हुए शब्द, 'सफलीभूता मे मलयवत्या पाणिग्रह ।" दोनो भागो के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक हुए हैं।

३ भगवती गौरी का वरदान भी दोनो भागो को जोडने में कडी का काम देता है। प्रथम अङ्क में मलयवती को स्वप्न में दिया गया वरदान, नाटक के सुखद अन्त का कारण बन जाता है।

दोनों भागो को जोडने वाली इन कडियो से कदाचित् प्रभावित हो कर सुविख्यात् आलोचक 'कीथ' (Keith) लिखते हैं:—"There is a decided lack of harmony between the two distinict parts of the drama, but the total effect is far from unsuccessful"

कथावस्तु के निर्माण के विषय में आलोचको ने एक अन्य आक्षेप भी किया है। इन के मत में कथानक की प्रगति के लिए नाटक का तीसरा अङ्क प्राय अनावश्यक है। इस आरोप का निराकरण करना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि इस अङ्क में मतङ्ग के नायक का राज्य हस्तगत करने की सूचना मिलने के अतिरिक्त कहानी आगे बढती। यह बात दूसरी है कि नाट्य शास्त्र के नियमानुसार करुण रस की नितान्त प्रधानता के निराकरण के लिए हास्य विनोद से परिपूर्ण इस अङ्क को उपयुक्त मान लिया जाए।

चरित्र चित्रण—हर्ष के नाटको में मानव मन के उस सूक्ष्म विश्लेषण का परिचय नही मिलता जिसके हमें कालिदास तथा भवभूति की रचनाओ में दर्शन होते हैं। यही कारण है कि हर्ष के पात्रों में सजीवता तथा आकर्षण का प्रायः अभाव है। वह अपने पात्रो के साथ तादात्म्य स्थापित करने में असफल रहा है अत उस के पात्र स्वच्छन्द विहार नही कर पाते। कई स्थानो पर तो वे लेखक के हाथ में कठ पुतलियो की तरह दीख पडते हैं जो उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार नचाता है। वह उन्हें, जब चाहे, रगमञ्च पर ले आता है, जब चाहे,

हटा लेता है। उदाहरण के तौर पर, नागानन्द के विदूषक का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। न तो वह स्वाभाविक रूप से मूढ़ ही है, न ही स्वभावतया चण्डाल है। जब वह मूढ़ का सा अभिनय करता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो लेखक उसे पीछे से प्रेरित कर रहा हो। इस प्रकार मलयवती भी सर्वथा निर्जीव सी है। पाचवें अङ्क में तो वह बिल्कुल कठपुतली सी दीख पड़ती है। नायक की विपत्ति से उत्पन्न दुर्दशा में वह सास और ससुर के शब्दों को केवल दुहरा कर ही सन्तुष्ट प्रतीत होती है। उस के विलाप में हृदय का क्रन्दन सुनाई नहीं देता।

प्रो० जागीरदार ने हर्ष के चरित्र चित्रण की कटु आलोचना की है। वह कहते है—"His characters are mostly story tellers and as such we are not interested in what happens to them. Even in three or four principal characters there is no life at all Either they are dummies stuffed in the traditional form or they are the mouthpieces of the poetic author."

यह सब ठीक होने पर भी हमें कहना पड़े गा कि हर्ष ने अपने पात्रों के के लिए जो क्रिया कलाप निश्चित किया है, वह स्वय उस से भली भाँति परिचित है। वह उन के उद्देश्य को अच्छी तरह समझता है। उन के गुणों वा दोषों पर पुनः पुनः विचार कर के उस ने उन का निर्माण किया है, अत उस के पात्र कोई भी ऐसी बात नहीं करते या कहते जो कथानक के उद्देश्य से मेल न खाती हो।

भाषा तथा शैली—हर्ष की भाषा सरल, सुगम तथा सुबोध है। कहीं पर भी अप्रचलित एव कठिन शब्दों का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता जो रस के सहज प्रवाह अथवा अभिव्यक्ति में बाधा बन सके। किन्तु जहाँ पर किसी ओजस्वी अथवा कोमल विचार धारा का निरूपण करना हो, लेखक अपनी भाषा को आवश्यकता तथा अवसर के अनुसार तबदील कर लेता है।

गरुड के आगमन का वर्णन, ओजस्वी भाषा के प्रयोग का एक उपयुक्त उदाहरण है।

क्षिप्त्वा बिम्ब हिमांशोभयकृतवनया सस्मरन्ध्रेपमूर्ति,
सानन्द स्यन्दनाश्वश्रसनविचलिते पूष्णि दृष्टोऽग्रजन ।
एष प्रान्तावसक्तञ्जनधरपटलैरायतीभूतपक्ष,
प्राप्तो वेलामहीध्र मलयमहमहिग्रासगृध्नु क्षणेन ॥

इसी प्रकार तीसरे अङ्क का १५वा तथा १६वां श्लोक वीर रस के और पांचवें अङ्क का १८ वा श्लोक भीभत्स रस के सुन्दर उदाहरण हैं।

करुण रस की हृदयग्राही अभिव्यक्ति के लिए सस्कृत में ऐसे पद्य कम मिलग।

निराधार धैर्य्यं, कमिव शरण यातु विनय ?
क्षम क्षान्ति वोढु क इह ? विरता दानपरता ।
हत सत्य सत्य व्रजतु कृपणा क्वाद्य करुणा ?
जगज्जात शून्य, त्वयि तनय ! लोकान्तरगते ॥

कोमल कान्त पदावली के दर्शनो के लिए हमें नागानन्द में शृंगार रस के कितने ही मनोहर उदाहरण मिलते हैं। इस सम्बन्ध में दूसरे अङ्क का तीसरा श्लोक तथा तीसरे अङ्क का चौथा और छटा श्लोक उद्धृत किए जा सकते हैं।

हर्ष की गद्य में भी सरलता माधुर्य तथा ओज का स्थान स्थान पर समावेश मिलता है। निर्दोषदर्शना क यका भवन्ति 'वन्द्या खलु देवता" 'कीदृशो नवमालिकया बिना शखरक आदि उक्तिया प्रसाद गुण का सुन्दर उदाहरण हैं।

अलङ्कारो के प्रयोग के द्वारा हर्ष, कालिदास तथा भवभूति जैसा प्रभाव जमाने में चाहे सफल न हुआ हो, अपनी भाषा को अलकृत करने का उसका प्रयास प्रशसनीय है। उसके अलकारो का प्रयोग सयत और सुरुचिपूर्ण

है। शब्द-ध्वनि और भावों का एकीकरण कई स्थानों पर आकर्षक प्रतीत होता है। 'वर', 'चूडामणि' चतुरिका, नवमालिका, शखरक आदि शब्दों पर श्लेष मध्यम कोटि की रुचि का परिचय देते हैं। इसके अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, स्वभावोक्ति आदि अलङ्कारों का प्रयोग पर्याप्त मात्र में मिलता है।

हर्ष ने प्राय दीर्घ छन्दों का प्रयोग किया है। इस से उन्हें अपनी वर्णन शक्ति का परिचय देने का अच्छा अवसर मिल गया है, किन्तु नाट्य कला की दृष्टि से वे प्रशसनीय नहीं कहे जा सकते। इस प्रमुख छन्द शार्दूल-विक्रीडित, स्रग्धरा तथा श्लोक है।

नाटक मे रस—नाटक के पहले तीन अङ्को में शृ गार रस की प्रधानता है, तथा अन्तिम दो अ क करुण रस से परिपूर्ण हैं। किन्तु नाटक अन्त में हमारे हृदय में एक अ य ही रस का सञ्चार करता है जिसे वीर रस ही है कहना चाहिए। जिस वीरता से नायक ने आत्म बलिदान दिया है तथा जिस धैर्य्य एव दृढता से उस ने शारीरिक यातना सहन की है, वह हमारे मन पर एक अमिट छाप डाल देता है तथा पहले दो रस—शृ गार तथा करुण-अभिभूत से हो जाते हैं।

यह रचना एक सफल तथा प्रभावपूर्ण दु खान्त नाटक बन जाती यदि नायक को गौरी के वरदान से सहसा ही पुनर्जीवित न किया जाता किन्तु सस्कृत में दु खान्त नाटक के निषिद्ध होने के कारण यह परिवर्तन आवश्यक था। कई आलोचकों के विचार में यह परिवर्तन अप्रत्याशित एव आकस्मिक होने के कारण कुछ अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है।

प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में लेखक ने नायक की वैराग्य भावना बता कर शान्त रस प्रदर्शित किया है किन्तु उसके पश्चात् शीघ्र ही नायक के मन में वैराग्य का स्थान राग ले लेता है। शान्त और शृ गार को परस्पर विरोधी बता कर कई आलोचकों ने इस तात्कालिक रस परिवर्तन पर आक्षेप किया है। किन्तु लेखक ने नायिका के निपुण वीणा वादन पर 'अहो गीतम्। अहो वाद्यम्।"

लिख कर इन दोनों के बीच में अद्भुत रस पदा करके इस दोष का निराकरण कर दिया है।

तीसरे अंक मे हमे हास्य रस की सुन्दर छटा के दर्शन होते हैं। अन्य स्थानों पर अद्भुत तथा भीभत्स रस का भी समावेश किया गया है।

सम्राट हर्ष तथा कालिदास

महान् लेखक वरदान भी होते है और अभिशाप भी। जीवन में नई स्फूर्ति नई चेतना लाने के लिए विश्व उनका आभारी होता है किन्तु साहित्य के क्षेत्र मे अपने बाद में आने वाले लेखकों के लिए वह एक बन्धन बन जाते है। उनकी प्रशंसा तथा ख्याति उनके पर वर्ती लेखकों को उनके चरण चिह्नों पर चलने के लिए उत्साहित करती है। मौलिकता के नवीन मार्गों पर अग्रसर *होने का उन्हे साहस नहीं होता। महाकवि कालिदास उन शिरोमणि कलाकारों* मे से हैं जिन्होने अनेक साहित्य सेवियो को प्रभावित किया है। हमारे नाटक सम्राट हर्ष भी अपने नाटकों के लिए विशेष रूप से उनके ऋणी है

इस मे स देह नही कि हर्ष ने अपने नाटकों के कथानकों का बीज बृहत्कथा से प्राप्त किया है किन्तु उनके तीनों नाटकों की घटनाओं का गुम्फन कालिदास की घटनाओं के रचना क्रम पर आधारित है। कल्पना के क्षेत्र में भी हर्ष ने कई स्थानों पर भाव प्रेरणा कालिदास से ली है। प्रियदर्शिका का सारा प्लाट कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक के आधार पर खड़ा किया गया प्रतीत होता है। रत्नावली तो प्रियदर्शिका का ही सशोधित रूप है। इसके लिए हर्ष केवल मालविकाग्निमित्रम् के ही नहीं उनकी विक्रमोर्वशीय के भी आभारी हैं। रत्नावली मे विदूषक को राजा से मिलाने की युक्तियाँ वासवदत्ता के क्षमा याचना के लिए आने पर दूसरा ही दृश्य देखना रत्नावली के बन्धन में शुभ समाचार मिलना रत्नावली का यथार्थ परिचय मिलना तथा रानी का स्वयं उस पत्नी रूप मे राजा को अर्पण करना–इन सब मे मालविकाग्निमित्रम् की छाया स्पष्ट लक्षित होती है रत्नावली के छिप कर राजा और

विदूषक की बातें सुनने, रानी के राजा के अनुनय विनय की अवहेलना करने तत्पश्चात् पश्चात्ताप के कारण राजा के पास जाने आदि की घटनाओ पर विक्रमोर्वशीय की छाप दीख पडती है।

नागानन्दम् भी पहले दो अंको में घटनाओ के रचना क्रम के लिए "अभिज्ञानशकुन्तलम्" का ऋणी है। दोनो नाटक तपोवन के दृश्य से शुरु होते हैं। दुष्यन्त की तरह जीमूतवाहन आश्रम में प्रवेश करता है, उसकी तर ही नायक की दाईं आँख फडकती है। दोनो नाटको में नायक-नायिका का आकस्मिक सम्मिलन होता है और 'प्रथमदृष्टि-पात' पर दोनो ही प्रेम पाश में बंध जाते है। इसके बाद कालिदास दुर्वासा के शाप का आविष्कार कर कहानी को ऊँचे स्तर पर ले जाते हैं तथा हर्ष मानव-धर्म के उच्चतम आदर्श, अहिंसा के सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए कहानी का रुख दूसरी ओर मोड देते हैं।

इन दोनो नाटकों में विशेष परिस्थितियो तथा उनमें होने वाली पात्रो की क्रिया प्रतिक्रियाओ में जो समानता दीख पडती है, यह कम रोचक नही है। "अभिज्ञानशकुन्तलम्" में लेखक ने पाँचवें अङ्क में 'अनिर्वर्णनीय परकलत्रम्" कह कर पर-स्त्री को देखना अनुचित बताया है तथा हर्ष ने प्रथम अङ्क में "द्रष्टुमनर्होऽयं जन." कह कर इसी भाव का प्रदर्शित किया है।

कालिदास ने शकुन्तला के मुख से सखी के प्रति "अत खलु प्रियंवदासि त्वम्" कहलवा कर प्रियंवदा के नाम की सार्थकता की ओर सकेत किया है तथा हर्ष ने उसी भाव से प्रेरणा ले कर अपनी नायिका से दासी चतुरिका की चतुराई पर "चतुरिका खलु त्वम्" कहलवा कर, अपने चतुर अनुकर्त्ता होने का प्रमाण दिया है।

इसी प्रकार ऐसे बीसियों उदाहरण दिए जा सकते हैं जहाँ श्री हर्ष का कालिदास के प्रति आभार स्पष्ट दीख पड़ता है। किंतु यह बात हमें स्वीकार करनी होगी कि हर्ष ने अपने पूर्व वर्त्ती लेखकों से जो कुछ भी लिया है, उस में अपनी प्रतिभा का समावेश कर के उसे नया रूप प्रदान किया है। इसी लिए एक आलोचक ने हर्ष को 'A clever borrower" (चतुर अनुकर्त्ता) के नाम से याद किया है। इसी सम्बन्ध में कीथ महोदय (Keith) की यह उक्ति भी ध्यान देने योग्य है—

"Comparison with Kalidasa is doubtless the cause why Harsha has tended to receive less praise than is his due"

नागानन्दम् तथा बौद्ध धर्म

कई विद्वानों का यह विचार है कि श्री हर्ष ने बौद्ध धर्म का गुण गान तथा प्रचार करने के लिए ही नागानन्दम् की रचना की। वे अपने मत की पुष्टि में नान्दी में महात्मा बुद्ध की स्तुति, ब्राह्मण विदूषक का यज्ञोपवीत तुड़वा कर, विट द्वारा उस के उपहास तथा बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्त—प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा तथा दया भाव—के विस्तार प्रतिपादन की ओर संकेत करते हैं। दूसरी ओर प्र० आगीरदार जैसे आलोचक हैं जो बौद्ध धर्म एवं प्रस्तुत नाटक में तनिक भी सम्बन्ध मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उन के विचार में ब्राह्मण विदूषक का उपहास संस्कृत नाटककारों के लिए कोई नई वस्तु नहीं है। उस की अनक्षरता तथा अज्ञान कई नाटकों में उपहास का विषय बने हैं। महात्मा बुद्ध की स्तुति भी बौद्धिक झुकाव की ओर संकेत नहीं करती क्योंकि हिन्दु धर्म ने बुद्ध को दस अवतारों में एक अवतार मान लिया था। अहिंसा तथा परोपकार के सिद्धान्त हिन्दु धर्म की विशाल विचार धारा का शुरू से ही अङ्ग बने हुए थे। ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए हर्ष ने यही उपयुक्त समझा कि वह बौद्ध धर्म से सम्बन्द्ध 'बोधिसत्त्व' को अपने नाटक का

बौद्ध धर्म के मौलिक सिद्धान्त " अहिंसा परमो धर्म " के सबल प्रचार की भावना लक्षित होती है। मित्रावसु के मतङ्ग पर आक्रमण करने की बात कहने पर नायक कह उठता है —

"अपि च क्लेशान् विहाय मम शत्रुबुद्धिरेव नान्यत्र।"

यहा पर बौद्ध सिद्धान्त द्वारा सम्मत पाँच क्लेशो की ओर सकेत है।

" गरुड के अपने किए " पर पश्चात्ताप करने पर, नायक का यह उपदेश—

नित्य प्राणाभिघातात् प्रतिविरम कुरु प्राक्कृतस्यानुताप
यत्नात् पुण्यप्रवाह समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम्।
मग्न येनात्र नैन. फलति परिणत प्राणिहिंसासमुत्थ
दुर्गाधे वारिपूरे लवणपलमिव क्षिप्तमन्तर्ह्रदस्य ।।

बौद्ध सिद्धान्त अहिंसा के प्रचार का सबल प्रमाण है।

हिन्दु तथा बुद्ध धर्म के इसी सम्मिलन को ' बेला बोस ' ने निम्नलिखित शब्दो में अभिव्यक्त किया है —

"The Buddhistic doctrines of benevolence & renunciation have been harmonised into a standard of good taste by being with the catholic Hindu doctrines"

हर्ष का संस्कृत साहित्य में स्थान

सम्राट हर्ष सस्कृत साहित्य के आकाश में एक चमकता हुआ सितारा है। किन्तु उन में कालिदास अथवा भवभूति की सी चमक नही है। यथार्थ में कालिदास अथवा भवभूति जैसे प्रतिभाशाली लेखकों के साथ उन का मुकाबला करना, उन के साथ अन्याय करना है। उन में उन जैसी मौलिकता का अभाव

है और बस उन जैसा मनोवैज्ञानिक मानसिक विश्लेषण करने में असमर्थ हैं। उन का चरित्र चित्रण उपेक्षतया निर्जीव है। किन्तु सरस तथा सरल भाषा में उन्होंने जिस रोचक ढग से कथानक को प्रस्तुत किया है तथा कल्पना प्रसूत आकर्षक पद्यो से उसे सुसज्जित किया है, वह सचमुच सराहनीय है। नाटक में घटनाओं की विविधता तथा प्रगति उन के नाटकों को अभिनय के योग्य बनाती है और यह एक ऐसी विशेषता है जो संस्कृत नाटक साहित्य मे कम दृष्टि गोचर होती है। रत्नावली तथा नागान द में जिस उद्देश्य को उ होने अपने सामने रखा है वे उसे पूरी सफलता से निभा पाये हैं।

इन विशेषताओं को ध्यान में रख कर हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि प्रथम कोटि के साहित्य कारो में उन की गणना भले ही की जा सके, मध्य कोटि के कलाकारो में उन का स्थान ऊँचा है। भट्ट नारायण, राजशेखर दिङ्नाग आदि नाटक कारो की पंक्ति में वह अवश्य ही प्रमुख स्थान को प्राप्त किये हुए हैं।

नागानन्द के प्रमुख पात्र

जीमूतवाहन

विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन नागानन्द का नायक है। वह रूप तथा यौवन से सुसम्पन्न है। विद्वता, वीरता एव नम्रता उस के विशेष गुण हैं।

माता पिता के प्रति अनुपम श्रद्धा तथा आत्मोत्सग उस के चरित्र की दो ऐसी विशेषताएँ है जिन का इस नाटक में मुख्य रूप से निरूपण किया गया है। य दोनो भाव उस के चरित्र का अभिन्न अङ्ग बने हुए है तथा नाटक की मुख्य तथा गौण घटनाओं का इ ही के साथ घनिष्ट सम्ब ध है।

माता पिता के प्रति भक्ति भाव ने उसे राज्याधिकार का त्याग देने तक के लिए प्रेरित किया है। पिता के चरणो में बैठ कर सेवा करने में जो आनद उसे प्राप्त होता है वह भला राज्य श्री के भोगने में कहाँ ? विदूषक से वह स्वय कहता है।

" तिष्ठन् भाति पितु पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा ?

मृत्यु-शय्या पर पडे होने पर भी वह माता-पिता के चरणो में सिर झुकाना अपना कर्तव्य समझता है। मरते समय भी वह कहता है—

" तात अम्ब, श्रय मे पश्चिम' प्रणाम ।"

जब गरुड नायक को अपनी चोच में उठा कर ले जाता है तो जीमूतवाहन का चूडामणि भी उस के पिता के चरणो में गिरता है और उस के पिता कह उठते है कि मरते समय भी पुत्र अपने कर्त्तव्य पालन को नही भूला। गरुड को उपदेश देने से पहले भी वह पिता की अनुमति प्राप्त करता है।

मानव जाति के लिए उस के मन में उदारता है, प्राणि मात्र के लिए दया भाव है। उस का हृदय आत्म-समर्पण की भावनाओ से ओत प्रोत है। यह बात उस की अपनी एव अन्य पात्रो की उक्तियो से स्पष्ट लक्षित होती है। उस ने कल्प वृक्ष तक अपनी प्रजा को दे दिया है। मतङ्ग द्वारा राज्य के हस्तगत किए जाने पर वह हर्ष को प्रकट करता है। नागो की करुण विपत्ति को सुन कर उस का हृदय रो उठता है तथा अपने प्राण देकर एक साँप की रक्षा करके भी वह अपने आप को धन्य समझता है। वह कहता है—

" सरक्षता पन्नगमद्य पुण्य मयार्जित यत्स्वशरीरदानात्
भवे भवे तेन ममैवमेव भूयात् परार्थ खलु देहलाभ ।'

शङ्खचूड की वृद्ध माँ को विपद् ग्रस्त देख कर उस का हृदय करुणा से भर जाता है। पीडित प्राणियो की सेवा में ही वह अपने प्राणो का लाभ समझता है—

आर्त्त कण्ठगतप्राण परित्यक्त स्वबन्धुभि ।
त्राये नैन यदि तत क: शरीरेण मे गुण ॥

मित्रावसु भी उस की आत्म बलिदान की भावना देख कर अपनी बहन के विवाह का प्रस्ताव करते समय हिचकिचाता है। मित्रावसु को इस बात का डर है कि कहीं —

"प्रत्याप्नुनपि सन्त्यजेत्करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यतः।"

परोपकार तथा आत्मोत्सर्ग की भावना ही उस के चरित्र की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है। क्योंकि मानव की सेवा के उच्च आदर्श के पालन के लिए वह माता पिता के प्रति श्रद्धा तथा मलयवती के प्रति प्रेम को भी भुला देता है। वध्यशिला का स्पर्श उसे मलयवती के आलिङ्गन तथा माता की गोद में लौटने से अधिक सुखदायक प्रतीत होता है। ससुराल से प्राप्त लाल वस्त्रों का जोड़ा आत्म बलिदान के उद्देश्य में उस का सहायक सिद्ध होता है और इसी से वह मलयवती से अपना विवाह सफल समझता है—

"सफलीभूतो मे मलयवत्या पाणिग्रह।"

दार्शनिक मनोवृत्ति का होते हुए भी नायक काम जनित प्रेरणाओं से मुक्त नहीं है। मलयवती के आकर्षण से अभिभूत हो कर, प्रथम दृष्टिपात पर वह उस से प्रेम करने लगता है। वह रसिक भी है किन्तु उस का सौन्दर्य के प्रति आकर्षण तथा रसिकता, समय आने पर आत्मोत्सर्ग की भावना के नीचे दब जाते हैं।

उस का साहस अनुपम है। भयङ्कर शारीरिक यातना होने पर भी उस का मुख प्रफुल्लित रहता है। वह साहस, नम्रता, सत्य, दया, परोपकार तथा आत्म बलिदान की मूर्ति है। तभी तो उस के प्राण त्यागने पर उस का पिता करुण शब्दों में रो उठता है—

> निराधार धैर्य, कमिव शरणं यातु विनय ?
> क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह ? विरता दानपरता।
> हतं सत्यं सत्यं, व्रजतु कृपणा क्वाद्य करुणा ?
> जगज्जातं शून्यं, त्वयि तनय ! लोकान्तरगते ॥

शङ्खचूड

शङ्खचूड का चरित्र हमारे मन पर एक अमिट सी छाप छोड़ देता है। कई अवसरों पर उस का आचरण नायक से भी अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। नायक तो बोधिसत्व है और आत्म बलिदान की भावना उस के खून में भरी हुई है किन्तु शङ्खचूड तो केवल एक नाग है जिसे स्वामी ने आगे आने

पर, गरुड का आहार बनने का आदेश दिया है। अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करने मे और ऐसा करते हुए अन्य नागो की प्राण-रक्षा करने में वह विशेष गर्व का अनुभव करता है। तभी तो अपने मन्तव्य में सफल न होने पर वह पश्चात्ताप करते हुए कहता है—

"नाहिनाप्राणात्कीर्तिरेका मयाप्ता नापि श्लाघ्या स्वामिनोऽनुष्ठिताज्ञा।"

उसे अपने उच्च कुल का भी अभिमान है। अन्य के प्राणो के विसर्जन से रक्षित हो कर वह अपने कुल को कलङ्कित नही करना चाहता। नायक को उस का स्थान लेने के लिए आग्रह करने पर वह कहता है,

"न खलु शङ्खधवल शङ्खपालकुल शङ्खचूडो मलिनीकरिष्यति।"

और फिर एक महापुरुष के प्राणो के बदले में रक्षित होने पर वह अपने आप को धिक्कारता हुआ कहता है—

"दत्वात्मान रक्षितोऽन्येन शोच्यो हा धिक्! कष्ट! वञ्चितो वञ्चितो ऽस्मि।"

पश्चात्ताप की भट्ठी में जलते रहने की बजाए वह अग्नि में जल कर मर जाना श्रेयस्कर समझता है। उसे अपने भौतिक शरीर के प्रति तनिक भी मोह नहीं है। शरीर की नश्वरता एव क्षणभङ्गुरता से वह भली भाँति परिचित है। इस सम्बन्ध में उसके यह शब्द स्वर्णाक्षरो में लिखे जाने योग्य हैं—

क्रोडीकरोति प्रथम यदा जातमनित्यता।
धात्रीव जननी पश्चात्तदा शोकस्य क क्रम ॥

माता के प्रति उसकी श्रद्धा हमारे हृदयो को विशेष रूप से प्रभावित करती है। वह हार्दिक स्नेह से उसे धैर्य बन्धाता है तथा अपने मरने के बाद उसकी देख-रेख के लिए नायक से अनुनय करता है। वध्य शिला पर चढ़ने से पहले, माता के प्रति उसके स्नेह तथा श्रद्धा के प्रतीक यह शब्द कितने हृदय ग्राही हैं।

सम्भूतास्यामहे मातर्यस्या यस्या गतौ वयम्।
तस्या तस्या प्रियसुते! माता भूयास्त्वमेव न ॥

विदूषक

संस्कृत नाटकों में विदूषक राजा का प्रेम सम्बन्धी कार्यों में सहायक होता है किन्तु इस नाटक में श्रृंगार रस को केवल पहले तीन अङ्कों में स्थान मिला है, अतः विदूषक भी पहले तीन अङ्कों में ही रंगमञ्च पर उपस्थित होता है। अंतिम दो अंकों में वह कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। यद्यपि नाटक में उस विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है तथापि तीसरे अंक में उसने हमारी हास्य-विनोद की प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने में पर्याप्त योग दिया है।

नागानन्द में विदूषक, नाट्य परम्परा के अनुसार कुरूप तथा बेडब है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि नायक ने अक्सर उसकी उपमा भूरे बन्दर से दी है। (त्वमीदृश तादृश कपिलमर्कटाकार इति।) वह ब्राह्मण है किन्तु वेदशास्त्रों से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ है। जब विट उसे वेद मन्त्रों के उच्चारण के लिए कहता है तो वह यूँ बहाना बना कर बात को टाल देता है—

'शीधुगन्धेन पिनद्धानि मे वेदाक्षरणि।"

बुद्धि का अंश भी उसके हिस्से में कम आया प्रतीत होता है। विट तथा नवमालिका सहज ही उसे मूर्ख बनाते हैं और ब्राह्मण होते हुए भी वह चेटी नवमालिका के चरणों में झुकने के लिए विवश हो जाता है।

नाट्य परम्परा ने उसे सदा पटू के रूप में प्रस्तुत किया है और इस नाटक में भी चरित्र की इस विशेषता को प्रकट करने के अवसर को वह हाथ से जाने नहीं देता। विवाह में मिष्ठान्न मिलने की सम्भावना से उसके मुख पर रौनक आ जाती है। और अन्य स्थान पर यह "मे जठराग्निधमधमायते' कह कर अपनी भूख का प्रदर्शन करता है।

विदूषक राजा का विश्वासपात्र मित्र है। राजा के प्रेम विषयक कार्यों में उसने उसकी विशेष सहायता की है।

मलयवती

सिद्धराज विश्वावसु की पुत्री राजकुमारी, नाटक की नायिका है। भगवती गौरी के लिए उसके मन में विशेष श्रद्धा है। लेखक ने उसके सौन्दर्य

की भूरि भूरि प्रशंसा की है। विदूषक उसे पहली बार देखते ही उस के अनुपम रूप से प्रभावित होता है। नायक प्रथम दृष्टिपात में ही उसके आकर्षण से मुग्ध हो उठता है। उसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते समय वह कहता है— स्वाङ्गैरेव विभूषितासि वहसि क्लेशाय किं मण्डनम्।

मलयवती विनम्र एवं लज्जाशील है। विरहाग्नि से जलती हुई भी वह प्रत्यक्ष रूप से संयत रहती है। वह अपने प्रेम के देवता की हृदय से पूजा करती है और उसके देहान्त होने पर चिता में प्रवेश करने का निश्चय कर लेती है।

स्त्री स्वभाव सुलभ ईर्ष्या उसमें भी है। प्रियतम को अन्य स्त्री पर आसक्त समझ कर आत्महत्या का निश्चय कर लेती है किन्तु अपने ही चित्र को देख कर शीघ्र ही आश्वस्त भी हो जाती है।

यह बात हमें स्वीकार करनी होगी कि लेखक नायिका के चरित्र को सजीव नहीं बना पाया है। न तो वह नायक के उच्च आदर्श की पूर्ति के लिए उसे प्रोत्साहन देती है और न ही उसका अपना आकर्षण नायक को सुनिश्चित पथ से विचलित करता है। अन्तिम दो अंकों में वह कठपुतली का सा व्यवहार करती है और अपने सास ससुर के शब्दों की पुनरुक्ति कर सन्तुष्ट हो जाती है। उसके विलाप में हृदय का क्रन्दन सुनाई नहीं देता। नायक के महान् व्यक्तित्व के सम्मुख उसका चरित्र और भी नीरस तथा निस्तेज प्रतीत होता है।

सम्राट हर्ष की जीवनी

श्री हर्ष वर्धन श्री प्रभाकर वर्धन द्वितीय के सपुत्र तथा थानेसर के सम्राट थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके बड़े भाई राज्य वर्धन ६०४ ई में गद्दी पर बैठे। उनकी बहन राज्यश्री कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा से ब्याही हुई थी। मालवा के राजा देवगुप्त ने ग्रहवर्मा का वध कर उसकी धर्मपत्नी को कारागार में डाल दिया। राज्य वर्धन ने बहन के तिरस्कार का बदला लेने के लिए मालवा पर आक्रमण किया। उसने देवगुप्त को पराजित कर लिया

किन्तु स्वयं देवगुप्त के मित्र चङ्गराज शशांक से मारा गया। राज्यश्री ने कन्नौज से मुक्त होकर, विन्ध्याचल की शरण ली। वह आत्म-हत्या करने ही वाली थी जबकि हर्षवर्धन, जो राज्य गद्दी पर बैठने के पश्चात् दण्ड यात्रा के लिए निकले थे, वहाँ पहुँचे और ठीक समय पर अपनी बहन की रक्षा की।

हर्षवर्धन ने ६०६ ई० में राज्य सिंहासन पर आरूढ हुए थे और ६ वर्षों के अल्पकाल में हूणों, गुर्जरों तथा मालवों को पराजित कर, सारे उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित किया। तत्पश्चात् उन्होंने दक्षिण की ओर बढ़ने की सोची किन्तु ६२० ई० में महाराष्ट्र के सम्राट् पुलकेशी द्वितीय से बुरी तरह हार खाई। हर्ष के जीवन में यह पहली तथा अन्तिम पराजय थी।

श्री हर्ष सुसभ्य तथा विद्वान् सम्राट् थे। उनके शासनकाल में साहित्य तथा कला की विशेष समृद्धि हुई। वह स्वयं लेखक थे तथा अन्य साहित्यकारों के प्रति विशेष रूप से उदार थे। बाण, मतङ्ग दिवाकर तथा मयूर जैसे सुविख्यात लेखकों के वे आश्रयदाता थे। बाण के सुप्रसिद्ध हर्ष चरितम् से हमें सम्राट् के सम्बन्ध में बहु मूल्य जानकारी प्राप्त हुई है। राजा शैव मत के अनुयायी थे किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में उनका बौद्ध धर्म की ओर झुकाव हो गया था। यथार्थ में सभी धर्मों की ओर उनका दृष्टिकोण उदार था। कदाचित् इसी लिए नागानन्द में हिन्दू धर्म तथा बौद्ध मत का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत कर पाए हैं।

— ० —

नाटक के पात्र

(पुरुष)

नायक—विद्याधरों का युवराज जीमूतवाहन
विदूषक—आत्रेय नाम का नायक का मित्र
जीमूतकेतु—नायक का पिता
मित्रावसु—नायिका मलयवती का भाई
गरुड—पक्षिराज
शङ्खचूड—एक नाग
शेखरक—विट (नायक का मित्र)
वसुभद्र—कञ्चुकी (नायक का गृह प्रबन्धक)
चेट, किङ्कर, प्रतीहार आदि—नौकर चाकर

(स्त्री)

मलयवती—नायिका (विश्वावसु की पुत्री [illegible]
देवी—राजमाता (नायक की माँ)
गौरी—भगवती पार्वती
वृद्धा—शङ्खचूड नाग की माता
नवमालिका—विट की स्त्री
चतुरिका } —दासियाँ
मनोहरिका

नागानन्दम्

अथ प्रथमोऽङ्क

नान्दी

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षण
पश्यानङ्गशरातुर जनमिम त्राता[1]ऽपि नो रक्षसि ।

नागानन्दम्—नागानाम् आनन्द =नागानन्द, तमधिकृत्य कृत नाटकम् ।
अथवा नागानाम् आन द यस्मिन् नाटके तत नागानन्दम् ।
सस्कृत नाटको का नाम प्राय उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एव प्रधान घटना से सम्बद्ध होता है । इस नाटक में जीमूतवाहन द्वारा नागो के प्रसन्न किए जाने की घटना सर्व-प्रमुख है, अत इसका नाम 'नागानन्दम' सर्वथा समुचित है ।

नान्दी—नाटक की प्रस्तावना अथवा आमुख के आरम्भ में आने वाली प्रार्थना को कहते हैं । इसमे किसी देवता का स्तुतिगान होता है, अथवा दर्शको के लिए आशीर्वाद ।

'आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति सज्ञिता ॥'

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार कभी-कभी नान्दी मे नाटक के पात्रो के नाम मुद्रालङ्कार के रूप मे प्रयुक्त होते हैं और कभी इसमें नाटक की कथा-वस्तु की ओर भी सकेत होता है । प्रस्तुत नान्दी में पहले दो श्लोक सम्मिलित हैं । दूसरे श्लोक में 'मुनीन्द्र' शब्द से जीमूतवाहन सकेतित होता है जिसने नागो की रक्षा करने का दृढ निश्चय कर रखा है तथा जो इस निश्चय से विचलित नही

1 रक्षक

पहला अंक

नान्दी

"ध्यान का बहाना बना कर किस स्त्री का चिन्तन कर रहे हो ? क्षण भर के लिए नेत्र खोल कर कामदेव के तीरों से पीडित इस व्यक्ति को (तो) देखो। रक्षक होते हुए भी रक्षा नहीं करते हो !

होता। 'दिव्यनारीजन' से शङ्खचूड की माता का आभास मिलता है। हो सकता है कि संकेत गौरी की ओर हो। सिद्धो' से अभिप्राय कदाचित् सिद्धो, विद्याधरो आदि से है तथा वासव स्वयं इन्द्र का द्योतक प्रतीत होता है। 'काम मित्रावसु की याद दिलाता है। सम्भव है यह नायक के नायिका के प्रति प्रेम का प्रतीक हो।

अन्वय: —'ध्यानव्याजमुपेत्य का चिन्तयसि ? क्षण चक्षु उन्मील्य अनङ्ग-शरातुरम् इम जन पश्य। त्राताऽपि नो रक्षसि ? मिथ्या कारुणिक असि। त्वत्त निर्घृणतर अन्य पुमान् कुत ?' मारवधूभि सेर्ष्यम्—इति अभिहित बोधौ [मग्न] जिन व पातु ॥१॥

ध्यानव्याज०—नान्दी के इस तथा इस से अगले श्लोक मे भगवान बुद्ध से प्रार्थना की गई है। इस प्राथना में इन के जीवन की उस घटना की ओर संकेत है जब वे निरन्तर तपस्या के पश्चात् बौद्ध-ज्ञान प्राप्त करने वाले थे और इन्द्र ने उन की तपस्या को भंग करने के लिए दल-बल सहित कामदेव को भेजा था। लाख यत्न करने पर भी वह अपने दुराग्रह में सफल न हो सका। मार-वधुओ (काम देव के साथ अप्सराओ आदि) का अनुनय-विनय भी असफल रहा। काम देव के इस प्रकार पराजित होने पर महात्मा बुद्ध के मन में ज्ञान की रेखाएँ सहसा चमक उठीं। बौद्ध-ग्रन्थो में इस घटना को 'मारविजय' का नाम दिया गया है।

ध्यानव्याजम्—ध्यानस्य व्याजम् (ष० तत्पु०) ध्यान के बहाने को

उपेत्य—उप+√इ+ल्यप्—प्राप्त होकर

मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान्[1]
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बोधौ[3] जिनः[4] पातु वः ॥१॥

अपि च—

कामेनाकृष्य चापं[5] हतपटुपटहाऽऽवल्गिभिर्मारवीरै-
र्भ्रूभङ्गोत्कम्पजृम्भा[6]स्मितचलितदृशा दिव्यनारीजनेन ।
सिद्धैः प्रह्वोत्तमाङ्गैः, पुलकितवपुषा विस्मयाद् वासवेन[7],
ध्यायन् बोधेर[8]वाप्तावचलित इति वः[9] पातु दृष्टो मुनीन्द्रः ॥२॥

उन्मील्य—उत्+√मील (बन्द होना)+ल्यप्—खोल कर।

अनङ्गशरातुरम्—अनङ्गस्य शरैः आतुरम्—कामदेव के तीरों से पीडित। अनङ्ग कामदेव का नाम है। पौराणिक कथा के अनुसार कामदेव ने इन्द्र के आदेश से शिवजी की तपस्या को भङ्ग करने की चेष्टा की। शिवजी ने क्रुद्ध होकर इसे भस्म कर दिया। पार्वती के विवाह होने पर उसने इसे जीवन तो दे दिया किन्तु शरीर नहीं लौटाया। शरीर विहीन होने पर ही इसे 'अनङ्ग' (न अङ्गं यस्य सः—जिसका शरीर नहीं है) कहते हैं।

निर्घृणतरः—निर्घृण का तुलनात्मक रूप—अधिक निर्दयी।

मारवधूभिः—मारस्य वधूभिः (ष० तत्पु०) मार भी कामदेव का एक नाम है (मारयति प्राणिनः इति मारः)। मारवधुएँ कामदेव की अनेक स्त्रियाँ हैं जिनमें रति प्रमुख है। इन्हें अप्सरायें भी कहा जा सकता है।

अभिहितः—अभि+√धा+क्त—कहे जाते हुए।

पातु—√पा (रक्षा करना)—लोट् प्र० पु० एक वचन।

अन्वय—कामेन चापम् आकृष्य (दृष्टः) हतपटुपटहावल्गिभिः मारवीरैः (दृष्टः) भ्रूभङ्गोत्कम्पजृम्भास्मितचलितदृशा दिव्यनारीजनेन (दृष्टः) प्रह्वोत्तमाङ्गैः सिद्धैः (दृष्टः) 'ध्यायन् बोधेरवाप्तावचलितः'—इति पुलकितवपुषा वासवेन विस्मयात् (दृष्टः) मुनीन्द्रः वः पातु ॥२॥

---

1 पुरुष 2 ईर्ष्या सहित 3 समाधि में 4 भगवान् बुद्ध 5 धनुष 6 जम्हाई 7 इन्द्र से 8 तत्व ज्ञान की 9 आपकी।

तुम भठ (ही) दयालु हो। तुम से अधिक निर्दयी अन्य पुरुष कहाँ (हो सकता है) ?—इस प्रकार कामदेव की स्त्रियों से ईर्ष्या सहित सम्बोधित किए गए समाधि में (लीन) भगवान् बुद्ध आपकी रक्षा करें।

और भी—

धनुष खींच कर कामदेव से, गम्भीर ध्वनि वाले नगाड़ों को बजाने वाले तथा उछल-कूद मचाने वाले कामदेव के वीरों से भ्रू भङ्ग (भौंहों को मटकाना) कम्पन जम्हाई तथा मुस्कराहट से चञ्चल बनी हुई दृष्टि वाली अप्सराओं से सिर झुकाए हुए सिद्धों से तथा रोमाञ्चित शरीर वाले इन्द्र से आश्चर्य सहित देखे गए तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए ध्यान लगाए हुए मुनियों में श्रेष्ठ (भगवान् बुद्ध) आपकी रक्षा करें।

आकृष्य आ + $\sqrt{}$कृष + ल्यप—खींच कर।

हतपटुपटहा —हता पटवः पटहा यैः ते (बहुव्री०)-पीटे गए हैं गम्भीर ध्वनि वाले नगाड़े जिनसे।

आवल्गिभिः —आ (समन्तात्) वल्गन्ति इति तैः चारों ओर उछल कूद मचाने वाले।

हतपटुपटहाऽऽवल्गिभिः —हतपटुपटहाश्च आवल्गिनश्च तैः (द्वन्द्व०)

मारवीरैः —मारस्य वीरैः (ष० तत्पु०)—कामदेव के वीरों द्वारा।

भ्रू भङ्गोत्कम्पजृम्भास्मितचलितदृशा—भ्रू भङ्गश्च उत्कम्पश्च जृम्भा च स्मितं च इति भ्रूभंगोत्कम्पजम्भास्मितानि (द्वन्द्व०) तैः चलिते दृशौ यस्य सः तेन (बहु०)

दिव्यनारीजनेन—दिव्यश्चासौ नारीजनः (कर्मधा०) तेन।

सिद्ध एक प्रकार के उपदेवता माने जाते हैं जो सच्चरित्रता एवं पवित्रता के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रह्वोत्तमाङ्गैः—उत्तमम् च तत् अङ्गम् उत्तमाङ्गम् (कर्मधा०) प्रह्वम् उत्तमाङ्गं येषां तैः (बहुव्री०) झुके हुए हैं सिर जिनके उनसे।

पुलकितवपुषा—पुलकितं वपुः यस्य सः तेन—रोमाञ्चित शरीर है जिसका उससे।

ध्यायन्—$\sqrt{}$ध्यै + शतृ—ध्यान करते हुए।

मुनीन्द्रः—मुनिषु इन्द्रः (सप्तमी तत्पु०)—मुनियों में इन्द्र अर्थात् श्रेष्ठ (भगवान बुद्ध)

नान्द्यन्ते—

सूत्रधार —अलमतिविस्तरेण । अद्याहमिन्द्रोत्सवे सबहुमानमाहूय नानादिग्देशागतेन राज्ञ श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्त —

"यत्तदस्मत्स्वामिना श्री हर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनाऽलङ्कृत विद्याधरजातकप्रतिबद्ध नागानन्द नाम नाटक कृतमित्यस्माभि श्रोत्रपरम्परया श्रुत, न च प्रयोगतो[1] दृष्टम् । तत्तस्यैव राज्ञ. सकलजन-

नान्दी—व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ २

सूत्रधार —सूत्र धारयतीति सूत्रधार –'सूत्र को धारण करने वाला ।' नाटक में सूत्रधार एक आवश्यक पात्र होता है जो नाटक के अभिनय का प्रबन्ध करता है । प्रस्तावना अथवा आमुख में नाटक की कथावस्तु एव नाटक के लेखक के सम्बन्ध में सूचना देता है । 'सूत्रधार' के शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखकर कई विद्वान् इस परिणाम पर पहुचे हैं कि सस्कृत नाटक का विकास कठपुतलियों के प्रदर्शनो से हुआ है क्योंकि पहले पहल कठपुतलियों के नचाने वाले को ही सूत्रधार कहा जाता होगा ।

अलमतिविस्तरेण—अलम् के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है ।

इन्द्रोत्सव—प्राचीन काल में वर्षा की प्राप्ति के लिए इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए 'इन्द्रोत्सव' किया जाता था । यह एक वार्षिक उत्सव था तथा इस दिन इन्द्र की पताका फहराई जाती थी । इस अवसर पर नाटक आदि भी खेल जाते थे ।

आहूय—आ + √ह्वे + ल्यप्—बुला कर ।

नाना०—नानादिग्देशा तेभ्य आगतेन (ष० तथा पञ्चमी तत्पु०)

पादपद्मोपजीविना—पादौ पद्मे इव पादपद्मे (कर्मधा०), पादपद्मे उपजीव्यति इति पादपद्मोपजीवी तेन (उपपद तत्पु०)—चरण-कमल पर आश्रितो से ।

[1] अभिनय से ।

[नान्दी के अन्त पर]

सूत्रधार—अधिक विस्तार न कीजिए। आज इन्द्रोत्सव पर, नाना दिशाओं के देशों से आए हुए, महाराज श्री हर्षदेव के चरण-कमलों पर आश्रित राजाओं के समूह ने मुझे बड़े आदर के साथ बुला कर कहा है—"हमारे प्रभु श्री हर्षदेव ने अनूठी कहानी की रचना से अलंकृत तथा विद्याधर-जातक से सम्बद्ध नागानन्दम् नाम के नाटक की रचना की है, यह हमने कानों कान सुना (तो) है (किन्तु) अभिनय के रूप में देखा नहीं। अतएव

राजसमूहेन—राज्ञां समूहेन (ष० तत्पु०)। उक्त—√वच+क्त।

यत्तदस्मत्स्वामिना—यत्+तत्+अस्मत्+स्वामिना।

अस्मत्स्वामिना—अस्माकं स्वामिना (ष० तत्पु०)।

अपूर्ववस्तुरचनालङ्कृतम्—अपूर्वं वस्तु अपूर्ववस्तु (कर्मधा०) तस्य रचना (ष० तत्पु०) तेन अलङ्कृतम् (तृ० तत्पु०)—अनूठी कहानी की रचना से अलङ्कृत।

विद्याधरजातकप्रतिबद्धम् विद्याधरजातकेन प्रतिबद्धम् (तृ० तत्पु०)—विद्याधर जातक से सम्बद्ध।

विद्याधरजातक—जातक उन कथाओं को कहते हैं जिनमें महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों की घटनाओं का वर्णन होता है। हमारे इस नाटक की कथावस्तु भी किसी 'विद्याधर जातक' नाम की कथा से ली गई है किन्तु अब वह कथा मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। सिद्धों की तरह विद्याधर भी देवताओं की एक जाति है।

श्रोत्रपरम्परया—श्रोत्राणां परम्परया (ष० तत्पु०) कानों की परम्परा से कानों कान।

सकल०—सकलानां जनानां हृदयम् आह्लादयतीति (उपपद तत्पु०)—सब लोगों के हृदयों को प्रसन्न करने वाला।

नेपथ्यरचनाम्—नेपथ्यस्य रचनाम् (ष० तत्पु०) वेशभूषा की रचना को।

नेपथ्य—संस्कृत नाटकों में यह शब्द तीन भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—

(१) वह स्थान जहाँ पर नट-नटी शृङ्गार आदि करते हैं तथा वस्त्र

हृदयाह्लादिनो[1] बहुमानात् अस्मासु चानुग्रहबुद्धया[2] यथावत्प्रयोगेण अद्य त्वया नाटयितव्यम्" इति। तद् यावत् इदानीं नेपथ्यरचना कृत्वा यथाऽभिलषितं सम्पादयामि। [परिक्रम्यावलोक्य च] आवर्जितानि[3] च सकलसामाजिकमनांसीति मे निश्चयः। यतः—

श्रीहर्षो निपुणः कविः, परिषदप्येषा गुणग्राहिणी,
लोके हारि[4] च बोधिसत्त्वचरितं, नाटये च दक्षा[5] वयम्।
वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं, किं पुन-
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः[6] ॥ ३ ॥

तद् यावदहं गृहं गत्वा गृहिणीमाहूय[7] सङ्गीतकमनुतिष्ठामि[8]।
[परिक्रम्य, नेपथ्याभिमुखमवलोक्य च]इदमस्मद्गृहम्। यावत्प्रविशामि।
[प्रविश्य] आर्ये! इतस्तावत्।

आदि पहनते हैं। (२) सजावट। (३) नट अथवा नटी की वेश भूषा। यहाँ यह शब्द वेश-भूषा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

यथाऽभिलषितम्—अभिलषितमनतिक्रम्य (अव्ययीभाव०)-इच्छा के अनुसार।

सम्पादयामि—सम्+√पद्+णिच्+उ० पु०, एकवचन-बनाता हूँ, करता हूँ।

सकल०—सकलानां सामाजिकानां मनांसि (ष० तत्पु०)-सब दर्शकों के हृदय।

अन्वयः —श्रीहर्षः निपुणः कविः, एषा परिषद् अपि गुणग्राहिणी, लोके च बोधिसत्त्वचरितं हारि, वयं च नाट्ये दक्षाः। इह एकैकम् अपि वस्तु वाञ्छितफलप्राप्तेः पदम्, मद्भाग्योपचयात् समुदितः अयं सर्वः गुणानां गणः किम्? ॥३॥

श्रीहर्षः—भारत के प्रसिद्ध सम्राट् तथा नागानन्दम् के लेखक। पूर्ण परिचय के लिये देखिए भूमिका।

परिषदप्येषा—परिषद्+अपि+एषा।

---

1 प्रसन्न करने वाले (राजा) के 2. कृपा दृष्टि से 3 आकृष्ट कर लिए गए हैं 4 हरने वाला 5. चतुर 6 समूह 7 बुलाकर 8 आयोजन करता हूँ।

द्विजपरिजनबन्धुहिते ! मद्भवनतटाकहंसि ! मृदुशीले !
परपुरुषचन्द्रकमलिन्यार्ये !　　कार्यादितस्तावत् ॥४॥

नटी—[प्रविश्य सास्रम्] आर्य्य ! इयमस्मि मन्दभाग्या । आज्ञापयतु आर्य्यपुत्रः, को नियोगो[1]ऽनुष्ठीयतामिति । अज्ज ! इअम्हि मन्दभग्गा । आणवेदु अज्जउत्तो को णिओओ अणुचिट्ठिअदु त्ति ।

सूत्रधारः —[नटीमवलोक्य] आर्ये ! नागानन्दे नाटयितव्ये किमिदमकारणमेव रुद्यते ।

नटी—आर्य्य ! कथं न रोदिष्यामि ! यतस्तावत्—तात आर्य्यया सह स्थविरभाव[2] ज्ञात्वा अदूरजातनिर्वेदः, कुटुम्बभारोद्वहनयोग्य इदानी त्वमिति हृदये वितर्क्य[3] तपोवनं गतः । अज्ज ! कध ण रोइस्स ? यदो दाव तादो अज्जाए सह थविरभाव जाणिअ अदूरजादणिव्वेदो 'कुडुम्ब भारुव्वहणजोग्गो दाणी तुम' त्ति हिअए वितक्किअ तवोवण गदो ।

अन्वयः—द्विजपरिजनबन्धुहिते ! मद् भवनतटाकहंसि ! मृदुशीले ! परपुरुषचन्द्रकमलिनि ! आर्ये ! कार्यात् इतस्तावत् ॥४॥

द्विजपरिजनबन्धुहिते—द्विजाश्च परिजनाश्च बन्धवश्च (द्वन्द्व०) तेभ्यः हिता (च० तत्पु०) तत्सम्बोधने—ब्राह्मणों, सम्बन्धियों तथा बन्धुओं का हित चाहने वाली !

मद्भवनतटाकहंसि—मम भवन मद्भवनम् (ष० तत्पु०) मद्भवन एव तटाकम् (कर्मधा०) तस्य हंसी—मेरे भवन रूपी सरोवर की हंसिनि !

मृदुशीले—मृदु शील यस्याः सा (बहुव्री०), तत्सम्बोधने—हे कोमल स्वभाव वाली !

परपुरुषचन्द्रकमलिनि—परपुरुषः एव चन्द्र (कर्मधा०), तस्मै कमलिनि

---

1 कार्य 2 बुढ़ापे की भावना को 3 सोच कर ।

ब्राह्मणो, सम्बन्धियो तथा बन्धु–जनो का हित चाहने वाली ! मेरे भवन रूपी सरोवर की हंसिनि ! कोमल स्वभाव वाली ! पर-पुरुष रूपी चन्द्रमा के लिए कमलिनी ! आर्ये ! कार्य–वश इधर आओ।

नटी—[प्रवेश करके, आसू बहाती हुई] आर्य ! लो, मैं अभागिन आ पहुंची। आर्य पुत्र आज्ञा दें कौनसा कार्य करना है ?

सूत्रधार—[नटी को देख कर] आर्ये ! नागानन्द के खेले जाने (के अवसर) पर तुम निष्कारण ही क्यो रो रही हो ?

नटी—आर्य ! रोऊँ कैसे नही, जब कि पूज्य (ससुर) आर्या (सास) के साथ बुढापा देख कर शीघ्र ही वैराग्य उत्पन्न हो जाने से मन में यह सोच कर, कि अब तुम कुटुम्ब का भार सहने योग्य हो गए हो, तपोवन को चले गए हैं।

(ष० तत्पु०) पर-पुरुष रूपी चन्द्रमा के लिए कमलिनि ! इस का भावार्थ यह है कि जिस प्रकार कमलिनी सूर्य के अस्त होने पर मुरझा जाती है और चन्द्रमा की ओर देखती भी नही, इसी प्रकार मेरे न होने पर तू पराये पुरुष की ओर झाकती भी नही।

सास्रम्—अस्रेण सहितम् (क्रिया विशे०)– आंसुओ सहित।

आर्यपुत्र —आर्यस्य पुत्र (ष० तत्पु०)। संस्कृत नाटको में यह शब्द पत्नी द्वारा पति के लिए प्रयुक्त होता है।

आज्ञापयतु—आ + √ज्ञा + णिच् + लोट् — आज्ञा दीजिएगा।

अनुष्ठीयताम्—अनु + √स्था + कर्म वाच्य + लोट् — किया जाए।

रुद्यते—√रुद् + कर्म वाच्य — रोया जा रहा है।

आर्य्यया सह—'सह' के योग में तीसरी विभक्ति का प्रयोग होता है।

अदूरजातनिर्वेद —अदूरम् (क्रिया वि०) जात निर्वेद यस्य स (बहुव्री०), अभी अभी जिन्हें वैराग्य पैदा हो गया था।

कुटुम्बभारोद्वहनयोग्य —कुटुम्बस्य भारस्य उद्वहनम् (ष० तत्पु०) तस्मिन् योग्य (स० तत्पु०)।

सूत्रधार —[सनिर्वेदम] अये ! कथं मां परित्यज्य तपोवनं यातौ पितरौ तत् किमिदानीं युज्यते ? [विचिन्त्य] अथवा कथमहं गुरुचरणपरिचर्य्यासुखं परित्यज्य गृहे तिष्ठामि ? कुतः ?—

पित्रोर्विधातुं शुश्रूषां त्यक्त्वैश्वर्यं क्रमागतम् ।
वनं याम्यहमद्यैव यथा जीमूतवाहनः ॥ ५ ॥

[निष्क्रान्तौ]

[आमुखम्]

परित्यज्य—परि+√त्यज+ल्यप—त्याग कर ।

यातौ —√या+क्त+प्र० वि० द्विवचन । क्तान्त शब्दों का प्रयोग प्रायः कर्म वाच्य एवं भाव वाच्य में होता है किन्तु यदि धातु गत्यर्थक हो तो कर्तृ वाच्य मे भी हो सकता है । ऊपर के वाक्य तात तपोवन गतः तथा प्रस्तुत वाक्य तपोवनं यातौ पितरौ में गतः तथा यातौ शब्द क्तान्त हैं किन्तु √गम तथा √या के गत्यर्थक होने के कारण कर्तृ वाच्य में प्रयुक्त हुए हैं ।

पितरौ—माता च पिता च (एकशेषद्वन्द्व)—माता तथा पिता

युज्यते—√युज+कर्म वाच्य—ठीक है उचित है ।

गुरुचरणपरिचर्य्यासुखं—गुर्वो: (मातापित्रो:) चरणयोः परिचर्यायाः सुखम् (ष० तत्पु०)—माता पिता के चरणों की सेवा के सुख को ।

अन्वय —यथा जीमूतवाहनः क्रमागतम् ऐश्वर्यं त्यक्त्वा पित्रोः शुश्रूषां विधातुम् वनम् (यातः तथा) एव अहं अपि वनं यामि ॥ ५ ॥

विधातुम्—वि+√धा+तुमुन—करने के लिए ।

क्रमागतम्—क्रमात् आगतम् (प० तत्पु०)—(कुल) परम्परा से प्राप्त ।

निष्क्रान्तौ—निस+√क्रम+क्त+प्र० वि० द्विवचन ।

सूत्रधार –[वैराग्य भावना सहित] अरे ! क्या मुझ को भी छोड़ कर माता पिता तपोवन को चले गए हैं ! तो अब क्या करना होगा ? (सोच कर) अथवा मैं अब गुरु चरणों की सेवा के सुख को त्याग कर घर में कैसे ठहर सकता हूँ ? क्योंकि ?

(कुल) परम्परा से प्राप्त वैभव का त्याग कर माता पिता की सेवा करने के लिए यह मैं बन को चलता हूँ जैसे कि जीमूतवाहन (परम्परागत अन्वय को छोड़ कर माता पिता की सेवा करने के लिए बन को चला गया है ।)

[दोनों का प्रस्थान]

[आमुख]

आमुखम्—यह नाटक का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है नाटक का वह भाग जिस में सूत्रधार अपने मित्र नटी या विदूषक से कुछ इस तरह की निजी बात चीत करता है जिस का सम्बन्ध अप्रत्यक्ष रूप से नाटक की कथा वस्तु से होता है। इसे प्रस्तावना और कभी कभी स्थापना भी कहते हैं।

[ततः प्रविशति नायको विदूषकश्च]

नायकः —[सनिर्वेदम्] वयस्य आत्रेय !

> रागस्याऽऽस्पदमित्यवैमि[1], नहि[2] मे ध्वंसीति न प्रत्ययः[3]
> कृत्याऽकृत्यविचारणासु विमुखं को वा न वेत्ति क्षितौ[4] ?
> एवं निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं,
> भक्तया याति यदीत्थमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे ॥ ६ ॥

नायक—नाटक के नायक का नाम जीमूतवाहन है, किन्तु लेखक ने जीमूतवाहन न लिख कर, सामान्य शब्द नायक का ही प्रयोग शायद इस लिए किया है कि पाठक को जीमूतवाहन तथा उसके पिता जीमूतकेतु में स्पष्ट अन्तर दीख सके। पुत्र और पिता दोनों के नामों का संक्षिप्त रूप 'जीमूत' होने से पाठक के मन में गड़बड़ी सी होने की सम्भावना है।

अन्वय—'(इदं यौवनम्) रागस्य आस्पदम्'—इति अवैमि। '(इदं) न ध्वंसि' —इति मे प्रत्ययो नहि। (इदं) 'कृत्याकृत्यविचारणासु विमुखम्—' इति क्षितौ को वा न वेत्ति ? यदि भक्तया पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे (इदं यौवनम्) इत्थम् एव याति, (तदा) इन्द्रियवशम् एव निन्द्यम् अपि इदम् यौवनं (मे) प्रीत्यै भवेत् ॥ ६ ॥

ध्वंसि—ध्वंसिन् (नपुं०) की प्रथमा विभक्ति का एक वचन—नाशवान।

अवैमि—अव + √इ + उत्तम पुरुष, एक वचन —जानता हूँ।

कृत्याकृत्यविचारणासु—कृत्यं च अकृत्यञ्च इति कृत्याकृत्ये (द्वन्द्व) तयोः विचारणासु (ष० तत्पु०)।

निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशम्—निन्द्यम् + अपि + इदम् + इन्द्रियवशम्।

पितरौ—माता च पिता च (एकशेष द्वन्द्व)—माता और पिता।

---

1 रागस्य—आसक्ति का 2 आस्पदम्—पात्र, घर 3 विश्वास 4 पृथ्वी पर।

[तब नायक और विदूषक प्रवेश करते हैं]

नायक—[वैराग्य भाव सहित] मित्र आत्रेय !

"(यौवन) वासना का घर है"—यह मैं जानता हूँ। यह नाशवान नहीं है—ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। (यह) कर्तव्य एवं अकर्तव्य के विवेचन में असमर्थ (प०—प्रतिकूल) है—पृथ्वी पर कौन नहीं जानता। यौवन इन्द्रियों के वश में तथा इस प्रकार निन्दनीय होते हुए भी आनन्द-दायक हो सकता है यदि श्रद्धा सहित माता पिता की सेवा करते हुए मेरा यह जीवन व्यतीत हो जाए। —।

शुश्रूषमाणस्य—√श्रु + सन् + त + शानच + ष० एक वचन—सेवा करते हुए का।

विदूषक· — [सरोषम्] भो वयस्य ! न निर्विण्ण एव त्वमेतावन्त कालमेत योर्जीवन्मृतयोर्वृद्धयोः कृते इदमीदृश वनवासदुःखमनुभवन् । तत् प्रसीद । इदानीमपि तावद्गुरुचरणशुश्रूषानिर्बन्धान्निवृत्य इच्छापरिभोगरमणीय राज्यसौख्यम[1]नुभूयताम् । भो वअस्स ! ण णिव्विण्णो एव तुम एत्तिअ काल एदाण जीवतमुग्राण वुड्ढण्ण किदे इम ईदिम वणवासदुक्ख अणुहवन्तो । ता पसीद । दाणि पि दाव गुरुचरणसुस्सूसाणिब्बधादो णिअत्तिअ इच्छापरिभोगरमणिज्ज रज्जसोक्ख अणुहवीअदु ।

नायक —वयस्य । न सम्यगभिहित त्वया । कुत ? ।

तिष्ठन् भाति[2] पितु पुरो भुवि[3] यथा सिंहासने किं तथा ?
यत् सवाहयत सुख तु चरणौ तातस्य किं राजके ।
किं भुक्ते भुवनत्रये धृतिर[4]सौ भुक्तोज्झिते या गुरो ?
आयास[5] खलु राज्यमुज्झित गुरोस्तत्रास्ति कश्चिद् गुण ॥७॥

विदूषक—यह नायक का ब्राह्मण मित्र होता है जो प्राय उसे प्रेम कार्यों में सहायता देता है । अपने विकृत अगो उत्पटाग बातो तथा विचित्र वश से दर्शको का मनोविनोद करता है । वह विशेष रूप से भोजन प्रिय होता है । 'नागानन्दम्' के विदूषक में प्राय यह सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं । नाटक के तीसरे अक में उसका वार्तालाप एव अभिनय विशेष रूप से हास्यप्रद है ।

निर्विण्ण —निर्+√विद्+क्त — खिन्न दुखी ।

जीवन्मृतयो —जीवन्तौ एव मृतौ (कम धा०) तयो ।

अनुभवन्—अनु+√भू+शतृ — अनुभव करते हुए ।

गुरुचरणशुश्रूषानिर्बन्धात्—गुरुश्च गुर्वी च (एकशेष द्वन्द्व) तयो चरणयो सेवाया निर्बन्धात् (ष० तत्पु०)—माता पिता के चरणों की सेवा के हठ से ।

---

1 सुख को 2 शोभा देता है 3 भूमि पर 4 सन्तोष 5 कष्ट, क्लेश ।

विदूषक--[क्रोध सहित] मित्र! मृतप्राय (शा०--जीते ही मरे हुए) बूढ़े (माता पिता) के लिए इतने काल तक इस प्रकार वनवास का दुख अनुभव करते हुए आपको खेद नहीं होता। (अब) तो कृपा करें। अब भी गुरु चरणों की सेवा के हठ को त्याग कर इच्छानुसार भोगों के भोगने से सुन्दर बने हुए राज्य-सुख का अनुभव कीजिए।

नायक--मित्र! तुम ने ठीक नहीं कहा। क्योंकि--

पिता के सम्मुख भूमि पर बैठा हुआ (पुरुष) जैसे शोभा देता है क्या वैसे सिंहासन पर (बैठा हुआ शोभा देता है)? पिता के चरणों को दबाते हुए जो सुख (मिलता) है क्या वह राज्य (प्राप्ति) में है? तीनों लोकों का भोग करने में वह संतोष कहाँ जो गुरुजनों द्वारा खा कर छोड़े हुए (अन्न खाने) में है। गुरु को त्यागने वाले के लिए राज्य तो निश्चित रूप से क्लेशप्रद है। (क्या) उसमें कोई गुण है?

निवृत्य--नि + वृत् + ल्यप्--हट कर। इच्छापरिभोगरमणीयम्--इच्छया परिभोग तेन रमणीयम्--इच्छानुसार भोगने से रमणीय बना हुआ।

अभिहितम्--अभि + √धा + क्त--कहा।

अन्वय--पितुः पुरः भुवि तिष्ठन् यथा भाति तथा सिंहासने (भाति) किम्? तातस्य चरणौ संवाहयतः हि यत् सुखं (तत्) किं राजके (अस्ति)? या गुरोः भुक्तोज्झिते (धृतिः), असौ किं भुवनत्रये भुक्ते (अस्ति)? उज्झितगुरोः (कृते) राज्यं खलु आयासः। तत्र कश्चित् गुणः अस्ति (किमिति शेषः)? ॥७॥

संवाहयतः--सम् + √वह् + णिच + शतृ + ष० एक वचन--दबाते हुए का। राजके--राज्ञां समूहः इति राजकम् किन्तु यहाँ पर 'राज्य' (राजन् + भावे) अर्थ लेना ही ठीक रहेगा।

भुवनत्रये--भुवनानां त्रयम् (ष० तत्पु०) तस्मिन्--तीनों लोकों में।

धृति०--धृति के साथ पु० सर्वनाम 'असौ' का प्रयोग ठीक नहीं प्रतीत होता जब कि लेखक ने स्वयं इसी पंक्ति में इसी शब्द के लिए स्त्री० सर्वनाम 'या' का प्रयोग किया है। भुक्तोज्झिते--भुक्तं उज्झितम् (ष० तत्पु०), तस्मिन्--भोग कर छोड़े हुए में। उज्झितगुरोः--उज्झितौ गुरू येन सः (बहुव्री०) तस्य--माता पिता को छोड़ देने वाले का।

विदूषकः — [आत्मगतम्] अहो ! अस्य गुरुजनशुश्रूषाऽनुरागः ! [विचिन्त्य] भवतु, तदेतदपि तावत् । अन्यदेव भणिष्यामि । [प्रकाशम्] भो वयस्य ! न खल्वहं राज्यसुखमेव केवलमुद्दिश्य एवं भणामि, अन्यदपि ते करणीयमस्त्येव । अहो से गुरुअणसुस्सूसाणुराओ ! भोदु ता एदं पि दाव अण्णं विअ भणिस्सं । भो वअस्स ! ण क्खु अहं रज्जसोक्खं ज्जेव केवलं उद्दिसिअ एव्वं भणामि, अण्णं पि दे करणिज्जं अत्थि ज्जेव ।

नायकः — [सस्मितम्] वयस्य ! ननु कृतमेव[1] यत्करणीयम् । यतः —

न्याय्ये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता,
नीतो बन्धुजनस्तथात्मसमतां, राज्ये च रक्षा कृता ।
दत्तो दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽप्यर्थिने,
किं कर्त्तव्यमतः परं, कथय वा यत्ते स्थितं चेतसि ॥ ८ ॥

आत्मगतम् — जहाँ कोई बात अपने मन में ही कही जाती है, उसे आत्मगतम् अथवा स्वगतम् कहा जाता है । नाटकों में यह बात दर्शकों को सुना कर ही कही जाती है किन्तु समझा यह जाता है कि अन्य पात्र उसे नहीं सुन रहे हैं । इस रीति के कुछ अस्वाभाविक होने पर कई आधुनिक आलोचक संस्कृत नाटकों में इसे एक दोष मानते हैं ।

गुरुजनशुश्रूषाऽनुरागः — गुरुजनस्य शुश्रूषा (ष० तत्पु०), तस्याम् अनुरागः (स० तत्पु०) — गुरुजनों की सेवा में अनुराग ।

उद्दिश्य — उत् + √दिश् + ल्यप् — उद्देश्य से ।

अन्वयः — न्याय्ये वर्त्मनि प्रकृतयः योजिताः, सन्तः सुखे स्थापिताः, बन्धुजनः आत्मसमतां नीतः, राज्ये च रक्षा कृता, दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमः अपि अर्थिने दत्तः, अतः परं किं कर्त्तव्यम्; कथय वा, यत्ते चेतसि स्थितम् ॥ ८ ॥

न्याय्ये — न्यायात् अनपेतम् न्याय्यम् (न्याय + यत् अनपेतार्थ में), तस्मिन् ।

1. यत्र ।

विदूषक—[अपने आप] अहो ! गुरजनों की सेवा में इस का (इतना) अनुराग ! [सोचकर] अच्छा तो इसी (बात) को अन्य ढंग से कहूँगा [प्रकट रूप से] अरे मित्र ! मैं केवल राज्य सुख के विचार से ही सचमुच ऐसा नहीं कह रहा हूँ, आप ने कुछ और भी तो करना है।

नायक—[मुस्कराहट के साथ] मित्र ! जो कुछ करने योग्य था, (वह तो) निश्चय ही कर चुका हूँ। देखो—

प्रजा न्याय-पथ पर लगा दी गई है। सज्जनों को सुख पूर्वक (अपने अपने स्थानों पर) बिठा दिया है; बन्धु जनों को अपने समान बना दिया है और राज्य में रक्षा (की व्यवस्था) कर दी गई है। मनोरथ से भी अधिक फल देने वाला कल्प-वृक्ष याचकों को दे दिया है। बताओ, इस से अधिक और क्या करने योग्य है जो तुम्हारे मन में टिका हुआ है।

वर्त्मनि—वर्त्मन् शब्द का स० एक वचन—मार्ग पर।

योजिता —√युज् + णिच् + क्त—लगा दी है।

स्थापिता —√स्था + णिच् + क्त। आत्मसमताम्—आत्मन समताम् (ष० तत्पु०)। दत्तमनोरथाधिकफल —दत्त मनोरथात् अधिक फल येन स (बहुव्री०)– जो इच्छा से अधिक फल देता था।

कल्पद्रुम —देवताओं के पांच वृक्षों में से एक वृक्ष। ये वृक्ष इन्द्र के उद्यान में मिलते हैं। पारिजात, मन्दार, हरिचन्दन, सन्तान – ऐसे ही चार अन्य वृक्षों के नाम हैं। कल्प वृक्ष से जो चाहो, वही मिल जाता है। बृहत्कथा (जिस से प्रस्तुत नाटक की कथा-वस्तु ली गई है) के अनुसार नायक के पिता जीमूतकेतु को यह वृक्ष कुल-परम्परा से प्राप्त हुआ था तथा जीमूतवाहन का जन्म भी इसी की कृपा से हुआ था। प्रस्तुत प्रसंग में यह बताया गया है कि नायक ने किञ्चित् भी लोभ न करते हुए पिता से प्राप्त यह वृक्ष भी याचकों को दे दिया था।

अर्थिने—अर्थिन् शब्द का चतु० एक वचन—याचक के लिए। देने के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

विदूषक—हे मित्र ! अत्यन्त साहसी (एव) दुष्ट मतङ्गदेव आप का विरोधी है। उसके निकट रहते, मुख्य मन्त्री से भी अनुपालित राज्य आप के बिना सुदृढ नही है—ऐसा प्रतीत होता है।

नायक—धिक्कार है मूढ ! मतङ्ग राज्य का हर लेगा'—ऐसी शङ्का करते हो।

विदूषक—जी हां !

नायक—यदि ऐसा है तो क्या हो सकता है ? निश्चय ही अपने शरीर से लेकर सब कुछ परोपकार के लिए ही रख रहा हूँ। जो अपने आप नही दे रहा हूँ, वह पिता जी के अनुरोध के कारण (है)। तब इस तुच्छ पदार्थ की चिन्ता से क्या लाभ ? अच्छा है यदि पिता जी की आज्ञा का ही पालन हो जाए। और पूज्य (पिता जी) ने मुझे आज्ञा दी है वत्स जीमूतवाहन ! बहुत दिनों तक भोगने के कारण इस स्थान की समिधा कुशा तथा कुसुम समाप्त हो गए हैं तथा मूल फल कन्द तथा वन्य-धान्य प्राय खाये जा चुके हैं।

करने के लिए तैयार है राज्य का तो कहना ही क्या। पिता के प्रति श्रद्धा ही उसे आत्म-बलिदान से रोक रही है।

तातानुरोधात्—तातस्य अनुरोधात् (ष० तत्पु०)-पिता के अनुरोध से।

अवस्तुना—न वस्तुना (नञ् तत्पु०)-तुच्छ पदार्थ से।

अनुष्ठिता—अनु + √स्था + क्त + स्त्री० पालन की गई।

आज्ञापित —आ + √ज्ञा + णिच् + क्त— आज्ञा दिया गया हूँ।

बहुदिवसपरिभोगेण—बहून् दिवसान् परिभोग (द्वि० तत्पु०) तेन। निरन्तर की जाने वाली क्रिया के सम्बन्ध में स्थान तथा कालवाचक शब्दों के साथ द्वितीय विभक्ति का प्रयोग होता है अत समास-विग्रह में बहून् दिवसान् लिखा गया है।

दूरीकृत०—दूरीकृतानि समिधश्च कुसुमानि च यस्मिन् तत् (बहुव्री०)—समाप्त हो गए है समिधा, कुशा तथा कुसुम जिस (स्थान) पर।

उपभुक्त०—उपभुक्तम् मूलञ्च फलञ्च कन्दश्च नीवारश्च प्रायेण यस्मिन् तत् (बहुव्री०)।

तदितो मलयपर्वतं गत्वा किञ्चित्तस्मिन्निवासयोग्यमाश्रमपदं निरूपय[1] इति । तदेहि मलयपर्वतमेव गच्छाव ।

विदूषकः—यद् भवानाज्ञापयति । एतु भवान् । ज भव ग्राणवेदी । एदु भवं ।

[इत्युभौ परिक्रामत]

विदूषकः—[अग्रतोऽवलोक्य] भो वयस्य ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व । एष खलु सरसघनस्निग्धचन्दनवनोत्सङ्गपरिमिलनलग्नबहुलपरिमलो विषमतटनिपतमजर्जरायमाणनिर्भरोच्छलितशिशिरसीकराऽऽसारवाही प्रथमसङ्गमोत्कण्ठितप्रियाकण्ठग्रह इव मार्गपरिश्रममपनयन् रोमाञ्चयति प्रियवयस्य मलयमारुतः । भो वग्रस्स ! पेक्ख पेक्ख, एसो क्खु सरसघणसिणिद्धचदणवणुच्छङ्गपरिमिलणलग्गवहुलपरिमलो, विषमतडणिवडणजज्जरिज्जतणिच्छलितसिसिरसिग्ररासारवाही, पढमसङ्गमुक्कण्ठिग्रपिग्राकण्ठग्गहोविग्र मग्गपरिस्समं ग्रवणग्रतो रोमाञ्चेदि पिग्रवग्रस्स मलग्रमारुदो ।

मलय पर्वत—प्राचीन परम्परा के अनुसार, दक्षिण में स्थित सात पर्वतों—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान् ऋक्ष, विन्ध्य तथा पारियात्र—में से एक है । यहा चन्दन बहुत होता है । इस नाटक के अनुसार यह पर्वत समुद्र के साथ ही था । यहा पर सिद्धो के राजा विश्वासु राज्य करते थे । इसी के तपोवन में जीमूतकेतु आ कर निवास कर रहे थे ।

किञ्चित्तस्मिन्निवासयोग्यम्—किंचित् + तस्मिन् + निवासयोग्यम् ।

आश्रमपदम्—आश्रमस्य पदम् (ष० तत्पु०) —आश्रम-स्थान ।

तदेहि—तत् + एहि—तो आओ ।

सरस०—सरसानि, घनानि स्निग्धानि च (द्वन्द्व) यानि चन्दनवनानि (कर्मधा०) तेषाम् उत्सङ्गे (ष० तत्पु०) परिमिलनेन (तृ० तत्पु०) लग्न. बहुल परिमल (कर्मधा०) यस्य स (बहुव्री०)— सरस, घने, चिकने जो चन्दन

---

1 देखो

नायक — [निरूप्य सविस्मयम्] अये ! प्राप्ता एव वय मलयपर्वतम् ।
[समन्तादवलोक्य][1] अहो रमणीयमस्य ! तथा हि ।—

माद्यद्दिग्गजगण्डभित्तिकषणैर्भग्नस्रवच्चन्दन
क्रन्दत्कन्दरगह्वरो जलनिधेरास्फालितो[2] वीचिभि[3] ।
पादालक्तकरक्तमौक्तिकशिल सिद्धाङ्गनानां[5] गतै,
सेव्योऽय[6] मलयाचल[7] किमपि मे चेत करोत्युत्सुकम्[8] ॥६॥

तदेह्यारुह्य वासयोग्य किञ्चिदाश्रमपद निरूपयाव ।

विदूषक —एव कुर्व । [अग्रत स्थित्वा] एतु भवान् । एव्व करेम्ह । एदु भव ।

नायक —[दक्षिणाक्षिस्पन्दन सूचयन्] अये !—

रामणीयकम्—रमणीयस्य भाव (भाव वुञ)–रमणीयता शोभा ।

अन्वय —माद्यद्दिग्गजगण्डभित्तिकषणै भग्नस्रवच्चन्दन, जलनिधे वीचिभि आस्फालित (अतएव) क्रन्दत्कन्दरगह्वर, सिद्धाङ्गनानां गतै पादालक्तमौक्तिकशिल अय मलयाचल सेव्य, (अय) मे चेत किमपि उत्सुक करोति ॥६॥

माद्यद्दिग्गजगण्डभित्तिकषणै —माद्यन्त ये दिग्गजा (कर्मधा०) तेषाम् या भित्तय तासाम् कषणै (ष० तत्पु०) – मदमस्त दिग्गजो के गण्डस्थलो के रगडने से ।

दिग्गज—आठ दिशाओं में उन की रक्षा के लिए एरावत पुण्डरीक आदि आठ हाथी ।

भग्नस्रवच्चन्दन —भग्ना अत एव स्रवन्त चन्दना यस्मिन् (बहुव्री०) छिले हुए हैं अत बह रहे हैं चन्दन वृक्ष जिस में, (एसा मलय पर्वत) ।

1 समन्तात्=चारों ओर 2 जलनिधे =समुद्र की 3 आस्फालित =टकराया गया 4 लहरों से 5 अङ्गनानाम्=स्त्रियों के 6 सेवन किए जाने योग्य 7 अचल = पर्वत 8 उत्सुकम्=उत्कण्ठित ।

नायक—[देख कर, विस्मय सहित] अरे ! हम तो मलय पर्वत को आ ही पहुंचे । [चारों ओर देख कर] कितनी शोभा है इस की ! क्यों कि—

सेवन किए जाने योग्य यह मलय पर्वत—जिस में मद-मस्त दिग्गजों के गण्डस्थलों के रगड़ने से छिले हुए चन्दन के वृक्ष बह रहे हैं, जिस से समुद्र की लहरें टकरा रही हैं, (तथा) जिस की गुफाओं के भीतरी भाग शब्दायमान हैं, जिस की मोतियों की शिलाएँ (सिद्ध ललनाओं के आने-जाने से), चरणों की (गीली) महावर से लाल हैं—मेरे चित्त को कुछ उत्कण्ठित सा बना रहा है ।

तो आओ, इस पर चढ़ कर रहने योग्य किसी आश्रम-स्थान को देखें ।

विदूषक—ऐसा ही करते हैं । [आगे टहर कर] आइए आप ।

[चढ़ने का अभिनय करते हैं ।]

नायक—[दाईं आंख के फड़कने की सूचना देते हुए] अरे !

कन्दत्कन्दरगह्वर—कन्दन्ति कन्दराणाम् गह्वराणि यस्य सः (बहुव्री०)—शब्दायमान हैं गुफाओं के भीतरी भाग जिस के (ऐसा मलय पर्वत)

पाद०—पादयोः यः अलक्तः तेन रक्ता मौक्तिकानां शिला यस्मिन् (बहुव्री०)—चरणों की महावर से लाल हैं मोतियों की शिलाएं जिस में (ऐसा मलय पर्वत) ।

गमे—गम्+क्त भावे—आने जाने से । करोत्युत्सुकम्—करोति+उत्सुकम् ।

आरुह्य—आ+√रुह्+ल्यप् चढ़ कर ।

एतु भवान्—'भवत्' सर्वनाम के साथ प्रथम पुरुष का प्रयोग होता है, मध्यम का नहीं ।

दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्—दक्षिणम् अक्षि तस्य स्पन्दनम्—दाईं आंख का फड़कना । पुरुष की दाईं तथा स्त्री की बाईं आंख का फड़कना, शुभ शकुन का सूचक माना गया है । इस के विपरीत पुरुष की बाईं तथा स्त्री की दाईं आंख का फड़कना अपशकुन को सूचित करती है—ऐसा परम्परागत विश्वास है ।

दक्षिणं[1] स्पन्दते[2] चक्षुः, फलाकाङ्क्षा न मे क्वचित्[3]।
न च मिथ्या[4] मुनिवचः, कथयिष्यति किं न्विदम् ? ॥१०॥

विदूषकः —भो वयस्य ! अवश्यमासन्नं ते प्रियं निवेदयति। भो वअस्स !
अवस्समासण्णं दे पिअं णिवेदेदि।

नायकः —एवं नाम, यथाऽह भवान्।

विदूषकः —[विलोक्य] भो वयस्य ! प्रेक्षस्व, प्रेक्षस्व। एतत् खलु सविशेषघन-स्निग्धपादपोपशोभितं, सुरभिहविर्गन्धगर्भितोद्दामधूमनिर्गमम् अनुद्विग्न-(मार्ग)-सुख-निषण्णश्वापदगणं तपोवनमिव लक्ष्यते। भो वअस्स ! पेक्ख-पेक्ख। एदं क्खु सविसेसघणसिणिद्ध पाअवोवसोहिअं, सुरहिहविगन्धग-ब्भिणुद्दामधूमणिग्गमं, अणुव्विग्ग-(मग्ग)-सुहणिसण्णसावअगणं तवोवणं विअ लक्खीअदि।

नायक—सम्यगुपलक्षितम्। तपोवनमेवैतत्। कुतः —

अन्वयः —दक्षिणं चक्षुः स्पन्दते, मे क्वचित् फलाकाङ्क्षा न, मुनिवचश्च न मिथ्या, इदं किन्नु कथयिष्यति ? ॥१०॥

फलाकाङ्क्षा—फलस्य आकाङ्क्षा (ष० तत्पु०)—फल की इच्छा।

मुनिवचः —मुनीना वचः—मुनियों के वचन।

आसन्नम्—आ+सद्+√क्त—निकट, शीघ्र होने वाली।

सविशेष०—सविशेषम् घनाः स्निग्धाश्च ये पादपाः तैः सुशोभितम् (तृ० तत्पु०) विशेष रूप से घने तथा चिकने वृक्षों से सुशोभित।

सुरभि०—सुरभिश्चासौ हविर्गन्धः (कर्मधा०) तेन गर्भितः उद्दामश्च यः धूमः (कर्मधा०), तस्य निर्गमम् यस्मिन्, तत् (बहुव्री०)—सुरभित आहुतियों की सुगन्धि से परिपूर्ण बहुत सा धूआं निकल रहा है जिस में।

अनुद्विग्न०—न उद्विग्नाः अनुद्विग्नाः (नञ् तत्पु०) अतएव सुखं (यथा स्यात् क्रियावि०) निषण्णाः ये श्वापदाः (कर्मधा०) तेषां गणः (ष० तत्पु०)

---

1. दाईं 2. फड़क रही है 3. कहीं 4. झूठ।

दाईं आँख फड़क रही है (किन्तु) मुझे फल की इच्छा तो यहाँ भी नहीं है और मुनियों के वचन झूठे नहीं होते। यह (दाईं आख) क्या करेगी ?

विदूषक—अरे मित्र! अवश्य ही (यह) तुम्हारी शीघ्र होने वाली (किसी) प्रिय बात की सूचना दे रही है।

नायक—जैसा आप कहते हैं, वैसा ही हो।

विदूषक—(देखकर) अरे मित्र! देखो। यह सचमुच तपोवन सा दीख पड़ता है जो विशेष रूप से घने, चिकने वृक्षों से सुशोभित है, जिस में से सुरभित आहुतियों की सुगन्धि से परिपूर्ण बहुत सा धूआं निकल रहा है (तथा) जिस में पशुओं का समूह भय-रहित होने के कारण सुख से बैठा है।

नायक—ठीक अनुमान लगाया आप ने। यह तपोवन ही है। क्योंकि—

अस्मिन् यस्मिन् तत् (बहुव्री०) भय रहित होने से सुख से बैठा है पशुओं का समूह जिस में।

उद्विग्नाः उत्+√विज्+क्त। निषण्ण—नि+√सद्+क्त—बैठे हुए।
लक्ष्यते √लक्ष्+कर्मवाच्य प्रतीत होता है।

वासोऽर्थं दययैव नातिपृथव[1] कृत्तास्तरूणा[2] त्वचो
भग्नाऽऽलक्ष्यजरत्कमण्डलु नभ स्वच्छ पयो[3] नैर्झरम् ।
दृश्यन्ते त्रुटितोज्झिताश्च बटुभि[4]र्मौञ्ज्य. क्वचिन्मेखला[5]
नित्याकर्णनया[6] शुकेन[7] च पद साम्नामिद[8] पठ्यते ॥११॥

तदेहि प्रविश्याऽवलोकयाव: । [प्रवेश नाटयत]

[सविस्मय विलोक्य] अहो ! नु खलु मुदितमुनिजनप्रविचार्यमाण सन्दिग्धवेदवाक्यविस्तरस्य, पठद्बटुजनच्छिद्यमानाऽऽर्द्रसमिध:, तापसकुमारिकापूर्यमाणबालवृक्षालवालस्य प्रशान्तरमणीयता तपोवनस्य ।

अन्वय:—वासोऽर्थं तरुणा त्वच दयया एव नातिपृथव कृत्ता, भग्नानेकजरत्कमण्डलु नभ स्वच्छ नैर्झर पय, क्वचित् च बटुभि त्रुटितोज्झिता मौञ्ज्य मेखला दृश्यन्ते, नित्याकर्णतया शुकेन साम्नाम् इद पद च पठ्यते ॥ ११ ॥

वासोऽर्थम्—वाससे इदम् वासोऽर्थम् (नित्य समास)—पहनने के लिए।

नातिपृथव ०—वृक्षो में भी प्राण होते हैं, एसा हमारे पूर्वज मानते थे। अत पहनने के लिये वे उन की बहुत मोटी छाल नही उतारते थे।

कृत्ता —√कृत् (काटना)+क्त- काटी अथवा छीली गई है।

भग्न०—भग्ना आलक्ष्या जरन्त कमण्डलव यस्मिन् तत् (बहुव्री०)- पुराने टूटे फूटे कमण्डल साफ दीखते है, जहां पर।

नभस्वच्छम्—नभ इव स्वच्छम् (कर्मधा०)-आकाश की तरह निर्मल।

नैर्झरम्—निर्झर + अण्—झरनो का।

दृश्यन्ते—√दृश्+कर्मवाच्य—दीख पड़ते हैं।

---

1. पृथव =मोटा, मोटी 2 छालें 3 जल 4 बटुभि =बालको द्वारा, ब्रह्मचारियो से 5 मेखला=तगड़ियां 6 आकर्णनया=सुनने से 7 तोते से 8 साम्नाम=सामवेद के।

पहनने के लिए वृक्षों की छालें दया के कारण ही अधिक मोटी नहीं छीली गई हैं। झरने का जल जिस में पुराने (तथा) टूटे फूटे कमण्डल स्पष्ट दिखाई देते हैं आकाश की तरह निर्मल है। यहाँ ब्रह्मचारियों द्वारा तोड़ने पर फेंकी गईं मूञ्ज की तड़ागियाँ दीख पडती हैं। नित्य प्रति सुनते रहने से तोता सामवेद के शब्दों का पाठ कर रहा है।

तो आश्रम प्रविष्ट हो कर देखते हैं।

[प्रविष्ट होने का अभिनय करते हैं]

(आश्चर्य देख कर) अहो! कैसा शान्तिमय सौन्दर्य है तपोवन का, जिस में प्रसन्न मुनिजन सन्देह-युक्त वेद वाक्यों के समूह पर भली भाँति विचार कर रहे हैं, (वेद मन्त्रों का) उच्चारण करते हुए ब्रह्मचारी गीली गीली समिधाएं तोड़ रहे हैं (तथा) तापस कुमारियाँ छोटे पौधों की क्यारियों को (जल से) भर रही हैं।

त्रुटितोज्झिता-प्रथमं त्रुटिता ततः उज्झिता (कर्मधा०)—टूटने पर फेंके हुए। जातमृत सुप्तोत्थित इसी प्रकार के अन्य समासों के उदाहरण हैं।

मौञ्जय —मुञ्जी+अण+ङीप् मुञ्ज की।

मुदित०—मुदितेन मुनिजनेन (कर्मधा०) प्रकर्षेण विचार्यमाणः सदिग्ध वेदवाक्यानां विस्तरः यस्मिन् तस्य बहुव्री०—प्रसन्न मुनि जनों से भली भाँति विचार किया जा रहा है सन्देह युक्त वेद वाक्यों के समूह पर जहाँ (ऐसे तपोवन का)।

प्रविचार्यमाणः—प्र+वि+√चर+णिच+कर्मवाच्य+शानच।

विस्तर वि+√स्तृ+घञ्। सदिग्ध सम्+√दिह+क्त।

पठद्बटु०—पठता बटुजनेन आच्छिद्यमानाः आर्द्राः समिधः यस्मिन् तस्य (बहुव्री०)—उच्चारण करते हुए ब्रह्मचारियों से तोडी जा रही है समिधाएं जहाँ पर (उस तपोवन का)।

आच्छिद्यमान—आ+√छिद+कर्मवाच्य+शानच।

तापस०—तापसानां कुमारिकाभिः आपूर्यमाणानि बालवृक्षाणाम् आलवालानि यस्मिन् तस्य (बहुव्री०)— तापस-कुमारियों से भरी जा रही हैं छोटे पौधों की क्यारियाँ जहाँ पर (ऐसे तपोवन का)।

आपूर्यमाण—आ+√पृ+कर्मवाच्य+शानच्।

इह हि—

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दैः,
नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टीः किरन्तः,
कथमतिथिसपर्यां शिक्षिताः शाखिनोऽपि ॥१२॥

तन्निवासयोग्यमिदं तपोवनम् । मन्ये भविष्यतीह निवसतामस्माकं निर्वृतिः[1] ।

विदूषकः —भो वयस्य! किं खल्वेते ईषद्वलितकन्धरा, निश्चलमुखापसरद्दर दलितदर्भकवला समुन्नमितदत्तैककर्णाः सुखनिमीलितलोचना आकर्णयन्त[3] इव हरिणा लक्ष्यन्ते । भो वअस्स! किं णु क्खु एदे ईसिवलिदकन्धरा, णिच्चलमुहोवसरन्तदरदलिददब्भकवला समुण्णमिददिण्णेक्ककण्णा सुहणिमीलिदलोअणा आअण्णन्ता विअ हरिणा लक्खीअन्ति ।

अन्वय —अमी (शाखिनः) भृङ्गशब्दैः मधुरं स्वागतमिव वदन्ति, फलनम्रैः शिरोभिः नतिमिव कुर्वते, पुष्पवृष्टीः किरन्तः मम अर्घ्यम् इव ददतः, (तदेवम्) शाखिनः अपि अतिथिसपर्यायाम् शिक्षिताः ? ॥१२॥

भृङ्गशब्दैः—भृङ्गाणां शब्दैः (ष० तत्पु०)– भवरों की झँकार से ।
फलनम्रैः —फलैः नम्रैः (तृ० तत्पु०) ।
कुर्वते—√कृ (आत्मने०)+प्रथम पुरुष बहु० व० ।
ददते—√दा (आत्मने०)+प्रथम पु०, बहुवचन ।
अर्घ्यं—किसी देवता अथवा पूज्य व्यक्ति की पूजा के लिए समर्पित सामग्री को अर्घ्य कहते हैं 　　पुष्पवृष्टीः —पुष्पाणां वृष्टीः (ष० तत्पु०) ।
किरन्त – कृ√+शतृ+प्रथमा वि०, बहु वचन—बरसाते हुए ।
अतिथिसपर्याम् —अतिथीनां सपर्याम् (ष० तत्पु०)–अतिथियों की सेवा को ।
निवसताम् नि+√वस्+शतृ+ष० बहुवचन—रहते हुओं का ।
ईषद्वलितकन्धराः —ईषद् (क्रियावि०)वलिता कन्धरा यैः ते (बहुव्री०)—कुछ मोड़ी हुई है गर्दन जिन्होंने, वे ।

1 सुख 2 ... 3 सुनते हुए ।

नायक —[वर्णे दत्वा] सखे ! सम्यगुपलक्षितम्[1]। तथाहि—

स्थानप्राप्तया दधान[2] प्रकटितगमका मन्द्रतारव्यवस्था
निर्ह्लादिन्या[3] विपञ्च्या[4] मिलितमलिरुतेनेव तन्त्रीस्वरेण[5] ।
एते दन्तान्तरालस्थिततृणकवलच्छेदशब्द नियम्य
व्याजिह्माङ्गा कुरङ्गा स्फुटललितपद गीतमाकर्णयन्ति[6] ॥१३॥

विदूषक —भो वयस्य ! क पुनरेष तपोवने गायति ? भो वअस्स ! को उण एसो तवोवणे गाअदि ?

अन्वय —एते कुरङ्गा दन्तान्तरालस्थिततृणकवलच्छेदशब्द नियम्य व्याजिह्माङ्गा स्थानप्राप्तया प्रकटितगमका मन्द्रतारव्यवस्था दधान निर्ह्लादिन्या विपञ्च्या अलिरुतेनेव तन्त्रीस्वनेन मिलित स्फुटललितपद गीतम् आकर्णयन्ति ॥१३॥

स्थान०—इस श्लोक में सगीत सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया गया है। स्थान स अभिप्राय हृदय कण्ठ तथा सिर है। हृदय से निकलने वाले स्वर को मद्र, कण्ठ से निकलने वाले को मध्य तथा सिर स प्राप्त होने वाले को तार कहते हैं। स्वर निकालने के प्रकार (स, र ग इत्यादि) को गमक का नाम दिया गया है।

स्थानप्राप्तया—स्थानाना प्राप्तया (ष० तत्पु०)।

दधानम्—√धा+शानच्+द्वि० विभक्ति एक वचन।

प्रकटितगमकाम्—प्रकटिता गमका यस्या ताम् (बहुव्री०)-

मन्द्रतारव्यवस्थाम्—मन्द्रश्च तारश्च (द्वन्द्व), तयो व्यवस्थाम् (ष० तत्पु०)।

दन्त०—दन्तान्तराले स्थितस्य तृणाना कवलस्य छेदस्य शब्दम्—दातो के बीच में रखे हुए तिनको के कौर के चबाने के शब्द को।

---

1 सम्यक्=ठीक 2 धारण करते हुए के 3 मच्छा बजने वालों के 4 वीणा के 5 तन्त्र=तार 6 आकर्णयन्ति=सुन रहे हैं।

नायक—[कान लगा कर] मित्र ! आपने ठीक समझा। जैसे कि—ये हिरण, दातों के बीच रखे हुए तिनकों के कौर को चबाने के शब्द को रोक कर शरीर को टेढ़ा किए हुए स्थानों (हृदय, कण्ठ तथा सिर) से प्राप्त होने के कारण स्पष्ट प्रतीत होने वाले गमकों (स, र, ग इत्यादि) तथा मन्द्र (गम्भीर स्वर) एवं तार (उच्च स्वर) के नियम को धारण करने वाले, अच्छी बजने वाली वीणा के, भंवरों की झंकार जैसे तारों के स्वर से मिले हुए (तथा) स्पष्ट और सुन्दर पद वाले गीत को सुन रहे हैं।

विदूषक—अरे मित्र ! तपोवन में (भला) यह कौन गाता होगा।

नियम्य—नि+√यम्+ल्यप्—रोककर। नायक का अभिप्राय है कि मृग भी संगीत के माधुर्य पर इतने अधिक मुग्ध हो रहे हैं कि उन्होंने तिनकों को चबाना छोड़ दिया है ताकि उन के चबाने का शब्द, संगीत सुनने में बाधा न बन सके।

व्याजिह्माङ्गाः—व्याजिह्मम् अङ्गं येषाम् ते (बहुव्री०)—टेढ़ा है शरीर जिन का।

स्फुटललितपदम्—स्फुटानि ललितानि च पदानि यस्मिन् तत् (बहुव्री०) स्पष्ट तथा सुन्दर पदों वाले (गीत) को।

नायक —यथेता कोमलाङ्गुलितलाभिहन्यमानाः नातिस्फुट ववणन्ति तन्त्र्यस्तया काकलीप्रधान च गीयत इति तर्कयामि । [अङ गुल्यग्रेणाग्रतो निर्दिशन्] अस्मिन्नायतने[2] देवतामाराधयन्ती काचिद्दिव्या योषिदुपवीणय[3] तीति ।

विदूषक —भो वयस्य ! एहि आवामपि देवतायतन प्रेक्षावहे । भो वअस्य ! एहि अम्हेवि देवदाअदण पक्खम्ह ।

नायक —वयस्य ! साधूक्त भवता । वन्द्या खलु देवता । [उपसर्पन्[4] सहसा स्थित्वा] वयस्य ! कदाचिद् द्रष्टुमनर्होऽय जनो भविष्यति, तदावां तमाल गुल्मान्तरितौ पश्यन्तावावसर प्रतिपालयाव[5] । [तथा कुरुत]

[तत प्रविशति भूमावुपविष्टा वीणा वादयन्ती मलयवती चेटी च]

नायिका—[गायति]

कोमल०—कोमलानि च तानि अगुलीना तलानि तै अभिहन्यमाना (त० तत्पु०)—कोमल अगुलियो के अग्रभागो से बजाई जाती हुई ।

अभिहन्यमाना —अभि+√हन्+कर्मवाच्य+शानच ।

काकलीप्रधानम्—काकली प्रधान यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा (क्रियावि०) सूक्ष्म एव मधुर ध्वनि को काकली कहते हैं ।

निर्दिशन्—निर्+√दिश+शतृ—सकेत करते हुए ।

उपवीणयति—उप+वीणा शब्द से नाम धातु ।

उक्तम्— √वच+क्त ।

वन्द्या — √वन्द्+यत्—वन्दना के योग्य ।

उपसर्पन्—उप+√सृप्+शतृ—पास जाते हुए ।

कदाचिद्द्रष्टुमनर्हं —कदाचित्+द्रष्टुम्+अनर्ह —कदाचित् देखने योग्य नहीं ।

---

1 तन्त्र्य =तारें 2 आयतने=मन्दिर में 3 योषित्=स्त्री 4 पास जाते हुए 5 हम दो प्रतीक्षा करते हैं ।

नायक—यद्यपि कोमल अंगुलियों के अग्रभागों से बजाई जाती हुई तारें बहुत स्पष्ट नहीं बज रही हैं तो मैं समझता हूँ कि प्रधानतया 'काकली' (सूक्ष्म मधुर ध्वनि) में गाया जा रहा है। (अंगुली के अग्रभाग से आगे संकेत करता हुआ) इस मन्दिर में देवता की आराधना करती हुई कोई दिव्य स्त्री वीणा बजा रही है।

विदूषक—हे मित्र! आओ हम भी देव-मन्दिर को देखते हैं।

नायक—मित्र! आपने ठीक ही कहा। देवता निश्चय ही वन्दनीय हैं। (पास जाते हुए, सहसा ठहर कर) मित्र! शायद इस व्यक्ति को देखना हमारे लिए उचित न हो। अतः तमाल (वृक्षों) के झाड़ में छिप कर देखते हुए अवसर की प्रतीक्षा करें। [वैसा ही करते हैं]

[तब भूमि पर बैठी हुई वीणा बजाती हुई मलयवती तथा चेटी प्रवेश करती हैं]

नायिका—[गाती है]।

यहाँ परस्त्री को देखना अनुचित बताया गया है। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" के पाँचवें अङ्क में कालिदास जी ने भी कहा है—"अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।" किन्तु कन्याओं को देखने में कोई दोष नहीं है जैसा कि आगे चलकर लेखक ने नायक के मुख से कहलवाया है—"निर्दोषदर्शना हि कन्यका भवन्ति।"

अयं जनः—'जन' शब्द अंग्रेजी के Person की तरह पुरुष एवं स्त्री, दोनों के लिए प्रयुक्त होता है।

तमालगुल्मान्तरितौ—तमालानां गुल्मम् (ष० तत्पु०) तेन अन्तरितौ (तृ० तत्पु०)—तमाल वृक्षों के झाड़ में छिपे हुए।

पश्यन्तौ—√दृश्+शतृ+प्र० वि०, द्विवचन—देखते हुए।

उपविष्टा—उप+√विश्+क्त+स्त्री०—बैठी हुई।

उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि ! ।
अभिवाञ्छितं[1] प्रसिध्यतु भगवति ! युष्मत्प्रसादेन ॥ १४ ॥

नायकः—[कर्णं दत्त्वा] वयस्य ! अहो गीतम् ! अहो वाद्यम् !

व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना[2] दशविधेनाप्यत्र लब्धाऽमुना,[3]
विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधाऽयं[4] लय. ।
गोपुच्छाप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि सम्पादिता-
स्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः, सम्यक् त्रयो दर्शिताः ॥ १५ ॥

अन्वय.—उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते, भगवति, गौरि, युष्मत्प्रसादेन मम अभिवाञ्छित प्रसिध्यतु ॥ १४ ॥

उत्फुल्ल०—उत्फुल्ल च तत् कमलम् (कर्मधा०) तस्य ये केसरा तेषा य पराग (ष० तत्पु०) तद्वत् गौरा द्युतिर्यस्या तत्सम्बुद्धौ—खिले हुए कमल के केसर की धूलि की तरह कान्ति वाली हे (भगवति गौरि) ।

गौरि—गौरी शब्द के सम्बोधन का एक वचन—गौरी शिव की पत्नी पार्वती का नाम है । उपयुक्त वर की प्राप्ति के लिए अब भी कई हिन्दु कन्याएँ गौरी का व्रत रखती हैं । गौरी की कृपा से ही नायक तथा नायिका विवाह-सूत्र में बन्धे थे तथा उसी की कृपा से ही नायक मर जाने पर भी जी उठा था ।

युष्मत्प्रसादेन—युष्माक प्रसादेन (ष० तत्पु०)—आप की कृपा से ।

अहो गीतम् ! अहो वाद्यम् !—इन शब्दों के प्रयोग से लेखक ने अद्भुत रस पैदा करने की चेष्टा की है । इस से पहले शान्त रस की प्रधानता रही है और अब शृगार रस आने वाला है । शान्त एव शृगार रस स्वभाव में एक दूसरे के प्रतिकूल हैं तथा नाट्य-शास्त्र के नियमानुसार एक के बाद सहसा दूसरे का आ जाना अनुचित माना गया है । इन दोनों के बीच में अद्भुत रस का प्रयोग कर के इसी दोष का निराकरण किया गया है ।

---

1. अभीष्ट, मनोरथ 2 स्पष्टता 3 इस से 4 त्रिधा=तीन प्रकार का ।

खिल हुए कमल के केसर की धूलि की तरह कांति वाली हे भगवति गौरि ! आप की कृपा से मेरा अभीष्ट सिद्ध हो ।

नायक–[कान लगाकर] मित्र ! कैसा (सुन्दर) गाना और कैसा (सुन्दर) बजाना है ! इस गीत में दस प्रकार के व्यञ्जन धातुओं (स्वरों की बारीकियों को प्रकट करने की विधियों) ने स्पष्टता प्राप्त कर रखी है द्रुत मध्य और विलम्बित —इन तीन प्रकारों में भेद को प्राप्त हुआ यह लय अच्छी तरह स्पष्ट है । गोपुच्छा इत्यादि तीनों तरह की यतियां क्रमशः रखी गई हैं और तत्त्व ओघ एवं अनुगत —तीनों बजाने की विधियां अच्छी तरह प्रदर्शित की गई हैं ।

अन्वय —अत्र अमुना दशविधेन अपि व्यञ्जनधातुना व्यक्तिः लब्धा द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नः गोपुच्छप्रमुखाः त्रिधा अयं लयः विस्पष्टः तिस्रः अपि यतयः सम्पादिताः तत्त्वौघानुगताः त्रयः वाद्यविधयः सम्यक् दर्शिताः ॥१५॥

व्यक्ति०—इस श्लोक में भी संगीत शास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है । इन का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है ।

व्यञ्जन धातु —स्वरों की बारीकियों को प्रकट करने वाली दस प्रकार की विधियों को व्यञ्जन धातु कहते हैं ।

लय —तालों के बीच के समय को लय कहते हैं द्रुत मध्य तथा लम्बित या विलम्बित इसी के तीन प्रकार हैं

यति —तालों के विराम को यति कहते हैं । समा स्रोतोवहा तथा गोपुच्छा यह तीन प्रकार की यतियां हैं ।

वाद्य विधि —बजाने की विधि । तत्त्व ओघ तथा अनुगत —यह तीन बजाने की विधियां हैं । लब्धा —√लभ+क्त—प्राप्त की गई है ।

द्रुतमध्य०—द्रुतश्च मध्यश्च लम्बितश्च (द्वन्द्व) तैः परिच्छिन्न (तृ० तत्पु०) —द्रुत मध्य तथा विलम्बित—इन तीन प्रकारों से भेद को प्राप्त हुआ अर्थात् तीन प्रकार का । परिच्छिन्न —परि+√छिद्+क्त ।

गोपुच्छा प्रमुखा —गोपुच्छा प्रमुखा यासां ताः (बहुव्रीहि०) ।

सम्पादिता —सम्+√पद्+णिच्+क्त—बनाई अथवा रखी गई है ।

दर्शिता —√दृश्+णिच्+क्त—दिखाई गई है

चेटी—[सप्रणयम्] भर्तृदारिके ! चिर खलु वादयन्त्या[1] कुतो न परिश्रमो-ऽग्रहस्तयो ? भट्टिदारिए ! चिर क्खु वादअतीय कुदरणपरिस्समो अग्गहत्थाण ?

नायिका—[साधिक्षेपम्] हञ्जे ! कुतो मे देव्या पुरतो[2] वीणा वादयन्त्या अग्रहस्तयो परिश्रम ! हञ्जे ! कुदो मे देवीए पुरदो वीण वादअन्तिए अग्गहत्थाण परिस्समो !

चेटी—भर्तृदारिके ! ननु भणामि किमेतस्या निष्करुणाया: पुरतो वादितेन ? या एतावन्त काल कन्यकाजनदुष्करैर्नियमोपासनैराराधयन्त्या[3] अद्यापि न ते प्रसाद दर्शयति। भट्टिदारिए ! ण भणामि कि एदाए णिक्करुणाए पुरदो वाइदेण ? जा एत्तिअ काल कण्णआजणहि णिअमोवासणेहि आराधअन्तीए अज्जवि ण दे पसाद दसेदि।

विदूषक—कन्यका खल्वेषा, किं न प्रेक्षावहे ? कण्णआ क्खु एसा, कि ण पेक्खम्ह ?

नायक—को दोष ? निर्दोषदर्शना कन्यका भवन्ति। किन्तु कदाचिदस्मान् दृष्ट्वा बालभावसुलभलज्जासाध्वसाभ्र चिरमिह तिष्ठेत्, तदनेनैव लताजालान्तरेण[4] पश्याव ।

विदूषक :—एव कुर्व । एव्व करेम्ह । [उभौ पश्यत]

हञ्जे—अरी अथवा री । सस्कृत नाटको में दासियो को प्राय 'हञ्जे' शब्द से ही सम्बोधित किया जाता है।

भर्तृदारिके—नाटको में दासिया अपने स्वामी की बेटी को इसी नाम से सम्बोधित करती हैं।

निष्करुणाया —निष्क्रान्ता करुणा यस्या , तस्या (बहुव्री०)—निर्दयी के।

एतावन्त कालम्—समय के योग में दूसरी विभक्ति का प्रयोग होता है।

---

1 बजाती हुई के 2 सामने 3 आराध्यन्त्या=आराधना करती हुई का 4 अन्तरेण=बीच से।

चेटी—(प्रेम के साथ) राजकुमारी ! बहुत देर से बजाते हुए आप की अंगुलियाँ थक क्यों नहीं रही हैं ?

नायिका—[झिड़कती हुई] अरी ! देवी के सम्मुख वीणा बजाते हुए मेरी अंगुलियों को थकावट कैसी ?

चेटी—राजकुमारी ! मैं तो कहती हूँ कि इस निर्दयी के आगे बजाने से (क्या लाभ) ? जो इतने समय तक कन्याओं द्वारा कठिनता से किए जाने योग्य नियम एवं उपासनाओं में आराधना करते हुए आप पर अब भी कृपा दृष्टि नहीं करती ।

विदूषक—यह तो कन्या है, क्यों न देखें ?

नायक—कोई दोष नहीं । कन्याओं को देखने में दोष नहीं लगता । किन्तु कहीं हमें देखकर बालिका-सुलभ लज्जा के भय से यहां बहुत देर न ठहरे, अतः इसी लता जाल के बीच में से ही देखते हैं ।

विदूषक—ऐसा ही करते हैं । [दोनों देखते हैं]

कन्यकाजनदुष्करं—कन्याजनेन दुष्करं (तृ० तत्पु०)—लड़कियों से कठिनता से किए जाने योग्य ।

नियमोपासन—नियमाश्च उपासनानि च (द्वन्द्व) ते ।

दर्शयति—√दृश् + णिच—दिखाती है ।

निर्दोषदर्शना—निर्दोष (निर्गत दोष यस्मात्—बहुव्री०) दर्शन यस्या सा — (बहुव्री०)

बालभाव०—बालभावेन सुलभा या लज्जा तया यत् साध्वसम् (तृ० तत्पु०) बालिका-सुलभ लज्जा के भय से ।

विदूषक,—[दृष्ट्वा सविस्मयम्] भो वयस्य ! प्रक्षस्व प्रेक्षस्व । एषा न केवल वीणाविज्ञानेनैव सुखमुत्पादयति यावदनेन वीणाविज्ञानानुरूपेण रूपेणाप्यक्ष्णो सुखमुत्पादयति । का पुनरेषा ? किं तावद्देवी ? अथवा नागकन्यका ? आहोस्विद्विद्याधरदारिका, उताहो सिद्धकुलसम्भवेति ? भो वअस्स, पेक्ख पक्ख । अहह अच्छरिअम् । ण केवल वीणाविण्णाणेणव्व कण्णाण मुह करदि जाव इमिणा वीणाविण्णाणाणुरूवेण रूवणावि अच्छीण मुह उप्पादेदि । का उण एसा ? किं दाव देई ? आदु णाअकण्णआ ? आहो विज्जाहरदारिआ ? उदाहो सिद्धकुलसम्भवेत्ति ?

नायक —[सस्पृहमवलोकयन्] वयस्य ! क्षेयमिति नावगच्छामि, एतत्तु नरह जानामि—

स्वर्गस्त्री यदि तत् कृतार्थमभवच्चक्षु[1]सहस्र हरे-
र्नागी चेन्न रसातल शशभृता[2] शून्य मुखेऽस्या स्थिते ।
जातिर्न सकलान्यजातिजयिनी विद्याधरी चेदिय,
स्यात् सिद्धान्वयजा यदि त्रिभुवने सिद्धा प्रसिद्धास्तत ॥१६॥

उत्पादयति—उद्+√पद्+णिच्—पैदा करती है ।
वीणाविज्ञानानुरूपेण—वीणाया विज्ञानम् तस्य अनुरूपण (ष० तत्पु०) ।
रूपेणाप्यक्ष्णो —रूपण+अपि+अक्ष्णो —रूप से भी आखो के ।
नागकन्यका—विद्याधरो एव सिद्धो की तरह, नाग भी उपदेवताओ की एक योनि माने गए है । वे पाताल-लोक मे रहते है । नाग स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य क लिए प्रसिद्ध कही जाती हैं ।
आहोस्वित् उताहो—दोनों अव्यय हैं और 'अथवा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।
सिद्धकुलसम्भवा—सिद्धाना कुल सभव (जन्म) यस्या (बहुव्री०) ।
अन्वय —यदि इयं स्वर्गस्त्री तत् हरे चक्षु सहस्र कृतार्थम् अभवत्, नागी चेत् अस्या मुखे स्थिते रसातल शशिभृता न शून्यम् । इय चेत् विद्याधरी

---

1 कृतार्थ—सफल 2 चन्द्रमा से ।

विदूषक—(देखकर आश्चर्य सहित) अरे मित्र ! देखो देखो । कितने आश्चर्य की बात है ! यह केवल वीणा की निपुणता से ही आनन्दित नही करती अपितु वीणा की निपुणता के समान ही रूप से भी आँखो को सुख देती है । यह फिर कौन है ? क्या कोई देवी है ? अथवा नागकन्या है ? या विद्याधर बालिका है ? या फिर सिद्धो के कुल में पैदा हुई है ?

नायक—(उत्कण्ठा सहित देखते हुए)—मित्र ! यह कौन है मैं नही जानता । किन्तु मैं यह जानता हूँ—

यदि स्वर्ग की स्त्री है तो इन्द्र के हजार नेत्र सफल हो गए । यदि नागकन्या है तो इसके मुख के उपस्थित होते हुए नाग लोक चन्द्र शून्य नही है और यदि यह विद्याधर बालिका है तो हमारी जाति अन्य समस्त जातियो को जीतने वाली हो गई । यदि यह सिद्धो के वंश से है तो सिद्ध तीनो लोको मे प्रसिद्ध हो जायगे ।

न जाति सकलान्यजातिजयिनी यदि सिद्धान्वयजा स्यात् तत त्रिभुवन सिद्धा प्रसिद्धा ॥१६॥

चक्षुसहस्रम्—चक्षुषा सहस्रम् (ष० तत्पु०) ।

कृतार्थम—कृत अर्थ यस्य तत् (बहुव्री०) ।

शशभृता—शश बिभर्ति इति तेन (उपपद तत्पु०)— शश चिह्न को धारण करने वाला । चन्द्रमा में जो कालिमा का छोटा सा चिह्न दीख पडता है उसे शश कहते हैं । इसी तरह चन्द्रमा को शशांक, शशिन् आदि नामो से भी पुकारा जाता है ।

रसातल शून्यम्—कहा जाता है कि पाताल लोक में चन्द्रमा नही चमकता । किन्तु यदि चन्द्र से भी अधिक सुन्दर यह कन्या पाताल देश की रहने वाली है तो कौन कह सकता है कि वहाँ चन्द्रमा का अभाव है । अभिप्राय यह कि यह सुन्दरी ही वहाँ के चन्द्रमा के अभाव की पूर्ति करती है ।

अन्यजातिजयिनि—अन्या जातय (कर्मधा०) जतु शीलम् अस्या (उपपद तत्पु०) ।

सिद्धान्वयजा—सिद्धानाम् अन्वये जाता (उपपद तत्पु०)—सिद्धो के कुल मे पैदा हुई । त्रिभुवन—त्रयाणा भुवनाना समाहार (द्विगु) तस्मिन् ।

विदूषकः—[नायकमवलोक्य सहर्षमात्मगतम्] दिष्ट्या[1] चिरस्य तावत् कालस्य पतित खल्वेष गोचरे[2] मन्मथस्य[3]। [आत्मानं निर्दिश्य मौनमभिनीय] अथवा नहि नहि ममैव एकस्य ब्राह्मणस्य। दिट्ठिआ चिरस्स दाव कालस्स पडिदो क्खु एसो गोअरे मम्महस्स। अहवा णहि णहि मम एव्व एक्कस्स बम्हणस्स।

चेटी—[सप्रणयम्] भर्तृदारिके! ननु भणामि किमेतस्या निष्करुणाया पुरतो वादितेन? [इति वीणामाक्षिपति[4]] भट्टिदारिए। ण भणामि किं एदाए णिक्करुणाए पुरदो वाइदेण?

नायिका—[सरोषम्] हञ्जे। मा भगवतीं गौरीमधिक्षिप[5]। नन्वद्य कृतो मे भगवत्या प्रसादः। हञ्जे! मा भअवदिं गोरिं अधिक्खिव। णं अज्ज किदो मे भअवदीए पसादो।

चेटी—(सहर्षम्) भर्तृदारिके! कथय तावत् कीदृशः? भट्टिदारिए! कहेहि दाव कीरिसो?

नायिका—हञ्जे! जनामि, अद्य स्वप्ने एतामेव वीणां वादयन्ती भगवत्या गौर्या भणितास्मि—'वत्से मलयवती! परितुष्टास्मि तवैतेन वीणाविज्ञानातिशयेन, अनया च बालजनदुष्करयाऽसाधारणया ममोपरि भक्त्या च। तद्विद्याधरचक्रवर्ती अचिरेणैव ते पाणिग्रहणं[6] निर्वर्त्तयिष्यति' इति। हञ्जे। जाणामि, अज्ज सिविणए एदं एव्व वीणं वादअन्ती भअवदीए गोरिए भणिदम्हि,—"वच्छे मलअवदि! परितुट्ठम्हि तुह एदिणा वीणाविण्णाणादिसएण इमाए अ बालजणदुक्कराए असाहारणाए ममोवरि भत्तिए। ता विज्जाहरचक्कवट्टी अचिरेण ज्जेव पाणिग्गहणं दे णिव्वत्तइस्सदि" त्ति।

दिष्ट्या—भाग्य है।

सहर्षम्—विदूषक की प्रसन्नता का कारण यह है कि नायक अब वैराग्य भाव को त्याग कर प्रेम मार्ग पर अग्रसर हुआ है अत वह उसे अपनी मरजी

---

1 सौभाग्य से 2 वश में 3 कामदेव के 4 [illegible] 5 [illegible]—उलाहना करो 6 विवाह को।

विदूषक—(नायक को देखकर हर्ष-पूर्वक अपने आप) सौभाग्य से बहुत देर के बाद यह कामदेव के वश में जा ही पड़ा। (अपनी ओर संकेत करके और भोजन का अभिनय करके) अथवा यूँ क्यों न कहूँ कि एक मात्र मुझ ब्राह्मण के (वश में हो गया)।

चेटी—(प्रेम सहित) राजकुमारी! मैं सच कहती हूँ, इस निर्दयी (देवी) के सम्मुख बजाने से (क्या लाभ)? [वीणा खींच लेता है]

नायिका—(क्रोध सहित) अरी! भगवती गौरी की निन्दा मत करो। भगवती ने आज तो मुझ पर कृपा कर ही दी है।

चेटी—(प्रसन्नता सहित) राजकुमारी! कहो तो, (वह कृपा) कैसी है?

नायीका—अरी! जानती हूँ, आज स्वप्न में इसी वीणा को बजाते हुए मुझे भगवती गौरी ने कहा है— बेटी मलयवती! तुम्हारी इस वीणा बजाने की अत्यधिक निपुणता एवं मेरे ऊपर कन्याओं के लिए दुष्कर तथा असाधारण श्रद्धा से मैं सन्तुष्ट हूँ। अतः विद्याधरों के सम्राट के साथ तुम्हारा शीघ्र ही विवाह होगा।

के अनुसार नाच नचा कर अपना कार्य सिद्ध कर सकेगा। हो सकता है कि विदूषक का संकेत, विवाह सम्पन्न होने पर स्वादिष्ट भोजन की प्राप्ति की ओर हो।

वीणाविज्ञानातिशयेन—वीणाया विज्ञानस्य अतिशयेन (प० तत्पु०) वीणा के ज्ञान की अधिकता से।

विद्याधरचक्रवर्ती—विद्याधराणां चक्रवर्ती (प० तत्पु०)-विद्याधरों का सम्राट।

निवर्तयिष्यति—नि+√वृत्+णिच्+लृट्—पूरा करेगा।

चेटी—[सहर्षम्] भर्तृदारिके ! यद्येवं, तत्कस्मात् स्वप्नोऽयं भण्यते ? ननु हृदयस्थितो वरो देव्या दत्तः। भट्टिदारिए ! जइ एव्वं, ता कीस सिविणअं इमं भणीअदि ? ण हिअअट्ठिदो वरो देईए दिण्णो।

विदूषक—[श्रुत्वा] भो वयस्य, अवसरः खल्वेष आवयोर्देवीदर्शनस्य। तदेहि प्रविशाव। भो वअस्स ! अवसरो क्खु एसो अह्माण देवीदंसणस्स। ता एहि पविसह्य।

नायक—न तावत्प्रविशामि।

विदूषक—[अनिच्छन्तमपि नायकं बलादाकृष्य उपसृत्य] स्वस्ति भवत्यै। भवति ! सत्यमेव चतुरिका भणति, वर एव स देव्या दत्तः। सोत्थि भोदीए। भोदि ! सच्चअं ज्जेव चदुरिआ भणादि, वरो एव्व सो देईए दिण्णो।

नायिका—[ससाध्वसमुत्तिष्ठन्ती[1] नायकमुद्दिश्य] हञ्जे ! 'को नु खल्वेष ? हञ्जे ! को णु क्खु एसो ?

चेटी—[नायकं निरूप्यापवार्य] अनया अनन्यसदृश्या आकृत्या 'एष स भगवत्या प्रसादीकृत' इति तर्कयामि। इमाए अण्णण्णसरिसाए आकिदीए एसो सो भअवदीए पसादीकिदो त्ति तक्केमि।

नायिका—[सस्पृहं सलज्जञ्च नायकमवलोकयति।]

अनिच्छन्तम्—न इच्छन्तम् (√इष +शतृ+द्वि० विभक्ति एक वचन)।
आकृष्य—आ+√कृष्+ल्यप्।
उपसृत्य—उप+√सृ+ल्यप्।
स्वस्ति भवत्यै—स्वस्ति (कल्याण) के योग में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त होती है।
उत्तिष्ठन्ती—उत्+√स्था+शतृ+स्त्री०—उठती हुई।
उद्दिश्य—उत्+√दिश्+ल्यप्—संकेत करके।

1 ससाध्वसम्—भय सहित।

चेटी—(हर्ष सहित) राजकुमारी ! यदि ऐसा है, तो फिर इस स्वप्न क्यों कहती हो ? देवी जी ने तो सचमुच (आपको) मनचाहा वर (वरदान, पति) दिया है।

विदूषक—[सुन कर] अरे मित्र ! हमारे लिए देवी जी के दर्शन का यही अवसर है, तो आइए, पास चलते हैं।

नायक—मैं तो प्रवेश नहीं करूंगा।

विदूषक—[न चाहते हुए भी नायक को बल-पूर्वक खींच कर तथा पास जाकर] श्रीमती जी का कल्याण हो। श्रीमती जी,! चतुरिका ठीक ही तो कहती है, देवी जी ने यह वर ही दिया है।

नायिका—[भय पूर्वक उठती हुई, नायक की ओर संकेत कर के] अरी ! यह कौन है।

चेटी—[नायक को देखकर, एक ओर होकर] इस अनुपम आकृति से मैं अनुमान लगाती हूँ यही (वर) देवी द्वारा प्रसाद-रूप में दिया गया है।

नायिका—[उत्कण्ठा एवं लज्जा सहित नायक को देखना है]

अपवार्य्य—यदि कोई गुप्त बात एक अथवा अनेक पात्रों से मुँह फेर कर, किसी अन्य पात्र विशेष से कहनी हो, उस 'अपवारितम्' या 'अपवार्य्य' का संकेत दे कर कहा जाता है। दर्शकों को यह शब्द सुना कर कहे जाते है। अपवार्य्य' नाटक का पारिभाषिक शब्द है तथा संस्कृत में इस की व्याख्या यूँ है—

"तद्भवेदपवारितम् । रहस्य तु यदन्यस्यपरावृत्य प्रकाश्यते"

अनन्यसदृश्या—न अन्या सदृशी या, तया (बहुव्री॰)—जो अन्य के सदृश नहीं है, इससे, अर्थात् अनुपम (आकृति) से।

प्रसादीकृतः—अप्रसादः प्रसादः सम्पद्यमानः कृतः, इति—प्रसाद + च्वि + √कृ + क्त।

नायक—

तनुरियं[1] तरलायतलोचने !
श्वसितकम्पितपीनघनस्तनि !
श्रममलं[2] तपसैव[3] गता पुनः
किमिति सम्भ्रमकारिणि ! खिद्यते ? ॥१७॥

नायिका—[अपवार्य] हञ्जे अतिसाध्वसेन न शक्नोमि एतस्याभिमुखी[4] स्थातुम्। हञ्जे ! अदिसद्धसेण ण सक्कणोमि एदस्स अहिमुही ठादुं।
[नायकं तिर्यक्[5] सलज्जञ्च पश्यति किञ्चित् पराङ्मुखी तिष्ठति]

चेटी—भर्तृदारिके किमेतत् ? भट्टिदारिए ! किं एदम् ?

नयिका—हञ्जे ! न शक्नोमि एतस्याभिमुखी स्थातुम्। तदेह्यन्यतो गच्छाव। हञ्जे ! ण सक्कुणामि एकस्स आसण्णे चिट्ठिदुं। ता एहि अण्णादो गच्छम्ह।
[उत्थातुमिच्छति]

विदूषकः—भो बिभेति खल्वेषा ! मम पठितविद्यामिव मुहूर्त्तं धारयामि[6]
भो ! भाअदि क्खु एसा ! मम पठिअविज्ज विअ मुहुत्तअ धारेमि

नायक—को दोष ?

विदूषक—भवति ! किमत्र युष्माकं तपोवने ईदृश आचार ? येनातिथि-रागतो वाङ्मात्रेणापि[7] न सम्भाव्यते। भोदि ! किं एत्थ तुम्हाण तवोवणे ईरिसो आआरो ? जेण अदिहि आअदो वाआमेत्तएण वि ण सभवामि अदि ?

अन्वय—हे तरलायतलोचने ! श्वसितकम्पितपीनघनस्तनि ! सम्भ्रमकारिणि ! इयं तनुः तपसा एव अलम् श्रमम् गता। पुनः किमिति खिद्यते ॥१७॥

तरलायतलोचने—तरले आयते च लोचने यस्या सा तत्सम्बोधने (बहुव्री०) हे चपल तथा विशाल नेत्रों वाली !

1. तनु—शरीर 2 श्रमम्—थकावट को 3 अलम्—ज्यादा 4 अभिमुखी—सम्मुख 5 टेढा 6 धारण करता हूँ, रोकता हूँ 7 वाङ्म्—वाणी।

नायक—हे चञ्चल एवं विशाल नेत्रों वाली ! श्वास से कम्पित स्थूल तथा घने स्तनों वाली ! यह शरीर तो तपस्या से ही काफी थक चुका है। हे (सहसा भेंट होने से) डरने वाली ! फिर क्यों अपने को कष्ट दे रही हो ?

नायिका—[एक ओर] अरी ! अधिक भय के कारण मैं इसके सम्मुख ठहरने में समर्थ नहीं हूँ।

[नायक की ओर टेढ़ी दृष्टि से तथा लज्जा-पूर्वक देखती हुई कुछ मुँह फेर कर ठहर जाती है]

चेटी—राजकुमारी ! यह क्या ?

नायिका—अरी ! इसके सम्मुख मैं ठहर नहीं पाती हूँ। तो आओ, कहीं और चलती हैं। [उठना चाहती है]

विदूषक—अरे, यह तो डरती है। अपनी पढ़ी हुई विद्या के समान इसे क्षण भर रोक सकता हूँ।

नायक—क्या बुराई है ?

विदूषक—श्रीमती जी ! क्या यहां आप के तपोवन में ऐसा ही शिष्टाचार है, कि आए हुए अतिथि का वाणी मात्र से भी सम्मान नहीं किया जाता।

श्वसित०—श्वसितेन कम्पितौ पीनौ घनौ च स्तनौ यस्याः सा तत्सम्बोधने—(हे श्वास से कम्पित स्थूल तथा घने स्तनों वाली !

सम्भ्रम कारिणि—सम्भ्रमं करोति या (उपपद तत्पु०) भय करने वाली।

खिद्यते √खिद्+कर्म वाच्य दुःखी हुआ जाता है।

पराङ्मुखी—पराङ्मुखं मुखं यस्याः सा (बहुव्रीहि०) मुड़ा हुआ है मुख जिसका।

तदेहागतो—तत्+एहि+अन्यतः। उत्थातुम् उत्+√स्था+तुमुन्।

पठित०—यह उक्ति विदूषक की स्मरण-शक्ति के दुर्बल होने का परिचय देती है। मूर्ख याद की हुई विद्या को थोड़ी देर के लिये ही धारण कर पाता है। नायिका को भी वह इसी प्रकार थोड़ी देर रोक रखने की बात कहता है।

सम्भाव्यते—सम्+√भू+णिच्+कर्म वाच्य सम्मानित नहीं किया जाता।

चेटी—[नायिकां दृष्ट्वा आत्मगतम्] अनुरज्यतीवाऽत्रैतस्या दृष्टि । भवतु, तदेव तावद्भणिष्यामि । [प्रकाशम्] भर्तृदारिके ! युक्त भणति ब्राह्मण, उचित खलु तेऽतिथिजनसत्कार । तत् किमीदृशे महानुभावे प्रतिपत्तिमूढेव तिष्ठसि ? अथवा तिष्ठ त्वम्, अहमेव यथाऽनुरूप[1] करिष्यामि । [नायकमुद्दिश्य] स्वागतमार्य्यस्य । आसनपरिग्रहेण अलङ्करोत्वार्य्य इम प्रदेशम् । अणुरज्जदि विअ एत्थ एदाए दिट्ठी भोदु एव्व दाव भणिस्स । भट्टिदारिए ! जुत्त भणादि बह्मणो । उइदो क्खु दे अदिहिजणक्कारो । ता किं ईरिसे महाणुभावे पडिवत्तिमूढा चिट्ठसि ? अहवा चिट्ठ तुम अह एव्व जधाणुरूव्व करिस्स । साअद अज्जस । आसणपडिग्गहेण अलङ्करेद् अज्जो इम पदेस ।

विदूषक —भो वयस्य ! शोभन[2]मेषा भणति । उपविश्य अत्र मुहूर्त्तं विश्राम्याव: । भो वअस्स ! सोहण ऐसा भणादि उवविसिअ एत्थ मुहुत्तअ वीसमम्ह ।

नायक —युक्तमाह भवान् । [उभावुपविशत]

नायिका—[चेटीमुद्दिश्य सलज्जम्] अयि परिहासशीले ! मा एव कुरु । कदापि कोऽपि तापस प्रेक्षते, ततो मामविनीतेति सम्भावयिष्यति । अइ परिहाससीले ! मा एव्व करेहि । कदावि कोवि तावसो पेक्खदि तदो म अविणीदेत्ति सभावइस्सदि ।

[तत प्रविशति तापस]

अनुरज्यते—अनु + $\sqrt{}$रञ्ज् + कर्मवाच्य—अनुरक्त है।

प्रतिपत्तिमूढ़ा—प्रतिपत्तौ मूढा (स० तत्पु०) कर्त्तव्य एव अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में मूढ़ ।

परिहासशीले—परिहास शील यस्या सा, तत्सम्बोधने (बहुव्रीः)

अविनीता—न विनीता (वि + $\sqrt{}$नी + क्त)—ढीठ

सम्भावयिष्यति—सम् + $\sqrt{}$भू + णिच् + लृट्—सम्भावना करेगा ।

1 समुचित 2 शोभनम्—ठीक सुन्दर ।

चेटी—[नायिका को देख कर, अपने आप] इस की दृष्टि यहां ही अनुरक्त सी (प्रतीत होती) है। अच्छा, तो यूं कहूंगी। [प्रकट रूप से] राजकुमारी जी! ब्राह्मण ठीक कहता है। आप के लिए अतिथि-जन का सत्कार करना उचित है। तो ऐसे महानुभाव के प्रति किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी क्यों बैठी हो? अथवा तुम ठहरो, मैं ही यथोचित करती हूं। आर्य का स्वागत हो। आर्य! आसन ग्रहण करके इस स्थान को अलङ्कृत कीजिए।

विदूषक—हे मित्र! यह ठीक कह रही है। यहां बैठ कर क्षण भरके लिए विश्राम करते हैं।

नायक—आपने ठीक कहा। [दोनों बैठ जाते हैं]

नायिका—[चेटी की ओर संकेत करके, लज्जा पूर्वक] अरे परिहास करने के स्वभाव वाली! ऐसा मत करो। यदि कोई तपस्वी देख ले, तो वह मुझे ढीठ समझेगा।

[तब तपस्वी प्रवेश करता है]

तापसः—आज्ञापितोऽस्मि कुलपतिना कौशिकेन, यथा—"वत्स शाण्डिल्य ! पितुराज्ञया सिद्धराजमित्रावसुर्भविष्यद्विद्याधरचक्रवर्तिनं कुमारजीमूतवाहनमिहैव मलये पर्वते क्वापि वर्तमानं भगिन्या[1] मलयवत्या वरहेतोर्द्रष्टुमद्य गतः। तच्च प्रतीक्षमाणाया मलयवत्या कदाचित् मध्यन्दिनसवनवेलावधिरतिक्रामेत्[2], तदेनामाहूयागच्छ" इति। तद्यावद् गौरीगृहमेव गच्छामि। [परिक्रम्य भूमिं निरूप्य सविस्मयम्] अये! कस्य पुनरियं पांसुले[3] भूप्रदेशे प्रकाशितचक्रचिह्ना पदपङ्क्तिः[4]? [अग्रतो जीमूतवाहनं निर्दिश्य]। नूनमस्यैवेयं महापुरुषस्य। तथाहि—

आज्ञापित—आ + √ज्ञा + णिच् + क्त—आज्ञा दिया गया हूँ।

कुलपति—ऋषियों में शिरोमणि तथा बहुत से शिष्यों का आचार्य कुलपति कहलाता था। कहते हैं वह दस हजार मुनियों का अन्न-दान आदि से पोषण करता था तथा व्रत यज्ञ आदि कार्यों का नियम पूर्वक पालन करता था। मलयवती का सम्बन्ध कौशिक नामक कुलपति के आश्रम से बताया गया है।

मित्रावसु—सिद्धराज विश्वावसु का आज्ञाकारी तथा बुद्धिमान् पुत्र था। विश्वावसु मलयपर्वत पर स्थित सिद्धों के राज्य के स्वामी थे। मलयवती इन्हीं की पुत्री थी।

भविष्यद्०—भविष्यन् चासौ विद्याधरचक्रवर्ती, तम् (कर्मधा०)—होने वाले विद्याधरों के सम्राट् को।

वर्तमानम्—√वृत् + शानच्—होते हुए को ठहरे हुए को।

प्रतीक्षमाणाया—प्रति + √ईक्ष् + शानच् + ष० विभक्ति, एक वचन—प्रतीक्षा करती हुई का।

मध्यन्दिनसवनवेला—दिनस्य मध्ये इति मध्यन्दिनम्, तस्य यत् सवनम् तस्य वेला—मध्याह्न-कालीन स्नान समय।

---

1 वदन का 2 अतिक्रामेत्—व्यतीत हो जाए 3 धूलिमय 4 चरण-पंक्ति।

तपस्वी—कुलपति कौशिक ने मुझे आज्ञा दी है कि—"प्रिय शाण्डिल्य ! पिता की आज्ञा से सिद्धों के राजा मित्रावसु, बहन मलयवती के वर के लिए इसी मलयपर्वत पर कहीं स्थित विद्याधरों के भावी सम्राट् कुमार जीमूतवाहन को आज देखने के लिए गए हैं। उसकी प्रतीक्षा करते हुए मलयवती का मध्याह्नकालीन स्नान का समय कहीं व्यतीत (न) हो जाए, अतः उसको बुलाकर आओ"। तो तपोवन के गौरी-मन्दिर को ही चलता हूँ। (घूम कर तथा भूमि को ध्यानपूर्वक देख कर, साश्चर्य) अरे ! धूलि मय भूमि-प्रदेश पर स्पष्ट चक्र के चिह्न वाली यह चरण-पंक्ति भला किस की है ? [आगे जीमूतवाहन की ओर सङ्केत करके] निश्चय ही यह इसी महापुरुष की होगी। क्योंकि—

आहूय—आ + $\sqrt{}$ह्वे + ल्यप्—बुलाकर।

प्रकाशितचक्रचिह्ना—प्रकाशितं चक्रस्य चिह्नं (ष० तत्पु०) अस्ति यस्मिन् सा (बहुव्री०)।

उष्णीषः[1] स्फुट एष मूर्द्धनि[2] विभात्यूर्णेयमन्तर्भ्रुवो-[3]
श्चक्षुस्तामरसानुकारि, हरिणा[4] वक्षःस्थलं स्पर्द्धते[5]।
चक्राङ्कं यथा करद्वयमिदं मन्ये तथा कोऽप्ययं
नो विद्याधरचक्रवर्त्तिपदवीमप्राप्य विश्राम्यति ॥ १८ ॥

अथवा कृतं सन्देहेन। व्यक्तमनेनैव[6] जीमूतवाहनेन भवितव्यम्। [मलयवती निरूप्य] अये इयमपि राजपुत्री। [उभौ विलोक्य स्वगतम्] चिरात् खलु युक्तकारी विधिः[7] स्यात् यदि युगलमेतदन्योन्यानुरूपं[8] घटयेत्[9]। [उपसृत्य नायकं निर्दिश्य] स्वस्ति भवते।

नायकः—भगवन्! जीमूतवाहनोऽभिवादयते। [उत्थातुमिच्छति।]

तापसः—अलमलम् अभ्युत्थानेन। ननु "सर्वस्याभ्यागतो[10] गुरुः" इति भवानेवास्माकं पूज्यः। तद् यथासुखं स्थीयताम्।

अन्वयः—एषः स्फुटः उष्णीषः मूर्धनि विभाति। भ्रुवोः अन्तः इयम् ऊर्णा चक्षुः तामरसानुकारि, वक्षस्थलं हरिणा स्पर्द्धते यथा इदं करद्वयं च चक्राङ्कम् तथा मन्ये कः अपि अयं पुरुषः विद्याधरचक्रवर्त्तीपदवीम् अप्राप्य नो विश्राम्यति ॥ १८ ॥

उष्णीष—चक्रवर्त्ती राजा के मस्तक पर उष्णीष (पगड़ी) की रेखा का, भौंहों के बीच वाली की भौंरी का तथा पदों पर चक्र का चिह्न होता है—ऐसा विश्वास था।

विभात्यूर्णेयम—विभाति+ऊर्णा+इयम्—यह भौंरी प्रतीत होती है।

तामरसानुकारि—तामरसम् अनुकरोति इति (उपपद तत्पु०)—लाल कमल का अनुकरण करने वाला। चक्राङ्कम्—चक्रस्य अङ्कः भवति यस्मिन् तत् (बहुव्री०)। पदद्वयम्—पदयोः द्वयम् (ष० तत्पु०)।

1. स्पष्ट 2. मस्तक पर 3 विभाति—प्रतीत होती है 4. शेर से 5 होड़ लेती है 6. व्यक्तम्—स्पष्ट ही। 7. विधाता 8. युगलम्—जोड़ा 9. बना दे, जोड़ दे 10. अभ्यागत—अतिथि।

मस्तक पर यह पगड़ी (का चिह्न) स्पष्ट प्रतीत होता है। भौंहों के बीच में यह बालों का आवर्त (भौंरी) है। नेत्र लाल कमल का अनुकरण करने वाला है। छाती सिंह से होड़ लेती है। जबकि यह दोनों चरण चक्र से अङ्कित हैं मैं समझता हूँ कि यह कोई विद्याधरों के सम्राट पद को प्राप्त किए बिना विश्राम नहीं लेगा।

अथवा सन्देह का क्या काम! स्पष्ट ही यही जीमूतवाहन होगा। [मलयवती को देखकर] अरे! यह राजकुमारी भी। [दोनों को देख कर] बहुत देर के बाद विधाता योग्य कार्य करने वाला बन जाए यदि एक दूसरे के अनुरूप इस जोड़े को (विवाह बन्धन में) बांध दे। [पास जा कर नायक की ओर संकेत करके] आप का कल्याण हो।

नायक—भगवन्! जीमूतवाहन प्रणाम करता है। [उठना चाहता है]

तपस्वी—उठने का कष्ट न कीजिए। अतिथि सब का गुरु होता है अतः अवश्य ही आप हमारे लिए पूज्य हैं अतः सुखपूर्वक बैठिए।

अप्राप्य—न प्राप्य (प्र + √आप + ल्यप्) —न प्राप्त करके प्राप्त किए बिना।

कृतं सन्देहेन—कृतम् [बस] अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता तृतीय विभक्ति का प्रयोग होता है

चिरात्०—तपस्वी के विचार में विधाता प्रायः ऐसे पति पत्नियों को विवाह सूत्र में बाँध देता है जो एक दूसरे के अनुकूल नहीं होते। किन्तु जीमूतवाहन तथा मलयवती—दोनों ही एक समान सुयोग्य हैं अतः यदि विधाता इन को दम्पति रूप में मिलन सम्पन्न कर दे तो वह बहुत देर के बाद सराहनीय कार्य करने वाला बन जाएगा

यथासुखम्—सुखमनतिक्रम्य (अव्ययीभाव०)—सुखपूर्वक।

स्थीयताम्—√स्था + √कर्म वाच्य + लोट् प्र० पुरुष एक वचन

अलम् अभ्युत्थानेन—अलम् (बस) के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। अर्थ है उठने से बस अर्थात् उठिए मत।

नायिका—आर्य ! प्रणमामि। अज्ज ! पणमामि।

तापस —[नायिका निर्दिश्य] वत्से ! अनुरूपभर्तृगामिनी भूया ! राजपुत्रि ! त्वामाह कुलपति कौशिकः -- यथाऽतिक्रामति मध्यन्दिनसवनवेला[1]। तत् त्वरितमागम्यताम्[2]।

मलयवती—यद् गुरुराज्ञापयति। ज गुरु आणवदि। [आत्मगतम्]

एकतो गुरुवचनमन्यतो दयितदर्शनसुखानि।
गमनागमनारूढमद्यापि दोलायते मे हृदयम् ॥ १६ ॥

एक्कतो गुरुवअण अण्णतो दुइअदसणसुहाइ।
गमणागमणारूढ अज्जवि दोलएदि म हिअअ ॥१६॥

[उत्थाय नि श्वस्य सलज्ज सानुरागञ्च नायक पश्यन्ती तापससहिता निष्क्रान्ता नायिका चेटी च।]

नायक —[सोत्कण्ठ नि श्वस्य नायिका गच्छन्ती पश्यन्]

अनया जघनाऽऽभोगभरमन्थरयानया।
अन्यतोऽपि व्रजन्त्या मे हृदये निहित पदम् ॥२०॥

अनुरूपभर्तृगामिनी —अनुरूप भर्तार गच्छतीति (उपपद तत्पु०)।

अन्वय —एकत गुरुवचनम्, अन्यत दयितदर्शनसुखानि, गमनागमनाधिरूढम् मे हृदयम् अद्य अपि दोलायते ॥ १६ ॥

दयितदर्शनसुखानि—दयितस्य दर्शनस्य सुखानि (ष० तत्पु०)—प्रियतम के दर्शन का सुख।

गमनागमनारूढम्—गमनञ्च अगमनञ्च तयो आरूढम्—जाने और न जाने पर सवार हुआ।

आरूढम्—आ+√रुह्+√क्त।

दोलायते—दोला (झूला) से नामधातु—डांवाडोल हो रहा है।

---

1 सवनवेला—स्नान का समय 2 त्वरितम्—जल्दी से।

नायिका—आर्ये ! नमस्कार करती हूँ ।

तपस्वी—[नायिका की ओर संकेत कर के] बेटी ! अपने अनुरूप पति को प्राप्त करो। राजकुमारी ! तुम्हें कुलपति कौशिक ने कहला भेजा है कि मध्याह्नकालीन स्नान का समय व्यतीत हो रहा है, अतः जल्दी से आओ।

मलयवती—जैसे गुरु की आज्ञा । [अपने आप]

एक ओर गुरु का वचन, दूसरी ओर प्रियतम के दर्शन का सुख ! जाने अथवा न जाने की दुविधा में पड़ा (सं० जाने अथवा न जाने पर भार हुआ) मेरा हृदय अब भी डावाडोल हो रहा है ।

[उठकर, लम्बी साँस ले कर, लज्जा एवं प्रेम सहित नायक को देखती हुई तपस्वी के साथ नायिका चल पड़ी और साथ चेटी भी]

नायक—[उत्कंठा सहित साँस ले कर, जाती हुई नायिका को देखते हुए]

विशाल नितम्बों के भार से धीमी गति वाली इस ने अन्यत्र जाते हुए भी चरण (मानो) मेरे हृदय पर रखा है ।

उत्थाय—उत् + √स्था + ल्यप्—उठकर ।

अन्वयः—जघनाभोगभरमन्थरयानया अनया अन्यतः अपि व्रजन्त्या मे हृदये पदम् निहितम् ॥ २० ॥

जघन०—जघनस्य आभोग (=विस्तार), (ष० तत्पु०), तस्य भर तेन मन्थर यानं यस्याः सा तया (बहुव्री०) – नितम्बों के विस्तार के भार से धीमी गति है जिस की, उस से ।

व्रजन्त्या —√व्रज् + शतृ + तृ०विभक्ति, एक वचन–जाती हुई से ।

अन्यतोऽपि पदम्—नायिका ने अन्यत्र जाते हुए भी, चरण नायक के हृदय पर रखा है। इस का आशय है कि नायिका के वहाँ से प्रस्थान करने पर नायक जीमूतवाहन के हृदय पर गहरी चोट लगी है ।

निहितम् नि + √धा + क्त —रखा गया ।

विदूपक—भो ! दृष्टं त्वया प्रेक्षितव्यम् । तदिदानीं मध्याह्नसूर्य्यकिरणसन्तापद्विगुणित[1] इव मे उदराग्निर्धमधमायते । तदेहि निष्क्रामाव । येन ब्राह्मणोऽतिथिर्भूत्वा मुनिजनसकाशात्[2] लब्धै कन्दमूलफलैरपि यावत् प्राणधारण करोमि । भो दिट्ठं तुए तेक्खिदव्वं ता दाणिं मज्झण्णसूर किरण सतावदि उणिदा विअ म उदरग्गी धमधमा अदि, ता एहि णिक्कमम्ह । जेण बह्मणो अदिहि भविअ मुणिजणस आसादो लद्धेहिं कदमूलफ्लेहि वि दाव पाणधारण करेमि ।

नायक —[उर्द्ध्वमवलोक्य] मध्यमध्यास्ते नभस्तलस्य भगवान् सहस्रदीधिति तथाहि—

> तापात् तत्क्षणघृष्टचन्दनरसापाण्डू कपोलौ वहन्
> ससक्तैर्निजकर्णतालपवनैः सवीज्यमानाननः ।
> सम्प्रत्येष विशेषसिक्तहृदयो हस्तोज्झितैः शीकरैः[3]
> र्गाढाऽऽयल्लकदु सहामिव दशा धत्ते गजाना पति ॥२१॥

[निष्क्रान्तौ]

इति प्रथमोऽङ्क

प्रेक्षितव्यम्—प्र + √ईक्ष + तव्यत् – देखने योग्य ।

मध्याह्न॰—मध्याह्ने ये सूर्यस्य किरणा तेषा सन्तापेन (प॰ तत्पु॰) द्विगुणित ।

उदराग्नि:—उदरस्य अग्नि (प॰ तत्पु॰)—पेट की आग ।

धमधमायते—भडक रही है ।

लब्धै —√लभ् + क्त—प्राप्त किए हुओ से । कन्दमूलफलै —कन्दाश्च मूलानि च फलानि च तेषा समाहार तैं (इतरेतर द्वन्द्व) ।

अन्वय —तापात् तत्क्षणघृष्टचन्दनरसो पाण्डू कपोलौ वहन् ससक्त निजकर्णतालपवनै सवीज्यमानानन सम्प्रति हस्तोज्झितै शीकरै विशेषसिक्तहृदय, गजाना पति गाढायल्लवदु सहामिव दशां धत्ते ॥२१॥

---

1 द्विगुणित —दुगना बना हुआ 2 सकाशात्—पास से 3 जल-कणों से ।

विदूषक—अरे मित्र ! देखने योग्य वस्तु तो आप ने देख ली। अब तो दोपहर के सूर्य की किरणों के ताप से मानो दुगनी हुई मेरी जठराग्नि भड़कने लगी है। तो आओ हम चलते हैं, ताकि ब्राह्मण अतिथि बन कर मुनिजनों के पास से प्राप्त किए हुए कन्द, मूल, फलों से ही प्राण-रक्षा करूँ।

नायक—[ऊपर देखकर] भगवान सूर्य आकाश-मण्डल के बीच में विराज रहे हैं। तभी तो,

गरमी के कारण तत्काल रगड़े हुए चन्दन वृक्षों के रस से पीले पीले कपोलों को धारण करता हुआ, अपने कर्ण-तालों की निरन्तर पवन से अपने मुख को पंखा करता हुआ, सूँड से छोड़े गए जल-कणों से छाती को विशेष रूप से सींच कर, अब यह गजराज, मानो गाढ़ी उत्कण्ठा की दुस्सह दशा धारण कर रहा है।

[दोनों चल पड़े]

प्रथम अङ्क समाप्त

मध्यमध्यास्ते—मध्यम्+अध्यास्ते – बीच में ठहरे हैं। √आस् से पहले 'अधि' उपसर्ग आने पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। नभस्तलम्—नभसः तलम् (ष० तत्पु०)—आकाश-मण्डल। सहस्रदीधितिः—सहस्र दीधितय यस्य स —हजार किरणें हैं जिसकी, सूर्य। तत्क्षण०—तत्क्षण घृष्टः यः चन्दनानां रसः तेन आपाण्डु—तत्काल रगड़े हुए चन्दन-वृक्षों के रस से पीले। ससक्तैः—सम्+√सञ्ज्+क्त—अच्छी तरह मिले हुए, निरन्तर। निज०—निजयो कर्णयो तालात् (जातैः) पवनैः—अपने कर्ण-तालों से पैदा हुई पवन से। सवीज्यमाननः—सवीज्यमानम् आननं यस्य, स – पंखा किया जा रहा है मुख जिसका। सम्प्रत्येष—सम्प्रति+एष—अब यह। विशेषसिक्तहृदय—विशेषत सिक्त हृदय यस्य स (बहुव्री०)। हस्तोज्झितैः—हस्तेन उज्झितैः (तृ० तत्पु०)—सूँड से छोड़े गए। गाढ०—गाढ़ यत् आयल्लक (कर्मधा०) तेन दुःसहाम् (तृ० तत्पु०)—गाढ़ी उत्कण्ठा के कारण दुःसह (दशा) को।

इस श्लोक में दोपहर की गर्मी से व्याकुल हाथी की दशा की तुलना कामातुर प्रेमी से की गई है।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति चेटी]

चेटी—आज्ञप्तास्मि भर्तृदारिकया मलयवत्या, यथा— "हञ्जे मनोहरिके ! अद्य चिरयति मे भ्राता आर्यमित्रावसुः । तद् गत्वा जानीहि किमागतो न वेति । [परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] का पुनरेषा त्वरितत्वरितमित[1] एवागच्छति । [निरूप्य] कथं चतुरिका । आणत्तह्मि भट्टिदारिआए मलअवदीए, जहा,–'हञ्जे ! मणोहरिए ! अज्ज चिराअदि मे भाअरो अज्जो मित्तावसू । तो गदुअ जाणाहि किं आअदो ण वेत्ति" । का उण एसा तुरिदतुरिदं इदो ज्जेव्व आअच्छदि ? कहं चदुरिआ !

[ततः प्रविशति चतुरिका]

प्रथमा— [उपसृत्य] हला चतुरिके ! किं निमित्तं पुनर्मां परिहृत्यैव त्वरितत्वरितं गम्यते । हला चदुरिए, किंनिमित्तं उण मं परिहरिअ एव्वं तुरिदतुरिदं गच्छिअदि ।

द्वितीया—हला मनोहरिके, आज्ञप्तास्मि भर्तृदारिकया मलयवत्या— 'हञ्जे चतुरिके ! कुसुमावचयपरिश्रमनिःसहमे शरीरं, शरदातपजनित इव मां सन्तापोऽधिकतरं बाधते[2] । तद्गच्छ त्वं, बालकदलीपत्रपरिक्षिप्ते चन्दनलतागृहे चन्द्रमणिशिलातलं सज्जीकुरु' इति । अनुष्ठितश्च

चिरयति—'चिर' से नामधातु—देर कर रहा है ।

परिहृत्य—परि+√हृ+ल्यप्—बच कर ।

कुसुम०—कुसुमानाम् अवचयः, तत्र परिश्रमः तेन निस्सहम्—फलों के तोड़ने से थकावट के कारण निःसत्त्व बना हुआ ।

शरदातपजनित —शरदः आतपः तेन जनितः (ष० तथा तृ० तत्पु०)—शरद ऋतु की धूप से पैदा हुआ ।

---

1 जल्दी जल्दी 2 पीड़ित कर रहा है ।

दूसरा अंक

[तब चेटी प्रवेश करती है]

चेटी—राजकुमारी मलयवती ने मुझे आज्ञा दी है, कि—'अरी मनोहरिका ! आज मेरे भाई आर्य मित्रावसु देर कर रहे हैं। तो जा कर पता लगाओ, क्या (वे) आ गए हैं अथवा नहीं"—[घूम कर, नेपथ्य की ओर देख कर] भला यह कौन जल्दी जल्दी चला आ रहा है। [ध्यान से देख कर] क्या (यह) चतुरिका है ?

[तब चतुरिका प्रवेश करती है]

पहली—[पास आ कर] अरी चतुरिका ! मुझ से बचकर भला इस तरह जल्दी जल्दी क्यों चली जा रही हो ?

दूसरी—अरी मनोहरिका ! राजकुमारी मलयवती ने मुझे आज्ञा दी है —"री चतुरिका ! फूलों के तोड़ने से थकावट के कारण मेरा शरीर निःसत्त्व हो गया है, शरद् ऋतु की धूप से उत्पन्न हुआ सा सन्ताप मुझे अत्यधिक पीडित कर रहा है। अतः तुम जाओ, नए केले के पत्तों से घिरे हुए चन्दनलता कुञ्ज में चन्द्रकान्त मणियों के शिलातल को तैयार करो" ।

बाल०—बालानि च तानि कदलीनां पत्राणि, तैः परिक्षिप्ते—नए केले के पत्तों से घिरे हुए (चन्दनलताकुञ्ज) में।

चन्द्रमणिशिलातलम्—चन्द्रमणेः या शिला तस्याः तलम् (ष० तपु०)—चन्द्रकान्त मणियों के शिलातल को।

चन्द्रमणि०—चन्द्रमणि अथवा चन्द्रकान्त मणि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह चन्द्रमा के उदय होने के साथ ही पिघलने (बहने) लगती है।

सज्जीकुरु—असज्जं सज्जं सम्पद्यमानं कुरु इति सज्जीकुरु—(सज्ज+च्वि +√कृ+लोट्+मध्य० पु० एक वचन)—तैयार करो।

अनुष्ठित—अनु+√स्था+क्त—कर दिया गया है।

मया यथाऽऽज्ञप्तम्। यावद् गत्वा भर्तृदारिकायै निवेदयामि। 'हला मणोहरिए, आणत्तह्मि भट्टिदारिआए मलअवदीए—हञ्जे चदुरिए! कुसुमावचअपरिस्समणिस्सह मे सरीरं। सरदादवजणिदो विअ मे सदावो अधिअदर बाधेदि। ता गच्छ तुम, बालकदलीपत्तपरिक्खित्तो चदणल दाघरए चन्दमणिसिलाअल सज्जीकरेहि त्ति। अणुचिट्ठिद अ मए जधा आणत्त। ता जाव गदुअ भट्टिदारिआए णिवेदेमि।

प्रथमा — यद्येव, तल्लघु गत्वा निवेदय, येनास्यास्तत्रगताया उपशाम्यति सन्ताप। जइ एव्व, ता लहु गदुअ णिवेदेहि जण से तहि गदाए उवसमदि सदावो।

द्वितीया—[विहस्यात्मगतम्] नेदृशोऽस्या सन्तापो य एव मुपशमिष्यति। अन्यच्च विविक्तरमणीय चन्दनलतागृह प्रेक्षमाणाया अधिकतर सन्तापो भवि तीति तर्कयामि। [प्रकाशम्] तद्गच्छ त्वम्। अहमपि 'सज्जीकृत मणि शिलातलमिति' गत्वा भर्तृदारिकायै निवेदयामि। [इति निष्क्रान्ते] ण ईरिसो से सदावो जो एव्व उवसमिस्सदि। विवित्तरमणीअ चदण लदाघरअ पेक्खन्तीए अधिअदरो सदावो हुविस्सदि त्ति तक्केमि। ता गच्छ तुम। अहम्पि सज्जीकिद मणिसिलाअल' त्ति गदुअ भट्टिदारिए णिवेदेमि।

[इति निष्क्रान्ते]

विविक्तरमणीयम्—विविक्त च रमणीयम् च (द्वन्द्व)—एकान्त एव रमणीय।
प्रेक्षमाणाया —प्र+√ईक्ष+शानच्+ष० एक वचन—देखती हुई का।
प्रवेशक—परिचयात्मक दृश्य को प्रवेशक कहते हैं। कई बार दो अङ्को के बीच होने वाली घटनाओ का रगमञ्च पर अभिनय नही किया जाता। ऐसी घटनाओ से दर्शको को परिचित कराने के लिए प्रवेशक का प्रयोग किया जाता है। प्रवेशक मे ऐसी बाता का भी वर्णन कर दिया जाता है जो नाट्य-शास्त्र के नियमानुसार रङ्ग-मञ्च पर अभिनय के रूप में दिखाई

ग्रौर जैसी ग्राज्ञा दी गई है वैसा मैं ने कर दिया है। तो राजकुमारी के पास जा कर निवेदन करती हूँ।

पहली—यदि ऐसा है तो शीघ्र जा कर निवदत करो ताकि वहा जा कर इस की पीडा शान्त हो।

दूसरी—[हस कर अपने आप] इस की पीडा ऐसी नही है जो इस प्रकार शान्त हो जाएगी। एकान्त एव रमणीय चन्दन लता कुञ्ज को देखते हुए (उसे) ग्रौर अधिक कष्ट होगा—ऐसा मेरा ग्रनुमान है। [प्रकट रूप से] ग्रत तुम जाग्रो मैं भी जा कर राजकुमारी से निवेदन करती हूँ कि 'मणियो का शिला तल तैयार कर दिया गया है।

नही जाती। प्रवेशक प्रथम ग्रङ्क के प्रारम्भ में नही ग्रा सकता। इस में प्राय निम्न कोटि के पात्र भाग लेते है जो बोल चाल में प्राकृत का प्रयोग करते है। सस्कृत में प्रवेशक की परिभाषा इस प्रकार है

प्रवशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजित ।
ग्रङ्कद्वयान्तविज्ञय शप विष्कम्भके यथा ॥

[तत प्रविशति सोत्कण्ठा मलयवती, चेटी च]

नायिका—[नि.श्वस्यात्मगतम्] हृदय ! तथा नाम तदा तस्मिञ्जने लज्जया मा पराङ्मुखीकृत्येदानीमात्मना तत्रैव गतमसीत्यहो ! ते आत्मम्भरित्वम्। [प्रकाशम्] हञ्जे आदिश मे भगवत्या आयतनम्[1]। हिअअ ! तधा णाम तदा तस्सि जणे लज्जाए म पर मुही वदुअ दाणि अप्पणा एव्व तहि गद सि त्ति अहो ! दे अत्तभरित्तण। हञ्जे, आदेसेहि मे भअवदीए आअदण।

चेटी—[आत्मगतम्] चन्दनलतागृह प्रस्थिता भणति भगवत्या आयतनम्। [प्रकाशम्] चन्दनलतागृह भर्तृदारिका प्रस्थिता। चदणलदाघरअ पत्थिदा भणादि भअवदीए आअदण। चदणलदाघरअ भट्टिदारिआ पत्थिदा।

नायिका—[सलज्जम्] हञ्जे ! सुष्ठु[2] स्मारितम्। तदेहि तत्रैव गच्छाव। हञ्जे ! सुट्ठु सुमराविद। ता एहि तहि ज्जेव गच्छम्ह।

चेटी—एतु एतु भर्तृदारिका। एदु एदु भट्टिदारिआ।

नायिका—[अन्यतो गच्छति]

चेटी—[पृष्ठतो[3] दृष्ट्वा सोद्वेगमात्मगतम्[4]] अहो ! अस्या शून्यहृदयत्वम् ! कथ तदेव देवीभवन प्रस्थिता ! भर्तृदारिके ! नन्वितश्चन्दनलतागृहम्। तदित इत एहि। अहो ! से सुण्णहिअअत्तण ! कह त ज्जेव देवीभवण पत्थिदा ! भट्टिदारिए ! ण इदो चदणलदाघरअ। ता इदो इदो एहि।

नायिका—[सविलक्षस्मित तथा करोति]

चेटी—भर्तृदारिके ! इद चन्दनलतागृहम्। तत् प्रविश्य चन्द्रमणिशिलातले उपविश्य समाश्वसितु भर्तृदारिका। भट्टिदारिए ! इद चदणलदाघरअ। ता पविसिअ चदमणि सिलादले उपविसिअ समस्ससदु भट्टिदारिआ।

[उभे उपविशत]

पराङ्मुखीकृत्य—अपराङ्मुखी पराङ्मुखी सम्पद्यमाना कृत्वा इति—विमुख कर के।

पराङ्मुखी—पराक् मुख यस्या सा (बहुव्री०)।

आत्मम्भरित्वम्—आत्मान बिभर्ति इति आत्मम्भरि, तस्य भाव, आत्मन् + √भृ + इन् + त्व—स्वार्थपरता।

1 मन्दिर। 2 ठीक। 3 पीछे। 4 सोद्वेगम् = उद्वेग सहित।

[तब उत्कण्ठित मलयवती, तथा चेटी प्रवेश करती है]

नायिका—[सांस लेकर, आप ही आप] हे हृदय ! उस पुरुष के प्रति मुझे लज्जा के कारण, पराङ्मुखी करके, अब स्वयं (क्या) वहीं चला जाना था ! ओह कितने स्वार्थी हो तुम ! (अ० तुम्हारी स्वार्थपरता) [प्रकट रूप से] सखी ! मुझे भगवती के मन्दिर (का मार्ग) बताओ।

चेटी—[अपने आप] चन्दन लताओं के कुञ्ज की ओर चली (थी, अब) भगवती (गौरी) का मन्दिर बता रही है। [प्रकट रूप से] राजकुमारी तो चन्दन-लतागृह की ओर चली थी।

नायिका—[लज्जित होकर] सखी ! ठीक याद दिलाया। तो आओ, वहीं चलती हैं।

चेटी—आइए आइए राजकुमारी जी !

नायिका— [दूसरी ओर जाने लगती है]

चेटी—[पीछे देख कर, उद्वेग सहित अपने आप] आह ! इस के हृदय की शून्यता ! कैसे उसी देवी के मन्दिर की ओर चल पड़ी है ! [प्रकट] राजकुमारी जी ! चन्दनलता गृह तो इधर है, अत इधर, इधर आइए।

नायिका—[आश्चर्य एवं मुस्कराहट के साथ वैसा करती है।]

चेटी—राजकुमारी ! यह चन्दनलता गृह है अत राजकुमारी प्रविष्ट होकर चन्द्रकान्त मणियों के शिलातल पर बैठें।

[दोनों बैठ जाती हैं]

भावम०—नायिका का अभिप्राय यह है कि जब वह प्रियतम के पास थी तो उसके हृदय ने उसे लज्जा के कारण बहुत देर तक वहां ठहरने नहीं दिया, और अब प्रियतम से दूर होने पर, वही हृदय उसके पास जा बैठा है। कितना स्वार्थी है यह !

प्रस्थिता—प्र + √स्था + क्त + स्त्री०—चली हुई।

स्मारितम्— √स्मृ + णिच् + क्त—याद दिलाया गया।

शून्यहृदयत्वम्—शून्यं च इदं हृदयम् (कर्मधा०) तस्य भाव इति शून्यहृदयत्वम्—हृदय की शून्यता।

सविलक्षस्मितम्—(क्रिया विशेषण) विलक्षं च स्मितं च (द्वन्द्व) ताभ्यां सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा आश्चर्य एवं मुस्कराहट के साथ।

नायिका—[नि श्वस्य आत्मगतम्] भगवन् कुसुमायुध ! येन त्वं रूपशोभया निर्जितोऽसि तस्य त्वया न किमपि कृतम्। मां पुनरनपराधामप्यबलेति कृत्वा प्रहरन् न कथं लज्जसे ? [आत्मानं निर्वर्ण्य, मदनावस्थां नाटयन्ती प्रकाशम्] हञ्जे ! किं पुनर्घनपल्लवनिरुद्धसूर्य्यकिरणं तदेव चन्दनवासगृहं न मे अद्यापि सन्तापदुःखमपनयति ! भअवं कुसुमाउह ! जेण तुमं रूवसोहाए णिज्जिदोसि, तस्सतुए ण किम्पि किदं। मम उण अणवरद्धं बि अवलेत्ति करिअ पहरंतो कहं ण लज्जेसि ? हञ्जे ! कीस उण एदं घणपल्लवणिरुद्धसूरकिरणं तं एव्व चन्दणलदाघरअं ण मे अज्जबि सदावदुक्खं अवणेदि।

चेटी—जानाम्यहमत्र संतापस्य कारणम्, किन्तु असम्भावनीयमिति भर्तृदारिका न तत् प्रतिपत्स्यते इति। जाणामि अहं एत्थ सदावस्स कारणं, किं उण असंभावनिअं ति भट्टिदारिआ ण तं पडिवज्जिआदि।

नायिका—[आत्मगतम्] लक्षितेवाऽहमेतया[1], तथाऽपि पृच्छामि। [प्रकाशम्] हञ्जे ! किं तत् यन्न प्रतिपद्यते ? तत् कथय तावत् किं तत् कारणम् ? लक्खिदा विअ अहं एदाए, तहबि पुच्छिस्सं। हञ्जे ! किं तं जं ण पडिवज्जिअदि। ता कहेहि दाव किं तं कारणं।

निःश्वस्य—निस्+√श्वस्+ल्यप्—सांस ले कर, आह भर कर।

कुसुमायुध—कुसुमानि एव आयुधानि यस्य, तत्सम्बोधने—हे कामदेव।

कामदेव के धनुष एवं बाण फूलों के बने हुए हैं अतः उन्हें कुसुमायुध (फूलों के शस्त्र-अस्त्रों वाला) कहते हैं। इसी प्रकार वह कुसुमधन्वन्, पुष्पचाप, कुसुमबाण, पुष्पेषु आदि नामों से भी प्रसिद्ध है।

निर्जित—निर्+√जि+क्त—पराजित किये गये हो।

अनपराद्धाम्—न अपराद्धा (नञ् तत्पु०), ताम्—निरपराध को, निर्दोष को।

अपराद्धा—अप+√राध्+क्त (स्त्री०)।

प्रहरन्—प्र+√हृ+शतृ—आक्रमण करते हुए।

---

1. लक्षिता=भाँप ली गई।

नायिका—[साम लेकर, अपने आप] हे भगवन् काम देव ! जिस (जीमूतवाहन) ने तुम्हें सौन्दर्य-शोभा से पराजित किया है, उस का तो तुम ने कुछ बिगाडा नही। किन्तु "यह अबला है" ऐसा समझ कर मुझ निर्दोष पर भी आक्रमण करते हुए तुम्हें लज्जा नही आती।

[अपने आप को देख कर, काम-दशा का अभिनय करती हुई, प्रकट रूप से] अरी ! घने पत्तों से सूर्य किरणों को रोके हुए यह वही चन्दनलता गृह अब भी मेरे सन्ताप दु.ख को क्यों दूर नही करता ?

चेटी—मैं यहा सन्ताप के कारण को जानती हूँ, किन्तु 'यह असम्भव है—ऐसा (कह कर) राजकुमारी उसे स्वीकार नही करेगी।

नायिका—[अपने आप]—इस ने मुझे भाँप लिया है, फिर भी पूछती हूँ। [प्रकट रूप से] अरी !—वह क्या है, जिसे स्वीकार नही करूँगी ? भला बताओ तो वह कारण क्या है ?

भगवन् ... न लज्जसे—इस का भावार्थ यह है—हे कामदेव ! तुम्हें तो बदला जीमूतवाहन से लेना चाहिये था जिस ने तुम्हें सौन्दर्य में पूर्णतया पराजित किया है। उस का तो तुम कुछ बिगाड नही सके और मुझ निर्दोष को पीडित कर रहे हो, क्योंकि मैं स्त्री हूँ, अत दुर्बल होने के कारण तुम्हारा मुकाबला नही कर सकती।

यहा 'अबला' (स्त्री या दुर्बल) शब्द पर सुन्दर श्लेष बन पडा है।

निर्वर्ण्य—निर्+√वर्ण्+ल्यप्—ध्यान से देख कर।

मदनावस्थाम्—मदनस्य अवस्थाम् (प० तत्पु०)—प्रेम की दशा को।

घन०–घनानि च तानि पल्लवानि (कर्मधा०) तै तिरद्धा. सूर्यस्य किरणा. यस्मिन् तत् (बहुव्री०)—घने पत्तों से रुकी हुई हैं सूर्य की किरणें जिस में।

सन्तापदु खम्—सन्तापस्य दु खम् (प० तत्पु०)—ताप के कष्ट को।

असम्भावनीयम्—न सम्भावनीयम्—(सम्+√भू+णिच्+अनीय)—(नञ तत्पु०)—असम्भव।

प्रतिपत्स्यते—प्रति+√पद्+लृट्—स्वीकार करेगी।

प्रतिपद्यते—प्रति+√पद्+कर्मवाच्य—स्वीकार किया जाता है।

चेटी---- एष ते हृदयस्थितो वर । एसो दे हिअग्रट्ठिदो वरो ।

नायिका---[सहर्षं ससम्भ्रमञ्चोत्थाय द्वित्राणि पदानि गत्वा] कुत्र कुत्र स ? कहिं कहिं सो ?

चेटी---- [उत्थाय सस्मितम्] भर्तृदारिके ! स क ? भट्टिदारिए ! सो को?

नायिका---- (सलज्जमुपविश्य अधोमुखी तिष्ठति)

चेटी----भर्तृदारिके ! एतदस्मि वक्तुकामा —एष ते हृदयस्थितो वर एव देव्या दत्त स्वप्ने प्रस्तुते क्षणमेव प्रविमुक्तकुसुमबाण इव मकरध्वजो भर्तृदारिकया दृष्ट । स ते अस्य सन्तापस्य कारण, येनैतत् स्वभाव शीतलमपि चन्दनलतागृह न ते सन्तापदु खमपनयति । भट्टिदारिए ! एदम्हि वत्तुकामा —एसो दे हिअअट्ठिदो वरो एव्व देईए दिण्णो । सिविणके पत्थाविदे जो तक्खण एव्व पविमुक्ककुसुमवाणो विअ मअरद्धओ भट्टिदारिआए दिट्ठो ! सो दे इमस्स सदावस्स कारण, जेण एद सहाव सीदलपि चदणलदाघरअ ण दे सदावदुक्ख अवणदि ।

नायिका----[चतुरिकाया अलक[1] सज्जयन्ती] हञ्जे ! चतुरिका खलु त्वम् ।

"एव वर "—'यह आप का हृदय-स्थित वर' —इस प्रकार शुरु कर के चतुरिका राजकुमारी के सन्ताप का कारण बताने लगी है। उस के 'वर' शब्द का (वरदान के अर्थ मे) प्रयोग करते ही, मलयवती अपनी अन्यमनस्कता के कारण उस का अर्थ 'पति' समझ कर अधीरता से पूछ बैठती है - ' अरी ! वह कहाँ है ? इस प्रकार अधीरता एव उद्वेग के प्रदर्शन से उस ने अपने मनोभावों को स्वँय ही प्रकट कर दिया है।

उत्थाय—उत् + √स्था + ल्यप् – उठकर ।

द्वित्राणि—द्वे च त्राणि च—दो तीन ।

उपविश्य—उप् + √विश + ल्यप्—बैठ कर ।

अधोमुखी—अध मुख यस्या सा—(बहुव्री०)—नीचे मुख है जिस का ।

वक्तुकामा—वक्तु कामो यस्या सा (बहुव्री०)—बोलने की इच्छा है जिस की । 'काम , तथा 'मन ' शब्दो के साथ बहुव्री० समासो में 'तुमुन्' प्रत्यय

1 बालों को।

चेटी—यह तुम्हारा, हृदय मे बसा हुआ, 'वर' ।

नायिका—[हर्ष एव घबराहट के साथ उठ कर, दो तीन पग चल कर] कहाँ है कहाँ है वह ?

चेटी—[उठ कर मुस्कराहट के साथ] राजकुमारी ! वह कौन ?

नायिका— (लज्जा के साथ बैठ कर, मुह नीचे किए रहती है)

चेटी—राजकुमारी ! मैं तो यह कहना चाहती हूँ, कि आप का हृदय में बसा हुआ वर ही देवी ने दे दिया है। स्वप्न के आने पर, कुसुम-बाण से रहित कामदेव सा राजकुमारी ने जो क्षण भर के लिये देखा है वह (ही) इस सन्ताप का कारण है। तो स्वभाव स शीतल होते हुए भी यह चन्दनलता गृह आप के सन्ताप दुःख को दूर नही कर पाता।

नायिका—[चतुरिका के बालों को सवारती हुई] अरी, तुम तो चतुरिका ही हो।

के 'म' का लोप हो जाता है। इसी प्रकार "गन्तुकाम" आदि समझना चाहिए।

स्वप्ने प्रस्तुते—स्वप्न के प्रस्तुत होने पर। यहाँ भाव सप्तमी का प्रयोग हुआ है।

प्रविमुक्तकुसुमबाणः—प्रविमुक्ता कुसुमबाणा येन स (बहुव्री०)—छोड दिए हैं फूलो के बाण जिस ने, ऐसा, पुष्प के बाणो से रहित।

मकरध्वज—मकर ध्वजायां यस्य स (बहुव्री०)—जिस की ध्वजा पर मकर (=मत्स्य) (का चिह्न) है। काम देव के झण्ड पर मकर का चिह्न बनाया जाता है, अत उसे 'मकरध्वज' कहते हैं। इसी प्रकार उसे मीनकेतु आदि नामों से भी याद किया जाता है।

स्वभावशीतलम्—स्वभावात् शीतलम् (प० तत्पु०)—स्वभाव स शीतल।

सज्जयन्ती—सज्ज+नामधातु+शतृ—सजाती हुई।

चतुरिका खलु त्वम्—चेटी ने मलयवती के मनोभावो को भाँप कर अपनी चतुराई का प्रमाण दिया है, अत नायिका उसे कहती है कि तुम ने अपने नाम को सार्थक किया है। महाकवि कालिदास ने भी 'अभिज्ञानशाकुन्तल'

किं ते अपरं प्रच्छाद्यते, तत् कथयिष्यामि। हञ्जे ! चदुरिआ क्खु तुमं ! किं दे अवरं पच्छाईअदि, ता कहिस्सं !

चेटी---भर्तृदारिके ! इदानीमेव कथितममुना वरालापमात्रजनितेन सम्भ्रमेण। तस्मा सन्तप्यस्व[1]। यद्यहं चतुरिका, तदा सोऽपि भर्तृदारिकामप्रेक्षमाणो न मुहूर्त्तमप्यभिरस्यते। तदेतदपि मया लक्षितम्। भट्टिदारिए ! दाणिं एव्व कहिदं इमिणा वरालाबमत्तजणिदेण सम्भमेण। ता मा सतप्प। जइ अहं चदुरिआ, तदा सोवि भट्टिदारिअं अपेक्खन्तो ण मुहुत्तअं पि अहिरमिस्सदि। ता एदम्पि मए लक्खिदं।

नायिका---[सास्रम्] हञ्जे ! कुतोऽस्माकमियन्ति भागधेयानि ? हञ्जे ! कुदो अम्हाणं एत्तिआणि भाअधआइं ?

चेटी---भर्तृदारिके ! मैवं भण ! किं मधुमथनो वक्षःस्थले लक्ष्मीमनुद्वहन् निर्वृत्तो[2] भवति ? भट्टिदारिए ! मा एव्वं भण। किं मधुमहणो वच्छत्थलेण लच्छिं अणुव्वहन्तो णिव्वुदो भोदि ?

नायिका---किं स्वजनं प्रियं वर्जयित्वा[3] अन्यत् भणितुं जानाति ? सखि ! अतोऽपि मे सन्तापोऽधिकतरं बाधते, यत्स महानुभावो वाङ्मात्रेणापि[4] मया न सम्भावित[5]। सोऽप्यकृतप्रतिपत्तिमदक्षिणेति मा सम्भावयिष्यति। [इति रोदिति] किं सुअणो पिअं वज्जिअ अण्णं भणिदुं जाणादि ? सहि ! अदो वि मे सदावो अधिअदरं बाधेदि, जं सो महाणुभाओ वाआमेत्तण वि मएण सभाविदो। सो वि अकिदपडिवत्ती अदक्खिणेत्ति मं सभावइस्सदि।

में शकुन्तला की प्रिय सखी प्रियंवदा के प्रिय बात कहने पर, नायिका (शकुन्तला) से कहलवाया है---'अत खलु प्रियंवदासि त्वम्'।

प्रच्छाद्यते---प्र+√छद्+कर्मवाच्य---छिपाया जाता है।

वरालापमात्रजनितेन---वरस्य आलाप एव वरालापमात्रं तेन जनितेन---वर के कहने मात्र से पैदा की गई (घबराहट से)।

जनितेन---√जन्+णिच्+क्त+तृ० एक वचन---पैदा की गई से।

---

1 दुःखी होओ। 2 सुखी। 3 छोड़ कर। 4 वाणी मात्र से। 5 सम्मानित किया गया।

तुम से और क्या छिपाऊँ ? इस लिए बताती हूँ।

चेटी—राजकुमारी ! इस वर के कहने मात्र से पैदा हुई घबराहट ने अब तो कह ही दिया है। अतः सन्ताप मत करो। यदि मैं चतुरिका हूँ, तो वह राजकुमारी को देखे बिना क्षण भर भी चैन न पाएगा—यह भी मैं ने भाँप लिया है।

नायिका—[आसू बहाती हुई] अरे ! हमारे ऐसे भाग्य कहाँ ?

चेटी—राजकुमारी ! ऐसा मत कहिए। क्या लक्ष्मी को छाती पर धारण किए बिना विष्णु सुखी हो सकते हैं।

नायिका—क्या आत्मीय जन प्रिय बात को छोड कर कुछ और कहना जानता है ? हे सखि ! सन्ताप तो मुझे और भी अधिक पीडित इस लिए कर रहा है कि मैं ने वाणी मात्र से भी उन महानुभाव का सम्मान नहीं किया। वे भी मुझे सम्मान न करने वाली अशिष्ट समझेंगे। [रोती है]।

अप्रेक्षमाण — न प्रेक्षमाण (प्र+√ईक्ष्+शानच)- नञ् तत्पु०—न देखता हुआ।

अभिरस्यते —अभि+√रम्+लृट— सुखी होगा।

अस्माकमियन्ति —अस्माकम्+इयन्ति [इयत् (नपु०) मे प्रथमा बहु वचन] —हमारे इतने।

मधुमथन —मधु मथ्नाति इति मधुमथन —मधु नाम के राक्षस को मारने वाला। विष्णु भगवान ने 'मधु' राक्षस का वध किया था, अतः वे इस नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हें मधुरिपु मधुसूदन आदि भी कहते हैं। उन की पत्नी लक्ष्मी उन के वक्षस्थल पर विश्राम करती है।

अनुद्वहन्—न उद्वहन् (उत्+√वह +शतृ) नञ् तत्पु० —न धारण करते हुए।

किं जानाति '—अर्थात् मित्र सदा प्रिय एवं सुखकर बात ही कहते हैं।

अकृतप्रतिपत्तिम्—न कृता प्रतिपत्ति (सम्मान) यया, ताम् (बहुव्री०)—नहीं किया गया है सम्मान जिस से उसे।

अदक्षिणा—न दक्षिणा (नञ् तत्पु०)—चतुर, अशिष्ट।

सम्भावयिष्यति—सम्+√भू+णिच+लृट समझेगा।

चेटी—भर्तृदारिके ! मा रुदिहि। अथवा कथं न रोदिष्यति ? अधिकोऽस्या हृदयस्य सन्तापोऽधिकतरं बाधते। तत् किमिदानीमत्र करिष्ये ! तद् यावत् चन्दनलतापल्लवरसमस्या हृदये दास्ये। [उत्थाय चन्दनपल्लवं गृहीत्वा निष्पीड्य[1] हृदये ददाति] भर्तृदारिके ! भणामि, मा रुदिहि। अयं खल्वीदृशश्चन्दनरस एभिरनवरतपतद्भिर्बाष्पबिन्दुभिरुष्णीकृतो न ते हृदयस्य एतं सन्तापमपनयति। [कदलीपत्रमादाय[2] वीजयति[3]] भट्टिदारिए ! मा रोद। अहवा कहं ण रोईस्सदि ? अहिओ से हिअअस्स सदाओ अधिअदरं वाधेदि। ता किं दाणीं एत्थ करइस्सं ? ता जाव चदणलदापल्लवरसं से हिअए दाइस्सं। भट्टिदारिए ! ण भणामि, मा रोद। अअं क्खु ईरिसो चदणरसो इमहिं अणवरदपडतेहिं बाहविदूहिं उह्णीकिदो ण दे हिअअस्स एदं सदावं अवणेदि !

नायिका—[हस्तेन निवारयति] सखि ! मा वीजय। उष्ण. खल्वेव कदलीदलमारुतः। सहि ! मा वीजेहि। उण्हो क्खु एसो कअलीदलमारुदो।

चेटी—भर्तृदारिके ! माऽस्य दोषं कथय—

करोषि घनचन्दनलतापल्लवससर्गशीतलमपीमम्।
निःश्वासैस्त्वमेव कदलीदलमारुतमुष्णम्॥ १॥

भट्टिदारिए ! मा इमस्स दोसं कहेहि,

कुणसि धणचन्दणलदापल्लवससग्गसीदलं पि इमं।
णीसासेहिं तुमं एव्व कअलीदलमारुअं उण्हं॥ १॥

नायिका—[सास्रम्] सखि ! अस्ति कोऽप्यस्य सन्तापस्योपशमोपायः[4] ? सहि ! अत्थि कोवि इमस्स सदावस्स उवसमोवाओ ?

चेटी—भर्तृदारिके ! अस्ति, यदि सोऽत्राऽऽगच्छति। भट्टिदारिए ! अत्थि जदि सो एत्थ आअच्छदि।

[ततः प्रविशति नायको विदूषकश्च]

चन्दनलतापल्लवरसम्—चन्दन-लतायाः पल्लवानां रसम् (ष० तत्पु०)—चन्दन-लता के पत्तों के रस को।

1 निचोड़ कर 2. कदलीपत्रम्—केले के पत्ते को 3 पंखा करती है 4 उपशम—शान्ति

चेटी—राजकुमारी जी ! रोइए मत । अथवा क्यो न रोओगी । इस के हृदय का अधिक स ताप (इस) और भी अधिक पालित कर रहा है । तो अब यहाँ क्या करू ? अच्छा तो चन्दनलता के पत्ता का रस इस के हृदय पर लगाती हूँ । [उठकर चन्दन के पत्ते को ल कर निचोड़ कर हृदय पर लगाती है] राजकुमारी ! म कहती हूँ रोइए मत । यह इस प्रकार का चन्दन रस लगातार बहते हुए अश्रु बिन्दुओ मे गरम हो कर हृदय के इस स ताप को दूर नही करता ।

[केल का पत्ता लकर पखा करता है]

नायिका—[हाथ मे रोकती है] सखि ! पखा मत करो । केल के पत्तो की यह हवा तो सच मुच गरम है ।

चेटी—राजकुमारी ! इसे दोष मत दो ।

धनी चन्दनलता के पत्तो के सम्पर्क स शीतल बनी हुई केले के पत्तो की हवा को भी आप ही आहो से गरम कर रही हो ।

नायिका—[आसुओं सहित] इस स ताप के शा त करने का कोई उपाय भी है ?

चेटी—राजकुमारी ! (उपाय) है यदि वह यहा आ जाये ।

[तब नायक और विदूषक प्रवेश करते हैं]

दास्ये—√दा + स्य—दूँगी ।

खल्वीदृशश्चन्दनरस —खलु + ईदृश + चन्दनरस ।

अनवरतपतद्भि —अनवरत पतद्भि — निरन्तर बहते हुए

वाष्पबिन्दुभि —वाष्पस्य बिन्दुभि (ष० तत्पु०) आँसुओ के कणो मे

उष्णीकृत —अनुष्ण उष्ण सम्पद्यमान कृत —उष्ण + च्वि + √कृ + त —गरम बनाया गया ।

निवारयति—नि + √वृ + णिच रोकती है ।

कदलीदलमारुत —कदल्या दल तस्य मारुत (ष० तत्पु०)—केले क पत्तो की हवा ।

अन्वय —घनचन्दनलतापल्लवससर्गशीतलम् अपि इमं कदलीदलमारुत त्वमेव नि श्वासै उष्ण करोषि ॥ १ ॥

घन०—घना या चन्दनलता, तस्या पल्लवानां य ससर्ग तेन शीतलम्—घनी चन्दनलता के पत्तों के सम्पर्क से शीतल (हवा) को ।

नायक.—

व्यावृत्यैव सितासितेक्षणरुचा तानाश्रमे शाखिनः
कुर्वत्या विटपाऽवसक्तविलसत्कृष्णाजिनौघानिव ।
यद् दृष्टोऽस्मि तया मुनेरपि पुरस्तेनैव मय्याहते,
पुष्पेषो! भवता मुधैव[1] किमिति क्षिप्यन्त एते शराः ? ॥ २ ॥

विदूषकः—भो वयस्य ! कुत्र खलु ते गतं तद् धीरत्वम् ? भो वअस्स ! कहिं क्खु गद दे त धीरत्तण ?

नायकः—वयस्य ! ननु धीर एवास्मि । कुतः—

नीताः किं न निशाः शशाङ्कधवलाः ? नाघ्रातमिन्दीवरं[2] ?

अन्वयः—व्यावृत्य एव सितासितेक्षणरुचा आश्रमे तान् शाखिन विटपावसक्तविलसत्कृष्णाजिनौघान् इव कुर्वत्या यत् मुनेः अपि पुरः तया दृष्टः अस्मि तेन एव मयि आहते, पुष्पेषो भवता एते शराः किम् इति मुधा एव क्षिप्यन्ते ॥ २ ॥

व्यावृत्य—वि+आ+√वृत्+ल्यप्—मुड कर ।

सितासितेक्षणरुचा—सिते असिते च ये ईक्षणे, तयोः रुचा—सफेद और काली आँखो की चमक से ।

सित०—*मलयवती की आँखो के तारक काले थे तथा कोने सफेद रग के* थे । अत उस का दृष्टि-पात कृष्ण एव श्वेत कान्ति को बिखेर रहा था । परिणाम-स्वरूप ऐसा प्रतीत होता था मानो आस पास के वृक्षो की शाखाओ के साथ काले और सफेद धब्बों से चित्रित हिरणो के चम लटक रहे हो ।

शाखिनः—शाखिन् शब्द का द्वि०, बहुवचन—वृक्षो को ।

कुर्वत्या—√कृ+शतृ+स्त्री०+तृ०, एक वचन—करती हुई से । बनाती हुई से ।

1. व्यर्थ ही 2. इन्दीवरम्=नील कमल ।

नायक—सफेद और काली आँखों की चमक से आश्रम में उन वृक्षों को (मूं) बनाती हुई, मानो (उनकी) शाखाओं के साथ कृष्णसार (नामक) मृगों की चमकती हुई छालाओं के समूह लटक रहे हों, मुड़ कर जो उस ने मुझे मुनि के सामने भी देखा था, उसी से मेरे आहत हो जाने पर, हे कामदेव ! व्यर्थ ही ये बाण (मुझ पर) क्यों फेंक रहे हो ?

विदूषक—हे मित्र ! आप का वह धैर्य कहाँ चला गया ?

नायक—मित्र ! मैं तो धीर ही हूँ, क्योंकि—

क्या (मैं ने) चन्द्रमा से उजली बनी रातें नहीं काटीं ? क्या नील कमल नहीं सूँघा ?

विटप०—विटपेषु प्रवसक्तानि (स० तत्पु०) विलसन्ति च यानि कृष्णाना (कृष्णसारमृगाणां) अजिनानि, तेषाम् ओघः येषु तान् (बहुव्री०)—जिन की शाखाओं पर लटकते हुए तथा चमकते हुए कृष्णसार मृगों के चर्मों का समूह है, उन को ।

मय्याहते—मयि+आहते—मेरे जख्मी होने पर । यहाँ भाव सप्तमी का प्रयोग हुआ है ।

पुष्पेषो—पुष्पाणि एव इषवः यस्य स, तत्सम्बोधने (बहुव्री०)—हे कामदेव !

क्षिप्यन्ते—√क्षिप्+कर्म वाच्य—फेंके जाते हैं ।

अन्वय—शशांकधवला निशाः न नीताः किम् इन्दीवरं न आघ्रातम् किम्, उन्मीलितमालतीसुरभयः प्रदोषानिलाः न सोढाः किम् ? कमलाकरे झङ्कारः मया न वा श्रुतः किम् ? विधुरेषु अधीरः इति भवान् निर्व्याजं मां येन अभिधत्ते ॥ ३ ॥

नीता०—चन्द्रमा के प्रकाश से खिली हुई रातें, नील कमल, सायंकाल की सुगन्धित हवाएँ—सभी काम-भावना को उत्तेजित करती हैं । नायक का अभिप्राय है कि यदि मैं ने इन सब को सहन कर लिया है तो मुझे अधीर कैसे कहा जा सकता है ?

नीताः—√नी+क्त—व्यतीत की गईं ।

किं नोन्मीलितमालतीसुरभयः सोढा प्रदोषानिला ?
भ्रङ्कारः कमलाकरे मधुलिहां किं वा मया न श्रुतो ?
निर्व्याजं विधुरेष्व[1]धीर इति मां येनाभिधत्ते भवान् ? ॥३॥

[विचिन्त्य] अथवा मृषा[2] नाभिहितं, वयस्याऽऽत्रेय ! नन्वधीर एवास्मि।

स्त्रीहृदयेन न सोढा क्षिप्ता कुसुमेषवोऽप्यनङ्गे न[3]।
येनाद्यैव पुरस्तव वदामि 'धीर' इति स कथमहम् ? ॥४॥

विदूषक —[आत्मगतम्] एवमधीरत्व प्रतिपद्यमानेनाख्यातो महाननेन हृदयस्यावेग[4], तद् यावत् कुत्रैव एनम् अपक्षिपामि। [प्रकाशम्] भो वयस्य ! कथं पुनरद्य त्वं लघ्वेव गुरुजन शुश्रूषित्वा[5] इहागत ? एव्वमधीरत्तण पडिवज्जतेण आचक्खिदो महन्तो अणेण हिअअस्स आवेगो। ता जाव कहिं एव्व एदं अवक्खिवामि भो वअस्स ! कीस उण अज्ज तुमं लहु एव्व गुरुअण सुस्सूसिअ इह आगदो ?

शशाङ्कधवला —शशाङ्केन धवला (तृ० तत्पु०)—चन्द्रमा से उजली (बनी हुई)।

आघ्रातम्—आ+√घ्रा (सूँघना)+क्त—सूँघा गया।

उन्मीलितमालतीसुरभय —उन्मीलिताश्च ता मालत्या (कमधा०) ताभि सुरभय —(तृ० तत्पु०)—खिले हुऐ मालती (पुष्पो) से सुगन्धित।

सोढा —√सह्+क्त—सहन की गई।

प्रदोषानिलाः —प्रदोषेषु अनिला (स० तत्पु०)—सायंकाल में हवाएँ।

कमलाकरे—कमलानाम् आकरे (ष० तत्पु०)—कमलो की खान अर्थात् कमलो के वन में।

मधुलिहाम्—मधु लिहन्ति इति (उपपद तत्पु०) तेषाम्—मधु को चाटने वालों का अर्थात् भवरो का।

निर्व्याजम्—निर्गत व्याज यस्मात् यथा स्यात् तथा (क्रिया वि०) —निकल गया है कपट जिस से उस (ढंग) से—निष्कपट भाव से।

---

1. विधुरेषु—वियोगियों में 2 झूठ 3 अनङ्गेन—कामदेव से 4 आवेग—क्षोभ मे 5 सेवा करके।

क्या खिले हुए मालती के फूलो से सुगन्धित सायकाल की हवाग्रो को सहन नही किया ? ग्रथवा क्या मैने कमलो के बन में भवरो की झड्कार को नही सुना ? जो ग्राप मुझे 'वियागियो में ग्रधीर हो"—वास्तव में ऐसा कह रहे हो ?

[सोच कर] ग्रथवा मित्र ग्रात्रेय ने झूठ नही कहा। मै सचमुच ग्रधीर ही हूँ।

स्त्री जैसे हृदय वाले मै ने कामदेव द्वारा फैके गए पुष्प-बाणो को भी सहन नही किया तो मै ग्रभी ग्रभी तुम्हारे सामने जो—धीर हूँ—ऐसा कह रहा था, वह (भला) मै कैसे हूँ ?

विदूषक—[ग्रपने ग्राप] इस प्रकार ग्रधीरता को स्वीकार करते हुए इस ने हृदय के महान् क्षोभ को कह दिया है, तब इसे कही (ग्रौर) ही (बात में) लगाता हूँ। [प्रकट रूप से] हे मित्र ! ग्राज माता-पिता की सेवा कर के फिर शीघ्र ही यहाँ कैसे ग्रा गए हो ?

ग्रभिधत्ते—ग्रभि + √धा (ग्रात्मने०) + लट्—कहता है।

ग्रभिहितम्—ग्रभि + √धा + क्त—कहा गया।

ग्रन्वय·—ग्रनङ्गेन क्षिप्ता. कुसुमेषव. ग्रपि स्त्रीहृदयेन (मया) न सोढाः, स ग्रहम् ग्रद्य एव तव पुर धीर इति कथ वदामि ? ॥४॥

स्त्रीहृदयेन—स्त्री इव हृदय यस्य, तेन (बहुव्री०)—स्त्री जैसे हृदय वाले से।

कुसुमेषवः—कुसुमानाम् इषव (ष० तत्पु०)—फूलो के बाण।

प्रतिपद्यमानेन—प्रति + √पद् + (दिवादि) + शानच् + तृ० एक वचन—स्वीकार करते हुए से।

ग्राख्यात — ग्रा + √ख्या (कहना) + क्त—कहा गया है।

नायक —वयस्य ! स्थाने खल्वेव प्रश्न । कस्य वाऽन्यस्यैतत्कथनीयम् ? श्रद्य खलु स्वप्ने जानामि—सैव प्रियतमा [अङ्गुल्या निर्दिशन्] अत्र चन्दनलता गृहे चन्द्रकान्तमणिशिलायामुपविष्टा[1] प्रणयकुपिता किमपि मामुपालभमाना नेव रुदती मया दृष्टा, तदिच्छामि स्वप्नानुभूतदयितासमागमरम्येऽस्मिन्-चन्दनलतागृहे दिवसमतिवाहयितुम्[2] । तदेहि, गच्छाव: [परिक्रामत] ।

चेटी—[कर्णं दत्त्वा ससम्भ्रमम्] भर्तृदारिके पदशब्द इव श्रूयते । भट्टिदारिए पदसद्दो विअ सुणीअदि ।

नायिका—[ससम्भ्रममात्मन पश्यन्ती] हञ्जे ! मा ईदृशमाकार प्रेक्ष्य कोऽपि मे हृदय तुलयिष्यति । तदुत्तिष्ठ, अनेन रक्ताशोकपादपेन अन्तरिते[3] प्रेक्षावहे तावद् क एष इति । [तथा कुरुत] हञ्जे ! मा ईरिस आआर पेक्खिअ कोवि मे हिअअ तुलईस्सदि । ता उट्ठेहि, इमिणा रत्तासोअपादवेण अन्तरिदा पेक्खम्ह दाव को एसो त्ति ।

विदूषक—इद चन्दनलतागृहम् ! तदेहि प्रविशाव । [नाट्येन प्रविशत] एद चदणलदाघरअ । ता एहि पविसम्ह ।

नायक —

चन्दनलतागृहमिद सचन्द्रमणिशिलमपि प्रिय न मम ।
चन्द्राननया रहित चन्द्रिकया[4] मुखमिव निशाया. ॥ ५ ॥

स्थाने—ठीक ही, उचित ही । इस अर्थ में यह अव्यय के रूप मे प्रयुक्त होता है । प्रणयकुपिता—प्रणयेन कुपिता (तृ० तत्पु०)—प्रेम से रूठी ।

उपालभमाना—उप+आ+√लभ्+शानच्—उलाहना देती हुई ।

स्वप्न०—स्वप्ने अनुभूत य दयिताया समागम , तेन रम्ये—स्वप्न मे अनुभव किए गए प्रिय के मिलन के कारण मनोहर बने हुए (शिलातल) पर ।

अतिवाहयितुम्—अति+√वह +णिच+तुमुन्—गुजारना ।

प्रेक्ष्य—प्र+√ईक्ष्+ल्यप्—देख कर ।

तुलयिष्यति—'तुला'+णिच्+नाम धातु—तोल लेगा, भाँप लेगा ।

1 उपविष्टा=बैठी हुई 2 दिवसम् =दिन को 3 छिपी हुई 4 चाँदनी से ।

नायक—मित्र ! यह प्रश्न तो ठीक ही है। अथवा यह अब किसे बताऊँगा ? आज सच मुच स्वप्न में अनुभव किया है (कि)—वही प्रियतमा [अंगुली से संकेत करते हुए] इस चन्दनलता गृह में चन्द्रकान्त मणियों की शिला पर बैठी प्रेम में रूठी मुझ कुछ उलाहना सा देती हुई रोती हुई मुझ से देखी गई है। तो मैं स्वप्न में अनुभव किए गए प्रिया मिलन से मनोहर बने हुए इस चन्दनलता गृह में दिन को गुजारना चाहता हूं। तो आओ, चलते हैं। [दोनों चलते हैं]

चेटी—[कान लगा कर घबराहट के साथ] राजकुमारी ! पैरों की आहट जैसी (सुनाई देती) है। [दोनों सुनती हैं]।

नायिका [घबराहट से अपने आप को देखती हुई] अरी ! मेरी ऐसी आकृति को देख कर कोई मेरे हृदय का भाव लगा (ता० तोल लेगा)। तो उठो, इस लाल अशोक वृक्ष से छिप कर देखती हैं भला यह कौन है ?

[वैसा करती हैं]

विदूषक—यह चन्दन लता गृह है। तो आओ, प्रविष्ट होते हैं।

[प्रविष्ट होने का अभिनय करते हैं]

नायक—चन्द्रकान्त मणियों की शिला से युक्त होते हुए भी यह चन्दन लता गृह चन्द्रमुखी (प्रिया) के बिना चांदनी से हीन सन्ध्या (ता० रात्रि के मुख) की तरह मुझे अच्छा नहीं लगता।

अन्वय—सचन्द्रमणिशिलम् इदम् चन्दनलतागृहम् चन्द्राननया रहितं चन्द्रिकया निशायाः मुखम् इव मम प्रियम् न। ६ ॥

सचन्द्रमणिशिलम्—चन्द्रमणि शिलया सहितम् (बहुव्रो०) चन्द्रकान्त मणि की शिला से युक्त (होते हुए भी)।

चन्द्राननया—चन्द्र इव आननं यस्याः तया (बहुव्रो०) चांद से मुख वाली से।

चेटी— [दृष्ट्वा] भर्तृदारिके ! दिष्ट्या वर्द्धसे । स एव ननु ते हृदयवल्लभो जनः । भट्टिदारिए ! दिट्ठिआ वड्ढसि । सो एव्व ण दे हिअअवल्लहो जणो ।

नायिका—[दृष्ट्वा सहर्षं, ससाध्वसञ्च] हञ्जे ! एन प्रेक्ष्य अतिसाध्वसेन न शक्नोमि इहैवाऽऽसन्ने स्थातुम्, कदापि एष मां प्रेक्षते, तदेहि अन्यतो गच्छावः । [सोत्कण्ठ पद दत्वा] हञ्जे ! वेपेते[1] मे ऊरू[2] । हञ्जे ! एद पेक्खिअ अदिसद्धसेण ण सक्कुणोमि इह एव्व असण्णे चिट्ठिदु, कदावि एसो म पेक्खदि, ता एहि अण्णदो गच्छम्ह । हञ्जे ! वेवति मे उरुओ ।

चेटी—[विहस्य] अयि कातरे[3] ! इह स्थितां त्वां क पश्यति ननु विस्मृतस्ते अयं रक्ताशोकपादप[4] ? तदिहैव उपविश्य तिष्ठाव । अइ काअरे ! इह ट्ठिद तुम को पेक्खदि ? ण विसुमरिदो दे अअं रत्तासोअपादवो ? ता इध एव्व उवविसिअ चिट्ठम्ह ! [तथा कुरुत]

विदूषकः—[निरूप्य] भो वस्य ! एषा सा चन्द्रमणिशिला । भो वअस्स ! एसा सा चद्रमणिसिला ।

नायक—[सबाष्प[5] निःश्वसिति]

चेटी—भर्तृदारिके ! जानामि स्वप्नाऽऽलाप[6] इव, तदवहिते तावत् शृणुवः । भट्टिदारिए ! जाणामि सिविणआलाओ विअ, ता अवहिदा दाव सुणम्ह ! [उभे आकर्णयत]

विदूषकः—[हस्तेन चालयन्] भो वयस्य ! ननु भणामि एषा सा चन्द्रमणिशिलेति । भो वअस्स ! ण भणामि, एसा सा चदमणिसिलेत्ति ।

नायकः—[सबाष्प निःश्वस्य] सम्यगुपलक्षितम्[7][8] । [हस्तेन निर्दिश्य]—

शशिमणिशिला सेयं यस्यां विपाण्डुरमाननं[9][10]

करकिसलये कृत्वा वामे[11] घनश्वसितोद्गमा ।

हृदय वल्लभः —हृदयस्य वल्लभा (ष० तत्पु०)–हृदय का प्यारा । आसन्ने—आ + √सद् + क्त–निकट में । तदेह्यन्यतो गच्छावः –तत् + एहि + अन्यतः + गच्छावः । अवहिते–अव + √धा + क्त द्वि वचन—सवाधान बने हुए ।

---

1. काँप रही हैं 2. दोनों जाँघें 3. हे डरपोक 4. लाल अशोक वृक्ष 5 आँसुओं सहित 6. आलाप=बातचीत 7. सम्यक् =ठीक 8. उपलक्षितम्=देखा गया 9. विपाण्डुरम्=पीले 10. आननम्=मुख को 11. बाएँ हाथ पर ।

चेटी—[देख कर] राजकुमारी! बधाई हो। (यह तो) सच मुच आप के हृदय के प्रियतम हैं।

नायिका—[देख कर, हर्ष एवं भय के साथ] अरी! इन्हें देख कर अधिक भय के कारण यहाँ निकट ठहरने में समर्थ नहीं हूँ। कभी यह मुझे देख लें। तो आओ, अन्यत्र चलती हैं। अरी! मेरी तो जाँघें काँप रही हैं।

चेटी—[हँस कर] अरी डरपोक! यहाँ ठहरी हुई तुम्हें कौन देखता है? क्या यह लाल अशोक वृक्ष तुम्हें भूल गया है? तो हम यहीं बैठी रहती हैं। [वैसा करती हैं]

विदूषक—[देख कर] अरे मित्र! यही वह चन्द्रकान्त मणियों की शिला है।

नायक—[आँसू बहाता हुआ लम्बी साँस लेता है।]

चेटी—राजकुमारी! मालूम होता है, स्वप्न की बात चीत सी है, अतः ध्यान पूर्वक सुनें।

[दोनों सुनती हैं]

विदूषक—[हाथ से हिलाता हुआ] हे मित्र! मैं कह रहा हूँ कि यह वही चन्द्र मणि शिला है।

नायक—[आँसुओं सहित साँस भर कर] तुम ने ठीक ही देखा। [हाथ से संकेत करके]

यह वही चन्द्रमणि शिला है जहाँ पर मेरे देर से आने पर पीले से मुख को सरस पत्ते जैसे बाएँ हाथ पर रख कर गहरी साँसें भरती हुई

अन्वय—सा इयम् शशिमणिशिला यस्याम् (उपविष्टा सती) मयि चिरयति विपाण्डुरम् आननम् वामे करकिसलये कृत्वा घनश्वासितोद्गमा भ्रुवो मनाक् स्फुरितैः व्यक्ताकूता विरमितमनोमन्यु प्रिया रुदती मया दृष्टा॥६॥

चालयन्—√चल्+णिच्+शतृ—चलाता हुआ।

निर्दिश्य—निर्+√दिश्+ल्यप्—संकेत करके।

करकिसलये—करः किसलय इव तस्मिन् (कर्मधा०) कोमल पत्ते जैसे हाथ पर।

घनश्वसितोद्गमा—घनः श्वसितानाम् उद्गमः यस्याः सा (बहुव्री०)—श्वासों का घना विसर्जन है जिस का अर्थात् गहरे श्वासों को छोड़ती हुई।

चिरयति मयि व्यक्ताकूता मनाक्[1]स्फुरितै[2]र्भ्रुवो[3]
विरमितमनोमन्युर्दृष्टा मया रुदती प्रिया ॥६॥

अतस्तस्यामेव चन्द्रमणिशिलायामुपविशाव ।

[उभावुपविशत]

नायिका—[विचिन्त्य] का पुनरेषा भविष्यति ? का उण एसा हुविस्सदि ?

चेटी—भर्तृदारिके ! यथा आवामपवारिते तावदेन प्रेक्षावहे मा नाम त्वमप्येव दृष्टा । भट्टिदारिए ! जधा अम्हे ओवारिदा दाव एदं पेक्खम्ह मा णाम तुमम्पि एव्व दिट्ठा ।

नायिका—युज्यते एतत । किं पुन प्रणयकुपित प्रियजन हृदये कृत्वा मन्त्रयति[4] । जुज्जदि एद ? किं उण पणअकुविद पिअअण हिअए करिअ मतेदि ?

चेटी—भर्तृदारिके ! मा ईदृशीं शङ्कां कुरुष्व । पुनरपि तावत् शृणुव । भट्टिदारिए ! मा ईरिसिं सङ्कं करेहि, पुणोवि दाव सुणम्ह ।

विदूषक—[आत्मगतम्] अभिरमते एष एतया कथया भवतु एतामेव वर्धयिष्यामि । [प्रकाशम्] भो वयस्य ! तदा सा त्वया रुदती किं भणिता ? अहिरमदि एसो एदाए कधाए भोदु एदं ज्जेव्व वड्ढाइस्सं । भो वअस्स ! तदा सा तुए रुदती किं भणिदा ?

चिरयति मयि—मेरे देर करने पर । भाव सप्तमी का प्रयोग है ।

व्यक्ताकूता—व्यक्त आकूत (=अभिप्राय) यस्या सा (बहुव्री०)—प्रकट हो गया है मन का अभिप्राय जिस का ।

विरमितमनोमन्यु—विरमित मनोमन्यु यया सा (बहुव्री०)—शान्त कर दिया है मन का क्रोध जिसने ।

---

1 मनाक्—थोड़े से 2 स्फुरितै—चेष्टाओं से 3 भ्रुवो—भौंहों की 4 कहता है ।

भौंहों की थोड़ी से चेष्टाओं से अपने मन का अभिप्राय प्रकट करती हुई (तथा उस के बाद) मन के क्रोध को शान्त किए हुए रोती हुई प्रिया को मैं ने देखा था।

तो इसी चन्द्रकान्त मणियों की शिला पर बैठें।

[दोनों बैठते हैं]

नायिका—[सोच कर] यह भला कौन होगी ?

चेटी—राजकुमारी! जैसे हम उन्हें छिप कर देख रही हैं, उसी तरह कहीं (उन्होंने) आप को भी न देख लिया हो।

नायिका—यह ठीक है। पर वह प्रेम में रूठी हुई प्रिया को हृदय में बसा कर क्या कह रहे हैं ?

चेटी—राजकुमारी जी! ऐसी शंका मत करो। भला फिर भी सुनते हैं।

विदूषक—[अपने आप] इस कथा से यह प्रसन्न होते हैं, अतः इसी को आगे बढ़ाऊँगा। [प्रकट] हे मित्र! तब उस रोती हुई को आप ने क्या कहा ?

विरमितः—वि+√रम्+णिच्+क्त—शान्त कर दिया है।
अपवारिते—अप+√वृ+णिच्+क्त—छिपे हुए।
प्रणयकुपितम्—प्रणयेन कुपितम् (तृ० तत्पु०)—प्रेम से रूठी हुई ?
वर्धयिष्यामि—√वृध्+णिच्+लृट्—बढ़ाऊँगा।
रुदती—√रुद्+शतृ+स्त्री०—रोती हुई।

नायक —वयस्य ! इदमुक्ता—

निष्यन्दत इवाऽनेन मुखचन्द्रोदयेन ते ।

एतद्वाष्पाम्बुना सिक्तं चन्द्रकान्तशिलातलम् ॥७॥

नायिका—[सरोषम्] चतुरिके ! अस्ति किमतोऽप्यपरं श्रोतव्यम् ? तदेहि गच्छावोऽन्यत्र । चदुरिए ! अत्थि किं अदो वि अवरं सोदव्वं ? ता एहि, गच्छम्ह अण्णदो ।

चेटी—[हस्ते गृहीत्वा] भर्तृदारिके ! एवं मा भण त्वमेव स्वप्ने दृष्टा । न एतस्य अन्यस्यां[1] दृष्टिरभिरमते[2] । भट्टिदारिए ! एव्वं मा भण तुमं एव्व सिविणए दिट्ठा ण एदस्स अण्णस्सिं दिट्ठी अहिरमदि ।

नायिका—न मे हृदयं प्रत्येति तत्कथाऽवसानं[3] यावत् प्रतिपालयाव[4] । ण मे हिअअं पत्तिआअदि ता कहावसाणं जाव पडिवालम्ह ।

नायक —वयस्य ! जाने तामस्यां शिलायामालिख्य, तस्य चित्रगतया आत्मानं विनोदयामीति । तदित एव गिरितटान्मनःशिलाशकलान्यादाय आगच्छ ।

विदूषक —यद्भवान् आज्ञापयति । [परिक्रम्य गृहीत्वोपसृत्य] भो वयस्य ! त्वया एको वर्णक[5] आज्ञप्तः मया पुनरिहैव सुलभाः पञ्चरागिणो[6] वर्णा[7] आनीता इति, आलिखतु भवान् । [उपनयति] । जं भवं आणवेदि । भो वअस्स ! तुए एक्को वण्णओ आणत्तो । मए उण इध ज्जेव्व सुलहा पञ्चराइणो वण्णआ आणीदेति । आलिहदु भवं ।

अन्वय —बाष्पाम्बुना सिक्तम् एतत् चन्द्रकान्तशिलातलम् ते अनेन मुखचन्द्रोदयेन निष्यन्दत इव ॥७॥

निष्यन्दते—नि+√स्यन्द्+लट्—बह रहा है ।

मुखचन्द्रोदयेन—मुखम् एव चन्द्रः (कर्मधा०) तस्य उदयेन (तृ० तत्पु०)—चन्द्रमा जैसे मुख के उदय से ।

1 दूसरी स्त्री पर 2 अभिरमते—प्रसन्न होता है 3 अवसानम् अन्त—समाप्ति 4 प्रतीक्षा करती हैं 5 रंग करने का धातु 6 पांच रंग के 7 रंग करने के धातु (पत्थर)

नायक—मित्र ! (मैं ने) उस यह कहा—

अश्रु जल से सींचा हुआ यह चन्द्रकान्त मणियों का शिलातल तुम्हारे इस मुख रूपी चन्द्रमा के उदय होने से मानो बह रहा है।

नायिका—[क्रोध सहित] हे चतुरिका ! इस से अधिक कुछ और सुनना बाकी है। अतः आओ कहीं और चल।

चेटी—[हाथ से पकड़ कर] राजकुमारी ! ऐसा मत कहो, तुम ही स्वप्न में देखी गई हो। इसकी दृष्टि दूसरी (स्त्री) पर आसक्त नहीं है।

नायिका—मेरा हृदय विश्वास नहीं करता। अच्छा तो कथा के अन्त तक प्रतीक्षा करते हैं।

नायक—मित्र ! मेरा विचार है उसी को इस शिला-तल पर चित्रित कर के चित्र में अंकित उस (प्रिया) से अपना मन बहलाऊँ। अतः यहीं कहीं पर्वत की ढाल से मनःशिल (लाल गैरिक) के टुकड़े ले आओ।

विदूषक—जो आप की आज्ञा। [घूम कर, लेकर पास आ कर] हे मित्र ! आप ने तो एक रंग के धातु का आदेश दिया था किन्तु मैं यहीं सहज ही प्राप्त होने वाले पाँच रंग के पत्थर ले आया हूँ। आप चित्र बनाएँ। [भेंट करता है]

बाष्पाम्बुना—बाष्पस्य अम्बुना (ष० तत्पु०)—अश्रुओं के जल से।

सिक्तम्—$\sqrt{}$सिच्+क्त—सींचा हुआ।

निष्यन्दत इव०—चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित शिलातल आँसुओं के जल से भीग गया है। कवि की कल्पना है कि यह अश्रुजल नहीं अपितु मलयवती के मुखरूपी चन्द्रमा के उदय होने से चन्द्रकान्त मणि पिघल कर जल का रूप ले रही है।

प्रत्येति—प्रति+एति ($\sqrt{}$इ+लट्)—विश्वास करता है।

आलिख्य—आ+$\sqrt{}$लिख्+ल्यप्—लिख कर, चित्रित करके।

चित्रगतया—चित्रे गता तया (स० तत्पु०)—चित्र के रूप में स्थित(नायिका) से।

मनःशिलाशकलानि—मनःशिलायाः शकलानि (ष० तत्पु०)—लाल गैरिक (धातु विशेष) के टुकड़े। आदाय—आ+$\sqrt{}$दा+ल्यप्—लेकर।

नायक.—वयस्य, साधु कृतम्। [गृहीत्वा शिलायामालिखन् सरोमाञ्चम्] सखे, पश्य—

अविलष्टबिम्बशोभाधरस्य नयनोत्सवस्य शशिन इव।
दयितामुखस्य सुखयति रेखाऽपि प्रथमदृष्टेयम् ॥ ८ ॥

[लिखति]

विदूषक.—[सकौतुक[1] निर्वर्ण्य] अप्रत्यक्षमपि एव नाम रूप लिख्यते इति अहो आश्चर्यम्। अपच्चक्खवि एव्व णाम रूअ लिहीअदित्ति अहो अच्चरिअ।

नायकः—[सस्मितम्] वयस्य!—

प्रिया सन्निहितैवेयं सङ्कल्पस्थापिता पुर.।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा लिखाम्येनां यदि तत्कोऽत्र विस्मय·? ॥ ६ ॥

अन्वय·—अविलष्टबिम्बशोभाधरस्य नयनोत्सवस्य शशिन इव दयितामुखस्य प्रथमदृष्टा इय रेखा अपि सुखयति ॥ ८ ॥

अक्लिष्ट०—जैसा कि अन्वय से स्पष्ट है श्लोक के प्राय: सभी शब्द 'प्रियतमा के मुख' तथा चन्द्रमा—दोनों के पक्ष में प्रयुक्त हुए समझने चाहिएँ। 'अक्लिष्टबिम्बशोभाधरस्य' के दो पक्षों के लिए दो भिन्न अर्थ हो सकते हैं। जिन का उल्लेख नीचे किया गया है।

अक्लिष्टबिम्बशोभाधरस्य—(प्रिया के मुख के पक्ष में)—अक्लिष्ट यत् बिम्ब तद्वत् शोभा यस्य (बहुव्री०) तथा भूत अधर यस्मिन् (बहुव्री०) —पके हुए बिम्ब फल की तरह शोभा वाला होठ है जिस में ऐसे (मुख) की।

तथा

(चन्द्र के पक्ष में) अक्लिष्टा (=न मेघाच्छन्ना) या बिम्बस्य (=मण्डलस्य) शोभा तस्या. धर· (ष० तत्पु०)—मेघों से रहित मण्डल की शोभा को धारण करने वाले (चन्द्रमा) की।

अक्लिष्ट—न क्लिष्ट (नञ् तत्पु०)—पका हुआ अथवा मेघों से रहित।

1 ध्यान के साथ।

नायक—मित्र ! तुम ने अच्छा किया [शिला पर चित्र बनाते हुए रोमाञ्च सहित] मित्र ! देखो—

पके हुए बिम्ब फल की शोभा से युक्त होठ वाले (तथा) नयनों का आनन्द देने वाले प्रिया के मुख की यह पहली देखी गई रेखा भी ऐसा सुख देती है जैसा कि मेघों से रहित मण्डल की शोभा को धारण करने वाले तथा नयनों को आनन्द देने वाले चन्द्रमा की पहले पहल देखी गई रेखा सुख पहुँचाती है। [चित्र बनाता है]

विदूषक—[हैरानी से देखकर] प्रत्यक्ष न होने हुए रूप का भी ऐसा चित्रण ! अहो आश्चर्य है !

नायक—[मुस्करा कर] मित्र

सङ्कल्प से स्थापित की गई प्रिया (तो) सामने ही निकट ठहरी है इस को देख देख कर यदि चित्र बनाता हूँ तो इस में आश्चर्य क्या है ?

नयनोत्सवस्य—नयनयोः उत्सवस्य (ष० तत्पु०)—नयनों के उत्सव अर्थात् आनन्द देने वाले।

दयितामुखस्य—दयितायाः मुखस्य (ष० तत्पु०) प्रियतमा के मुख की

रेखा—(चन्द्र के पक्ष में) दूज के चन्द्रमा की रेखा तथा (मुख के पक्ष में) चित्र की रेखा। सुखयति—सुख से नाम धातु सुख देती है।

अन्वय—प्रिया सङ्कल्पस्थापिता एव सन्निहिता एनां दृष्ट्वा दृष्ट्वा लिखामि यदि तत् अत्र कः विस्मयः ? ॥ ६ ॥

प्रिया०—विदूषक के प्रिया को अप्रत्यक्ष बताने पर नायक कह उठता है कि प्रतिक्षण चिन्तन द्वारा जिस प्रिया को मैं ने हृदय में बसा लिया है वह मेरे लिए अप्रत्यक्ष कैसे हो सकती है ? इस प्रकार निकट ठहरी हुई प्रिया को मैं मानसिक दृष्टि से देख देख कर चित्र बना रहा हूँ।

सन्निहित—सम्+नि+$\sqrt{}$धा (रखना) +क्त+स्त्री० निकट रखी हुई पास ठहरी हुई

सङ्कल्पस्थापिता—सङ्कल्पे स्थापिता (स० तत्पु०) चिन्तन से स्थापित की गई

नायिका—[सास्रम्] चतुरिके ! ज्ञात खलु कथाऽवसान, तदेहि तावन्मित्रावसु प्रेक्षावहे। चदुरिए ! जाद क्खु कहावसाण, ता एहि दाव मित्तावसु पेक्खाह्म।

चेटी—[सविषादमात्मगतम्] हा धिक् जीवितनिरपेक्ष इवास्या आलाप। [प्रकाशम्] भर्तृदारिके ! ननु गतैव तत्र मनोहरिका तद् कदाचिद्भर्तृदारको मित्रावसुरिहैवागच्छेत्। ह जीविदणिरवेक्खो विअ से आलाबो। भट्टिदारिआ मित्तावसु इध एव्व आअच्छे।

[तत प्रविशति मित्रावसु ।]

मित्रावसु—आज्ञापितोऽस्मि तातेन यथा—"वत्स, मित्रावसो, कुमारजीमूतवाहनोऽस्माभिरिहासन्नभावात् सुपरीक्षितोऽयम्। कुतोऽस्मात्योग्यो वर। तदस्मै वत्सा मलयवती प्रतिपाद्यताम्" इति। अह तु स्नेहपराधीनतयाऽन्यदेव किमप्यवस्थान्तरमनुभवामि।

विद्याधरराजवंशतिलकः प्राज्ञ[1] सता सम्मतो[2],
रूपेणाऽप्रतिम पराक्रमधनो विद्वान् विनीतो युवा।

कथाऽवसानम्—कथाया अवसानम् (ष० तत्पु०)—कथा का अन्त।

जीवितनिरपेक्ष—जीविते निरपेक्षः (स० तत्पु०)—जीवन में अपेक्षा (इच्छा) से रहित।

आसन्नभावात्—आसन्नस्य (आ+सद्+क्त) भाव तस्मात् (ष० तत्पु०)—निकट होने के कारण।

सुपरीक्षित—सुष्ठु परीक्षित (परि+√ईक्ष्+क्त)—भली भाँति देखा गया।

प्रतिपाद्यताम्—प्रति+√पद्—णिच्—कर्मवाच्य+लोट्—दे दी जाए।

स्नेहपराधीनतया—स्नेहस्य पराधीनता (ष० तत्पु०) तया—स्नेह के वश में होने से।

अवस्थान्तरम्—अन्या अवस्था इति—और ही दशा को, विचित्र दशा को।

---

1. बुद्धिमान 2. सम्मानित।

नायिका —[अश्रुओं सहित] हे चतुरिका ! क्या का अन्त तो जान ही लिया है तो आओ, तब तक मित्रावसु को देखती हूँ।

चेटी—[दुःख के साथ अपने आप] इस का कथन तो जीवन के प्रति उपेक्षा का सा है। [प्रकट] राजकुमारी ! मनोहरिका तो वहाँ गई ही है, शायद राजकुमार मित्रावसु यहीं आ जाएँ।

[तब मित्रावसु प्रवेश करते हैं]

मित्रावसु—पिता जी ने मुझे आज्ञा दी है कि— पुत्र मित्रावसु ! यहाँ निकट रहने के कारण हम ने जीमूतवाहन को भली भाँति देख लिया है। इस से अधिक योग्य वर और कहाँ ! अतः इस पुत्री मलयवती दे देनी चाहिए।' किन्तु (बहन के) स्नेह वश होने के कारण (मैं) किसी अन्य ही विचित्र अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ।

क्यों कि—

—जो विद्याधरों के राजवंश का भूषण, बुद्धिमान (तथा) सज्जनों का सम्मान-पात्र सौन्दर्य में अनुपम वीरता का धनी विद्वान विनयशील तथा नवयुवक है

अन्वय —विद्याधरराजवंशतिलकः प्राज्ञः सतां सम्मतः रूपेण अप्रतिम पराक्रमधनः विद्वान् विनीतः युवा। यत् सत्त्वार्थम् अभ्युद्यतः च करुणया असून् अपि सन्त्यजेत् तेन अस्मै स्वसारं ददतः मे अतुला तुष्टिः विषादः च ॥१०॥

विद्याधरराजवंशतिलकः —विद्याधराणां राजवंशः तस्य तिलकः (प० तत्पु०) —विद्याधरों के राजवंश का भूषण।

अप्रतिम —न भवति प्रतिमा (सादृश्य) यस्य सः (बहुव्री०)—जिस की समानता नहीं है अर्थात् अनुपम।

पराक्रमधन – पराक्रम एव धनं यस्य सः (बहुव्री०)—वीरता ही है धन जिसका अर्थात् पराक्रमी। इसी प्रकार तपोधन यशोधन आदि शब्द बनते है। विनीत —वि+$\sqrt{}$नी क्त विनयशील नम्र।

यन्नासूनपि सन्त्यजेत्करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यत-
स्तेनास्मै ददत स्वसारमतुला[1] तुष्टिर्विषादश्च मे ॥१०॥

श्रुतञ्च मया, जीमूतवाहनो गौर्य्याश्रमसम्बद्धे चन्दनलतागृहे वर्त्तते इति। तदेतत् चन्दनलतागृह। यावत् प्रविशामि। [प्रविशति]

विदूषक —[ससम्भ्रममवलोक्य] भो वयस्य! प्रच्छादय अनेन कदलीपत्रेण[2] इमा चित्रगता कन्यकाम्। एष खलु सिद्धयुवराजो मित्रावसुरिहागत कदापि प्रेक्षिष्यते। भो वअस्स। पच्छादेहि इमिणा कअलीवत्तेण इम चित्तगद कण्णअ। एसो क्खु सिद्धजुवराओ मित्तावसू इध आअदो। कदावि पक्खिस्सदि।

नायक —[कदलीपत्रेण प्रच्छादयति।]

मित्रावसुः —[प्रविश्य] कुमार! मित्रावसु प्रणमति।

नायक —[दृष्ट्वा] मित्रावसो! स्वागतम्? इतः स्थीयताम्।

चेटी—भर्तृदारिके! आगतो भर्त्ता मित्रावसु। भट्टिदारिए! आअदो भट्टा मित्तावसू।

नायिका—हञ्जे, प्रिय मे। हञ्जे! पिअ मे।

नायक —मित्रावसो! अपि कुशली[3] सिद्धराजो विश्वावसु?

मित्रा०—कुशली तात। तातसदेशेनास्मि त्वत्सकाशमागत।

असून्—'असु' (प्राण) शब्द का द्वि० बहुवचन-प्राणो को। असु' शब्द नपुं० है तथा बहुवचन में प्रयुक्त होता है।
सत्त्वार्थम्—सत्त्वानाम् अर्थम् (ष० तत्पु०)—प्राणियों के लिए।
अभ्युद्यत —अभि+उत्+√यम+क्त—तैयार हुआ।
ददत —√दा+शतृ+ष० एक वचन—देते हुए का।
स्वसारम्—'स्वसृ' का द्वि० एक वचन—बहन को।

---

1 तुष्टि—सतोष, हर्ष 2. केले के पत्ते से 3 सकुशल।

ग्रौर जो प्राणियो की रक्षा क लिए उद्यत हुग्रा दया म प्राणो को भी त्याग दे ग्रत उस ग्रपनी वहन दते हुए मुझ ग्रसीम हप भी होता है तथा विप द भी।

ग्रौर मने सुना है—यह जीमूतवाहन गौरी ग्राश्रम क पास हा च दन लता गह मे उपस्थित है। ग्रत प्रवग करता हू। [प्रविष्ट होता है]।

विदूषक—[घवराहट के साथ देखकर] ग्ररे मित्र! चित्र में चित्रित इस कया को केले क पत्तो स ढक दो। ये सिद्धो के यवराज मित्रावसु इधर ग्रा पहुच हैं कही देख (न) ल।

नायक—[कल क पत्त से ढक देता है]

मित्रावसु—[प्रविष्ट होकर] कुमार! मित्रावसु प्रणाम करता है।

नायक—[देख कर] मित्रावसुजी! स्वागत है। यहा वठिएगा

चेटी—राजकुमारी! कुमार मित्रावसु ग्रा गए हैं।

नायिका—ग्ररी! (इन का ग्राना) मुझ प्रिय है।

नायक—मित्रावसु! क्या सिद्ध राज विश्वावसु सकुशल है?

मित्रावसु—पिता जी सकुशल हैं। पिता जी के स देश से ग्राप के पास ग्राया हू।

ग्रतुला—न ग्रस्ति तुला यस्य स (बहुव्री०) जिसकी वराबरी न हो ग्रसीम।

सुष्टि०—मित्रावसु के ग्रसीम सतोप का कारण जीमुतवाहन क गुण हैं किन्तु उसके मन में विपाद की रेखा खिच जाती है जब वह सोचता है कि कही वह परोपकार की भावना से प्रेरित हो कर किसी प्राणी क लिए ग्रपने प्राणो को वलिदान न कर दे ग्रौर तब उस की बहन विधवा हो जाए।

गौर्य्याश्रमसम्बद्धे—गौर्या ग्राश्रमेण सम्बद्ध—गौरी के ग्राश्रम के साथ लग हुए (चन्दनलतागृह) में।

प्रच्छादय—प्र√छद्+लोट—ढक दो।

चित्रगता—चित्र गता (स० तत्पु०)।

ग्रपि०—ग्रपि के वाक्य क ग्रारम्भ में ग्राने से वह प्रश्नात्मक बन जाता है।

त्वत्सकाशम्—ते सकाशम् (प० तत्पु०)—ग्राप के पास।

नायक —किमाह तत्रभवान् ?

नायिका—श्रोष्यामि तावत्, किं तातेन कुशलं संदिष्टमिति । सुणिस्सं दाव किं तादेण कुसलं संदिट्ठं त्ति ।

मित्रा०—[सास्रम्] इदमाह—"तात ! अस्ति मे मलयवती नाम कन्या जीवितमिवास्य[1] सर्वस्यैव सिद्धराजान्वयस्य । सा मया तुभ्यं प्रतिपाद्यते । प्रतिगृह्यताम्' इति ।

चेटी—[विहस्य] भर्तृदारिके ! किं न कुप्यसीदानीम् । भट्टिदारिए ! किं ण कुप्पसि दाणीं ?

नायिका—[सस्मितं सलज्जञ्च अधोमुखी स्थिता] हञ्जे मा हस, किं विस्मृतं ते एतस्याप्यहृदयत्वम् ? हञ्जे ! मा हस किं विसुमरिदं दे एदस्स अण्ण हिअअत्तणं ?

नायक —[अपवार्य] वयस्य ! सङ्कटे पतिता स्म ।

विदूषक —[अपवार्य] भो जानामि, न तां वर्जयित्वा ते अन्यत्र चित्तमभिरमते यथा । तथा यत् किमपि, भणित्वा विसृज्यतामयं । भो ! जाणामि ण तं वज्जिअ दे अण्णहिं चित्तं अहिरमदि जधा । तधा जं किम्पि भणिअ विसज्जीअदु एसो ।

नायिका—[सरोषमात्मगतम्] हताश ! को वा एतन्न जानाति ? हदास ! को वा एदं ण जाणादि ?

नायक —क इह नेच्छेद् भवद्भिः सह श्लाघ्यमीदृशं सम्बन्धम् ? किन्तु न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यतः प्रवर्तयितुं ततो नाऽहमेनां प्रतिग्रहीतुमुत्सहे ।

श्रोष्यामि—√श्रु+लृट्—सुनूंगी ।
संदिष्टम्—सम्+√दिश्+क्त—सन्देश दिया गया है ।
सिद्धराजान्वयस्य—सिद्धानां राज्ञाम् अन्वयः (ष० तत्पु०) तस्य—सिद्धराजाओं के वंश के ।
प्रतिपाद्यते—प्रति+√पद्+णिच्+कर्मवाच्य—दी जाती है ।
प्रतिगृह्यताम्—प्रति+√गृह्+कर्मवाच्य+लोट—ग्रहण कीजिए ।
अधोमुखी—अधः मुखं यस्याः सा (बहुव्रो०)—नीचे मुख है जिस का ।

---

[1] जीवितम्=प्राण ।

नायक—श्रीमान (विश्वावसु) जी ने क्या कहा है ?
नायिका—तो सुनूँ पिता जी ने क्या कुशल सन्देश भेजा है ?
मित्रावसु—[अश्रुओं सहित] यह कहा है—' पुत्र ! समस्त सिद्धराज वंश के प्राणों के समान मेरी मलयवती नाम की कन्या है। वह मैं आप को दे रहा हूँ, ग्रहण कीजिए।
चेटी—[हँस कर] राजकुमारी ! अब क्रोध क्यों नहीं करती ?
नायिका—[मुस्कराहट एवं लज्जापूर्वक मुख नीचा किए हुए] अरी ! हँसा मत। क्या भूल गई हो कि इस का हृदय अन्य [स्त्री] पर आसक्त है ?
नायक—[एक ओर] मित्र ! हम तो संकट में फँस गए।
विदूषक—अरे ! जानता हूँ कि उस को छोड़ कर, आप का हृदय कहीं और नहीं रमता अतः ऐसा वैसा कुछ कह कर इसे विदा कीजिए।
नायिका—[क्रोध सहित अपने आप] ओ मुए ! इसे कौन नहीं जानता।
नायक—इस प्रकार का आप के साथ प्रशंसनीय सम्बन्ध यहाँ कौन नहीं चाहेगा किन्तु एक स्थान पर लगा हुआ हृदय अन्य स्थान पर नहीं लगाया जा सकता अतः मैं इसे स्वीकार करने का साहस नहीं करता।

अन्यहृदयत्वम्—अन्यस्या (नायिकाया सकाशे) हृदयं यस्य सः, तस्य भावः—अन्य स्त्री पर आसक्त होने का भाव।
वर्जयित्वा—√वृज+क्त्वा—छोड़ कर।
विसृज्यताम् वि+सृज+कर्मवाच्य+लोट् विदा किया जाए।
हताश—हता आशा यस्य सः (बहुव्री०), तत्सम्बोधने—नष्ट हो गई है आशा जिस की।
प्रवृत्तम—प्र+√वृत्+क्त—लगा हुआ।
प्रवर्तयितुम् —प्र+√वृत्+णिच्+तुमुन्—लगाना लगाने के लिए।
किन्तु प्रवर्तयितुम्—नायक ने मित्रावसु के प्रस्ताव का चतुर एवं निपुण उत्तर दिया है। इस के दो अर्थ हो सकते हैं—
१ माता पिता की सेवा में संलग्न चित्त को विवाह-कार्य में नहीं लगाया जा सकता।

नायिका—[मूर्च्छां नाट्यति]

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु भर्तृदारिका। समस्ससदु समस्ससदु भट्टिदारिआ।

विदूषक—भो ! पराधीन खलु एष, किमनेनाभ्यर्थितेन ? तद्गुरुजनमस्य गत्वा अभ्यर्थय[1]। भो ! पराधीणो क्खु एसो, किं एदिणा अब्भत्थिदेण ? ता गुरुअणं से गदुअ अब्भट्ठेहि।

मित्रावसु—[आत्मगतम्] साधूक्तम्[2], नाथ गुरुजनमतिक्रामति। एष गुरुरस्मिन्नेव गौर्याश्रमे प्रतिवसति। तद् यावत् गत्वा अस्य पित्रा मलयवतीं ग्राहयामि।

[नायिका समाश्वसिति।]

मित्रा०—[प्रकाशम्] एवं निवेदितात्मनोऽस्मान् प्रत्याचक्षाणः कुमार एव बहुतरं जानाति !

नायिका—[सरोषम्] कथं प्रत्याख्यानलघुर्मित्रावसुः पुनरपि मन्त्रयते[3] ? कहं पच्चाक्खाणलहूआ मित्तावसू पुणो वि मन्तेदि ?

[मित्रावसुः निष्क्रान्त ।]

---

२ अन्य स्त्री पर आसक्त मन विवाह के इस नए प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता।

मित्रावसु इस का पहला अर्थ समझते हैं अतः कुछ सन्तुष्ट हो कर नायक के पिता की सम्मति लेने के लिए चले जाते हैं। मलयवती इस का दूसरा अर्थ समझती है और मन ही मन में आत्म हत्या करने का निश्चय कर लेती है। यदि नायक का निजी अभिप्राय भी पहला अर्थ ही हो तो उस के ऊपर पाखंडी होने का आक्षेप लगाया जा सकता है। वह स्वयं तो माता पिता की सेवा में विमुख हो कर प्रिया के प्रेम के गीत गाता फिरता है और मित्रावसु को पितृ भक्ति का बहाना कर टाल देना चाहता है।

अभ्यर्थितेन—अभि + √अर्थ् (प्रार्थना करना) + क्त + तृ० एक वचन—प्रार्थना किए गए से।

---

1 प्रार्थना करो। 2 साधु—ठीक। 3 बात करता है।

नायिका—[मूर्च्छा का अभिनय करती है]

चेटी—राजकुमारी! धैर्य धारण करो धैर्य धारण करो।

विदूषक—अरे! यह तो निश्चय ही पराधीन है। इन से प्रार्थना करने से क्या लाभ? अतः इस के माता पिता के पास जा कर प्रार्थना कीजिए।

मित्रावसु—[अपने आप] ठीक कहा है। ये माता पिता (की आज्ञा) का उल्लंघन नहीं करते। इन के पिता भी गौरी आश्रम में ही रहते हैं। अतः जा कर इन के पिता से मलयवती का स्वीकार करवाता हूँ।

[नायिका धैर्य धारण करती है]

मित्रावसु—[प्रकट रूप से] इस प्रकार हमें जो आत्म-निवेदन करने वाले हैं (अर्थात् जिन्हों ने अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया है) 'न' करते हुए वह कुमार ही (कारण को) अच्छी तरह जानते हैं।

नायिका—[क्रोध के साथ] अस्वीकृति से अपमानित हुए मित्रावसु फिर भी (न जाने) क्यों बातें कर रहे हैं।

[मित्रावसु चले गए]

अतिक्रामति—अति+√क्रम्+लट—उल्लंघन करता है।

ग्राहयामि √ग्रह्+णिच्+लट स्वीकार करवाता हूँ।

निवेदितात्मन—निवेदित आत्मा यैः (बहुव्री०) तान्—निवेदन कर दिया है आत्मा(अपना अभिप्राय) जिन्हों ने, उन को।

प्रत्याचक्षाण प्रति+आ+√ख्या+शानच—न करता हुआ

प्रत्याख्यानलघु—प्रत्याख्यानेन लघुः (तृ० तत्पु०) न किए जाने से हल्का अर्थात् अपमानित।

नायिका—[सास्रमात्मान पश्यन्ती आत्मगतम्] किं मम एतेन दौर्भाग्य कलङ्कमलिना अत्यन्तदुःखभागिना अद्यापि शरीरेण धारितेन ? तदिहैव अशोकपादप अनया अतिमुक्तलतया[1] उद्बध्य आत्मानं व्यापादयिष्यामि, तदिदमेव तावत् । [प्रकाशम् विलक्षस्मितम्] हञ्जे ! प्रक्षस्व तावत् मित्रावसुगतो न वेति, येन अहमपि इतो गमिष्यामि । किं मम एदिणा दोब्भग्गकलङ्कमलिणेण अच्चतदुक्खभाइणा अज्जबि सरीरेण धारिदेण । ता इध ज्जेव असोअपाअवे इमाए अदिमुत्तलदाए उब्बंधिअ अत्ताणं वावादइस्स । ता एव्व दाव । हञ्जे पक्ख दाव मित्तावसू गदो ण वत्ति जेण अहम्पि इदो गमिस्स ।

चेटी—[कतिचित् पदानि गत्वा अवलोक्यात्मगतम्] अन्यादृशमस्या हृदय प्रक्ष, तन्न गमिष्यामि । इहैवाऽपवारिता प्रेक्षे, 'किमेषा प्रतिपद्यते[2] इति । अण्णारिसं से हिअअं पक्खामि ता ण गमिस्स । इध ज्जेव ओबारिदा पक्खामि, किं एसा पडिवज्जदित्ति ।

नायिका—[दिशोऽवलोक्य पाशं गृहीत्वा सास्रम्] भगवति गौरि ! त्वया इह न कृत प्रसाद , तत् जन्मान्तरे यथा न ईदृशी दुःखभागिनी भवामि तथा करिष्यसि । *भअवदि गोरि ! तुए इध ण किदो पसादो ता जम्मन्तरे जधा* इरिसी दुक्खभाइणी होमि तथा करेसि ।

[इत्यभिधाय[3] कण्ठे पाशमर्पयति]

चेटी—[दृष्ट्वा ससम्भ्रममुपसृत्य] परित्रायतां परित्रायतामार्य्य , एषा भर्तृदारिका उद्बध्य आत्मानं व्यापादयति[4] । पलित्ताअदु पलित्ताअदु अज्जो एसा भट्टिदारिआ उब्बधिअ अत्ताणं वाबादेदि ।

नायक—[ससम्भ्रममुपसृत्य] क्वासौ ? क्वासौ ?

चेटी—इयमशोकपादपे । इअं असोअपादवे ।

नायक—[सहर्षं दृष्ट्वा] सवेयमस्मन्मनोरथभूमि ।

[नायिका पाणौ गृहीत्वा लतापाशमाक्षिपति[5]]

दौर्भाग्यकलङ्कमलिनेन—दौर्भाग्यम् एव कलङ्क (कर्मधा०) तेन मलिनेन (तृ० तत्पु०)—दुर्भाग्य रूपी कलक से कलंकित ।

---

1 माधवी लता से 2 करती है 3 अभिधाय—कहकर 4 हत्या करती है 5 आक्षिपति—खींचता है ।

नायिका—[आँसू बहाती अपने को देखती हुई, अपने आप] दुर्भाग्य के कलङ्क से कलङ्कित (तथा) अत्यधिक दुःख के भागी इस मुए शरीर को जीवित रखने से क्या (लाभ) ? अतः यहीं इस अशोक वृक्ष पर माधवी लता से अपने आप को बाँध कर मार डालूँगी। तो ऐसा ही करती हूँ [प्रकट रूप से बनावटी हँसी के साथ] अरी ! देख तो मित्रावसु चले गए हैं अथवा नहीं ताकि मैं भी यहाँ से चलूँ।

चेटी—[कुछ पग जा कर, देख कर अपने आप] इस का हृदय और ही तरह का देख रही हूँ अतः नहीं जाऊँगी यहीं पर छिप कर देखूँ कि यह क्या करती है।

नायिका—[गिरती हुई ता लेकर फाँस लेकर आँसुओं सहित] हे भगवती गौरी ! तुम ने यहाँ (इस जन्म में) तो कृपा नहीं की दूसरे जन्म में वैसे करना जिस से मैं ऐसी दुःख भागिनी न बनूँ।

[यह कह कर गले में फाँस लगाती है]

चेटी—[देख कर घबराहट के साथ पास आकर] हे आर्य ! रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए यह राजकुमारी फाँसी लगा कर आत्म हत्या कर रही है।

नायक—[घबराहट के साथ पास आकर] कहाँ है वह ? कहाँ है वह ?

चेटी—यह (नायिका) अशोक वृक्ष पर।

नायक—[हर्ष पूर्वक देखकर] वही यह मेरे मनोरथों का सहारा है।

[नायिका को हाथ से पकड़ कर लता के फाँस को खींचता है]

दौर्भाग्यम् दुर्भगस्य भाव इति (दुर्भग+य)।

अत्यन्तदुःखभागिना—अत्यन्तं दुःखं भजति इति अत्यन्तदुःखभागि तेन—(शरीरेण) अत्यन्त दुःख भोगने वाले शरीर से।

उद्बध्य—उत्+√बध+ल्यप् ऊपर बाँध कर फाँसी पर लटका कर।

व्यापादयिष्यामि—वि+आ+√पद्+णिच्+लृट्—मार डालूँगी।

अन्यादृशम् अन्यत् इव दृश्यत इति और ही तरह का।

अपवारिता अप+√वृ+णिच्+क्त+स्त्री० ढक कर छिपी हुई।

परित्रायध्वम्—परि+√त्रै+लोट् रक्षा करो, बचाओ।

अस्मन्मनोरथभूमिः अस्माकं मनोरथानां भूमिः (ष० तत्पु०)—हमारे मनोरथों का आश्रय-स्थान।

न खलु न खलु मुग्धे ! साहसं कार्यमीदृक्,
व्यपनय करमेतं पल्लवाऽऽभं लतायाः ।
कुसुममपि विचेतुं यो न मन्ये समर्थः,
कलयति[1] स कथन्ते पाशमुद्बन्धनाय[2] ? ॥११॥

नायिका—[ससाध्वसम्] हञ्जे ! कः पुनरेषः ! [निरूप्य सरोष हस्तमाक्षेप्तुमिच्छति] मुञ्च मुञ्चाग्रहस्तं, कस्त्वं निवारयितुम् ? मरणेऽपि किं त्वमेवाभ्यर्थनीयः[3] ? हञ्जे ! को उण एसो ? मुञ्च मुञ्च अग्गहत्थम् को तुम णिवारेदुं ? मरणे वि किं तुम उजेव्व अब्भत्थणीओ ।

नायकः—नाहं मुञ्चामि ।

कण्ठे हारलतायोग्ये येन पाशस्[4]त्वयाऽर्पितः[5] ।
गृहीतः सापराधोऽयं, कथं ते मुच्यते करः ? ॥ १२ ॥

विदूषकः—भवति, किं पुनरस्या अस्य मरणव्यवसायस्य[6] कारणम् ? भोदि, किं उण से इमस्स मरणव्ववसाअस्स कारणं ?

चेटी—[साकूतं[7]] नन्वेष एव ते प्रियवयस्यः । ण एसो एव्व दे पिअवअस्सो ।

नायकः—कथमहमेवाऽस्या मरणकारणं ? न खल्ववगच्छामि ।

विदूषकः—भवति कथमिव ? भोदि ! कहं विअ ?

अन्वयः—मुग्धे ! ईदृक् साहसं न खलु न खलु कार्यम्, लतायाः पल्लवाभम् एतं करं व्यपनय । यः कुसुमम् अपि विचेतुं न समर्थः मन्ये स ते उद्बन्धनाय पाशं कथं कलयति ॥११॥

न खलु, न खलु—निषेध पर बल देने के लिए शब्दों की प्रायः पुनरावृत्ति की जाती है । उदाहरण के लिए देखिए—

"न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्" (कालिदास द्वारा रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में)

कार्यम्—√कृ+यत्—करना चाहिए ।

---

1. पकड़ता है 2. उद्बन्धनाय=फाँसी के लिए 3 अभ्यर्थनीय=प्रार्थना करने योग्य 4. पाश=फंदा 5. अर्पित=दिया गया, लगाया गया 6 व्यवसायस्य=निश्चय का 7. अभिप्राय सहित ।

हे सुन्दरी ! ऐसा साहस निश्चय ही नही करना चाहिए। अपने कोपल सी शोभा वाले इस हाथ को लता से हटा ला। मै नही समझता कि जो तुम्हारा (हाथ) फल को चुनने में भी समथ नही है वह फाँसी के लिए ब धन को कैसे पकड रहा है।

नायिका—[घबराहट के साथ] अरी ! यह कौन है ? [नायक को देख कर क्रोध के साथ हाथ को छुड़ाना चाहता है] छोडो मरे हाथ को छोड दो। तुम कौन हो रोकने वाले ? मरने के लिए भी क्या तुम से निवेदन करना होगा।

नायक—मैं नही छोड़ूँगा।

लता सी माला के योग्य कण्ठ में जिस (हाथ) से तुम ने फदा लगाया है, तुम्हारा यह पकडा गया अपराधी हाथ कैसे छोड दिया जाए।

विदूषक—अच्छा, इस (स्त्री) के इस आत्म हत्या के निश्चय का भला कारण क्या है ?

चेटी—यह आप के प्रिय मित्र ही सचमुच (इस का कारण) हैं।

नायक—मैं ही इस के मरने का कारण कैसे हूँ ? मैं नही समझ पाता।

विदूषक—आर्य्ये किस तरह ?

व्यपनय—वि+अप+√नी+लोट—हटा लो।

पल्लवाऽऽभम—पल्लववत् आभा यस्य तत् (बहुव्री०) कोपल सी शोभा है जिसकी।

विचेतुम्—वि+√चि—तुमुन्—चुनने के लिए।

निवारयितुम्—नि+√वृ+णिच्+तुमुन्—रोकने के लिए।

अन्वय—हारलतायोग्ये कण्ठे त्वया येन (करेण) पाश अर्पित अय ते सापराध कर (मया) गृहीत। कथ स मुच्यते॥ १२॥

सापराध—अपराधेन सह वतमान (बहुव्री०)—अपराध सहित, दोषी।

मुच्यते—√मुञ्च्+कर्म वाच्य—छोड़ा जाता है।

चेटी—[साकूतं] या सा प्रियवयस्येन ते काऽपि हृदयवल्लभा[1] शिलातले आलिखिता, तस्याः पक्षपातिना एतेन प्रतिपादयतोऽपि मित्रावसोर्नाऽहं प्रतीष्टेति जातनिर्वेदया अनया एवं व्यवसितम् । जा सा पिअवअस्सेण दे कावि हिअअवल्लहा सिलाअले आलिहिदा । ताए पक्खवादिणा एदेण पडिवादअन्तस्स वि मित्तावसुणो णाहं पडिच्छिदे त्ति जादणिव्वेदाए इमाए एव्व ववसिदं ।

नायकः—[सहर्षमात्मगतम्] कथमियमेवासौ विश्वावसोर्दुहिता मलयवती ! अथवा रत्नाकरादृते कुतश्चन्द्रलेखाया[2] प्रसूतिः[3] ? हा ! कथं वञ्चितोऽस्मि अनया ?

विदूषकः—भवति ! यद्येव, तदनपराद्ध इदानीं प्रियवयस्यः । अथवा यदि मम न प्रत्येति, तदा स्वयमेव शिलातलं गत्वा पश्यतु भवती । भोदि ! जइ एव्व, ता अणवरद्धो दाणीं पिअवअस्सो । अहवा जइ ममणः पत्तिआअदि, तदा सअं ज्जेव्व सिलाअलं गदुअ पेक्खदु भोदी ।

नायिका—[सहर्षं सलज्जञ्च नायकं पश्यन्ती हस्तमाकर्षति ।]

नायकः—[सस्मितम्] न तावन्मुञ्चामि यावन्मम हृदयवल्लभां शिलायामालेख्यगतां न पश्यसि । [सर्वे परिक्रामन्ति ।]

पक्षपातिना—पक्षे पतति इति पक्षपातिन् तेन (उपपद तत्पु०)–पक्षपाती द्वारा ।

प्रतिपादयत—प्रति+√पद्+णिच्+शतृ+ष० एक वचन—देते हुए का ।

प्रतीष्टा—प्रति+√इष्+क्त—स्वीकार की गई ।

जातनिर्वेदया—जातः निर्वेदः (ग्लानिः) यस्याः सा (बहुव्री०), तया—पैदा हो गई थी ग्लानि जिसमें, उस से ।

व्यवसितम्—वि+अव√सो+क्त—प्रयत्न किया गया ।

अथवा ·····प्रसूतिः—यहां पर समुद्र मन्थन की पौराणिक कथा की ओर संकेत है । कहते हैं कि जब देवताओं एवं [illegible] लेकर समुद्र का मन्थन किया तो [illegible] से चौदह रत्न [illegible] चन्द्रमा भी [illegible] । यहां उसी [illegible] र संकेत कि [illegible] का अभिप्र[illegible]

1. हृद [illegible] का 3. [illegible]

चेटी—[ ]तुम्हारे प्रिय मित्र ने जिस किसी हृदय की प्रियतमया को शिलातल पर चित्रित किया है (तथा) उस (प्रिया) के पक्षपात के कारण मित्रावसु के देने पर भी 'इस ने मुझे स्वीकार नही किया है',— इस से ग्लानि को प्राप्त हो कर इस ने ऐसा करने का प्रयत्न किया।

नायक—[हर्ष पूर्वक अपने आप] क्या यही वह विश्वावसु की पुत्री मलयवती है ? अथवा समुद्र को छोड कर चन्द्रकला की उत्पत्ति और कहाँ हो सकती है ? ओह ! कैसा धोका दिया है इस ने मुझ।

विदूषक—श्रीमती जी ! यदि यह बात है तो अब आर्य पुत्र निर्दोष हैं। अथवा यदि मुझ पर विश्वास न हो तो श्रीमती जी स्वयं हा शिलातल को जा कर देख ल।

नायिका—[हर्ष एव लज्जा पूर्वक नायक को देखती हुई हाथ को खींचती है]

नायक—[मुस्कराते हुए] तब तक नही छोड़ूँगा जब तक शिलातल पर चित्रित मेरी हृदय की प्रियतमा को नही देखोगी।

[सब घूमने हैं]

कि जिस प्रकार चन्द्र लेखा जसे अमूल्य रत्न की उत्पत्ति केवल समुद्र से ही हो सकती थी, वैसे ही मलयवती जैसी अनुपम सुन्दरी का जन्म सिद्धो के प्रशस्त कुल में ही हो सकता था।

रत्नाकरात्—रत्नाना आकर, तस्माद् (ष० तत्पु०)—रत्नो की खान अर्थात् समुद्र से।

रत्नाकरात् ऋते०—'ऋते' के साथ पचमी विभक्ति का प्रयोग होना है।

वञ्चितोऽस्मि०—अज्ञान वश मित्रावसु के प्रस्ताव को ठुकरा देने के कारण नायक अपने आप को 'वञ्चित' समझता है।

अनपराद्ध—न अपराद्ध (अप+√राध्+क्त)—नञ् तत्पु०—निर्दोष।

प्रत्येति—प्रति+√इ+लट्—विश्वास करती है।

आलेख्यगताम्—आलेख्ये गताम् (स० तत्पु०)—चित्र में गई हुई, चित्रित।

विदूषक:—[कदलीपत्रमपनीय] भवति ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व एतमस्य हृदयवल्लभजनम्। भोदि ! पेक्ख पेक्ख एद से हिअअवल्लह जण।

नायिका—[निरूप्यापवार्य सस्मितम्] चतुरिके! अहमिवालिखिता। चदुरिए ! अह विअ आलिहिदा।

चेटी—[चित्राकृति नायिकाञ्च निर्वर्ण्य] भर्तृदारिके ! किं भणसि ? अहमिवालिखितेति। ईदृश सौसादृश्य, येन न ज्ञायते किं तावदिह मणिशिलातले भर्तृदारिकाया प्रतिबिम्ब[1] सङ्क्रान्तम्, उत त्वमालिखितेति ! भट्टिदारिए ! किं भणसि ? अह विअ आलिहिदेत्ति ? ईरिस सोसारिच्छ, जेण ण जाणीअदि, किं दाव इध ज्जेव्व सिलाअले भट्टिदारिआए पडिबिम्ब सङ्कत उद तुम आलिहिदे त्ति।

नायिका—[विहस्य] हञ्जे ! दुर्जनीकृतास्मि अनेन मा चित्रगता दर्शयता। हञ्जे ! दुज्जणीकिदम्हि इमिणा म चित्तगद दसअतेण।

विदूषक—निवृत्त इदानीं ते गन्धर्वविवाह। तन्मुञ्च तावदस्या अग्रहस्तम्। एषा खलु काऽपि त्वरितत्वरिता[2] इहैवाऽऽगच्छति। णिव्वुत्तो दाणी दे गन्धव्वो विआहो। ता मुञ्च दाव से अग्गहत्थ। एसा क्खु कावि तुरिदतुरिदा इध ज्जेव्व आअच्छदि।

नायक—[मुञ्चति]

[तत प्रविशति द्वितीया चेटी]

द्वितीया चेटी—[प्रविश्य सहर्षम्] भर्तृदारिके ! दिष्ट्या वर्धसे। प्रतीष्ठा[3] खलु त्व भर्तृजीमूतवाहनस्य गुरुभि[4]। भट्टिदारिए ! दिट्टआ वड्ढसि। पडिच्छिदा क्खु तुम भट्टिओ जीमूदवाहणस्स गुरुहिं।

सौसादृश्यम्—सुष्ठु सदृश सुसदृश, तस्य भाव सौसादृश्यम्—पूरी समानता।

सङ्क्रान्तम्—सम् + √क्रम् + क्त—परिवर्तित हुआ हुआ, पडा हुआ।

ईदृश सौसादृश्यम्०—चेटी की यह उक्ति नायक की चित्रकला विषयक निपुणता का परिचय देती है।

---

1 परछाई 2 जल्दी-जल्दी 3 स्वीकार कर ली गई 4 बड़ों से (माता पिता से)।

चेटी—[चित्र की आकृति तथा नायिका को ध्यान से देख कर] राजकुमारी ! क्या कहती हो — मैं ही चित्रित हूँ ? इस की ऐसी समानता है कि पता ही नही चलता कि शिलातल पर राजकुमारी (आप) की परछाई पड रही है अथवा आप का चित्र बना हुआ है ।

विदूषक—[केले के पत्ते का ओर ला कर] श्रीमती जी ! देखिए देखिए यह इन के हृदय की प्रियतमा है ।

नायिका-[देख कर, एक ओर मुस्कराते हुए] ह चतुरिके ! मैं ही चित्रित की गई हूँ ।

नायिका-[हस कर] अरी ! इन्होने मेरा चित्र दिखा कर मुझ बुरी बना दिया है ।

विदूषक—अब तुम्हारा गाधर्व विवाह हो गया है अत इन क हाथ का छोड दो ।

नायक—[छोड देता है]

[तब दूसरी चेटी प्रवेश करती है]

दूसरी चेटी—[प्रविष्ट हो कर हर्ष पूवक] राजकुमारी ! बधाई हो ! कुमार जीमूतवाहन क माता पिता ने आप को स्वीकार कर लिया है ।

दुर्जनीकृत —अदुजन दुजन सम्पद्यमान कृत इति (दुजन + चित्र + $\sqrt{}$कृ + क्त)—बुरी बना दी गई हूँ ।

दर्शयता—$\sqrt{}$दृश् + णिच + शतृ + तृ० एक व०—दिखाते हुए से

निवृत्त —नि + $\sqrt{}$वृत् + क्त—पूरा हो गया है ।

गाधर्व विवाह—आठ प्रकार क विवाहो में स एक है । यह वर-वधु के पारस्परिक प्रम के आधार पर ही सम्पन्न कर लिया जाता था, माता पिता की अनुमति इस के लिए आवश्यक नही समझी जाती थी । मनु इसे उच्च कोटि का विवाह नही समझते ।

विदूषकः—[नृत्यन्] ही ही भो ! सम्पूर्णा मनोरथाः प्रियवयस्यस्य। अथवा न हि न हि, भवत्या मलयवत्या। अथवा न एतयो [भोजनमभिनयन्] ममैव एकस्य ब्राह्मणस्य। ही ही भो.! सम्पुण्णा मतणोरहा पिअवअस्सस्स। अहवा णहि णहि, भोदीए मलयअवदीए। अहवा ण एदाए मम ज्जेव एक्कस्स बम्हणस्स।

चेटी—[नायिकामुद्दिश्य] आज्ञप्ताऽस्मि युवराजमित्रावसुना यथा—"अद्यैव मलयवत्या. विवाह, तल्लघु[1] तां गृहीत्वा आगच्छ" इति। तदेहि गच्छाव.। आणत्तम्हि जुअराजमित्तावसुणा। जह 'अज्ज ज्जव्व मलवअदीए विआहो, ता लहु त गेण्हिअ आअच्छ" त्ति ता एहिं गच्छम्ह।

विदूषक.—गता खलु त्व दास्या पुत्रि! इमां गृहीत्वा। वयस्येन किमिहैव अवस्थातव्यम्। गदा क्खु तुम दासीए धीए ! इद गेण्हिए। वअस्सेण कि इध ज्जेव्व अवत्थिदव्व ?

चेटी—हताश ! मा त्वरस्व[2] त्वरस्व। युष्माकमपि स्नपनकमागतमेव[3]। हदास ! मा तुवर तुवर। तुम्हाणं पि ण्हवणअ आअद ज्जेव्व।

नायिका—[सानुराग सलज्जञ्च नायक पश्यन्ती सपरिवारा निष्क्रान्ता।]

वैतालिक —[नेपथ्ये पठति]

ममैव. एकस्य ब्राह्मणस्य—विवाह के अवसर पर स्वादिष्ट भोजन एव मिष्टान्न की उपलब्धि की सम्भावना ही विदूषक के विशेष आनन्द का कारण है। नायक के माता पिता की स्वीकृति को वह इसी दृष्टि कोण से अपने मनोरथ की पूर्ति बताता है। यह उस के चरित्र में पेटू होने की विशेषता के अनुरूप ही है।

दास्या पुत्रि—इस प्रकार प० अलुक् तत्पु० के रूप में प्रयुक्त होने पर 'गाली' का अर्थ देता है। राड की छोरी !

अवस्थातव्यम्—अव + √स्था + तव्यत्—ठहरना चाहिए, ठहरना होगा।

---

1. लघु—शीघ्र 2. जल्दी करो 3. स्नपनकम्—स्नान-सामग्री।

विदूषक—[नाचते हुए] आहा! प्रिय मित्र के—अथवा नहीं नहीं—देवी मलयवती के—अथवा इन दोनो के नहीं [भोजन का अभिनय करके] एक मात्र मुझ ब्राह्मण के मनोरथ पूरे हो गए हैं।

चेटी—[नायिका की ओर सकेत करके] युवराज मित्रावसु ने मुझे आज्ञा दी है कि—'आज ही मलयवती का विवाह है अत उसे शीघ्र ले कर आओ।' तो आओ चलती हैं।

विदूषक—अरी दासी की पुत्री! इसे ले कर तू चली गई। मित्र को क्या यहीं ठहरना होगा?

[नायिका प्रेम एव लज्जा के साथ नायक को देखती हुई परिवार सहित चली गई]

चेटी—अरे मूर्ख! जल्दी न करो, जल्दी न करो। तुम्हारे लिए भी स्नान-सामग्री आई ही समझो।

वैतालिक [पर्दे के पीछे से पढ़ता है]

हताश—हता आशा यस्य स तत्सम्बोधने (बहुव्रीहि०)—नष्ट हो गई है आशा जिस की। यह भी एक प्रकार की गाली है। मुए अभागे के अर्थ मे प्रयुक्त होती है।

वैतालिक—राजाओ की प्रशसा वाला भाट। इस का कार्य राजा को जगाना समय की सूचना देना तथा उस की प्रशसा एव वीरता के गीत गा कर उसे आनन्दित एवं उत्साहित करना होता था।

वृष्ट्या[1] पिष्टातकस्य[2] द्युतिमिह[3] मलये मेरुतुल्यां दधानः
सद्यः[4] सिन्दूरदूरीकृतदिवससमारम्भसन्ध्याऽऽतपश्री ।
उद्गीतैरङ्गनानां[5][6] चलचरणरणन्नूपुरह्लादहृद्यै-
रुद्वाहस्नानवेला[7] कथयति भवतः सिद्धये[8] सिद्धलोकः ॥ १३ ॥

विदूषकः—[आकर्ण्य] भो वयस्य ! दिष्ट्या आगतं स्नपनकम् । भो वअस्स !
दिट्ठआ आगदं एहवणअं ।

नायकः—[सहर्षम्] सखे ! यद्येवम् किमिदानीमिह स्थितेन ? तदा आगच्छ ।
तातं नमस्कृत्य स्नानभूमिमेव गच्छावः ।

अन्योन्यदर्शनकृतः समानरूपानुरागकुलवयसाम् ।
केषाञ्चिदेव[9] मन्ये समागमो[10] भवति पुण्यवताम्[11] ॥ १४ ॥

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति द्वितीयोऽङ्कः

अन्वयः—पिष्टातकस्य वृष्ट्या इह मलये मेरुतुल्यां द्युतिम् दधानः सद्यः सिन्दूरदूरीकृतदिवससमारम्भसन्ध्याऽऽतपश्री, सिद्धलोकः अङ्गनानां चलचरणरणन्नूपुरह्लादहृद्यैः उद्गीतैः सिद्धये भवतः उद्वाहस्नानवेलां कथयति ॥ १३ ॥

वृष्ट्या०—इस श्लोक में नृत्य और संगीत द्वारा तथा गुलाल एवं सिन्दूर के बिखरने से सिद्ध लोगों द्वारा विवाह सम्बन्धी स्नान की सूचना दिए जाने का वर्णन है ।

मेरुतुल्याम्—मेरोः तुल्याम् (ष० तत्पु०) । मेरु पर्वत को सुमेरु के नाम से भी याद किया जाता है । इस पर्वत की चोटियां सोने से निर्मित बताई जाती हैं । गुलाल के छिड़कने से मलय पर्वत भी मेरु की शोभा को धारण करता हुआ बताया गया है ।

दधानः—√धा+शानच्—धारण करता हुआ ।

---

1 वर्षा से 2 गुलाल की 3 द्युतिम्=शोभा को 4 अभी अभी 5 उद्गीतैः=ऊँचे गीतों से 6 अङ्गनानाम्=स्त्रियों के 7 उद्वाह=विवाह 8 कल्याण के लिए 9 केषाञ्चित्=किन्हीं का 10 मिलन 11 भाग्यशालियों का ।

इस मलय पर्वत पर, गुलाल की वर्षा से सुमेरु पर्वत की तरह शोभा को धारण करते हुए, तत्काल (बिखरे हुए) सिन्दूर से प्रात. तथा साय की धूप की शोभा का मात करते हुए, सिद्ध लोग सुन्दरियों के, चञ्चल चरणो में शब्द करते हुए नूपरो के स्वर से मनोहर (बने हुए) गीतो द्वारा कल्याण के लिए आप के विवाह सम्बन्धी स्नान की सूचना दे रहे है।

विदूषक—[सुन कर] अरे मित्र! सौभाग्य से स्नान की सामग्री आ पहुची।

नायक—[हर्ष पूर्वक] मित्र! यदि ऐसा है, तो अब यहाँ ठहरने से क्या (लाभ)? अत आओ! पिता जी को नमस्कार करके स्नान-स्थान को ही चलते हैं।

विवाह जो परस्पर दर्शन से सम्पन्न हुआ हो तथा (जहा) रूप, प्रेम, कुल एव आयु एक समान हो, किन्ही भाग्यशालियो का ही होता है-(ऐसा) मैं समझता हूँ।

[सब का प्रस्थान]

दूसरा अङ्क समाप्त।

सिन्दूर०—सिन्दूरेण दूरीकृता दिवससमारम्भस्य सन्ध्यातपस्य च श्री. येन, स (सिद्ध लोक.) (बहुव्री)—सिन्दूर (के बिखेरने) से मात कर दिया है प्रात एव साय की धूप की शोभा को जिन्हो ने, वे सिद्ध लोग।

चल०—चला (चञ्चला) ये चरणा. तेषु रणन्तः ये नूपुरा (कर्मधा०) तेषां ह्रादेन हृद्यं—चञ्चल चरणों में बजते हुए पाजेबो के स्वर स मनोहर (बने हुए)। उद्वाहस्नानवेलाम्—उद्वाहस्य स्नान तस्य वेलाम् (प० तत्पु०) विवाह के स्नान के समय को।

स्नानभूमिः—स्नानस्य भूमि (प० तत्पु०)—स्नान का स्थान।

अन्वय—समानरूपानुरागकुलवयसां केषाञ्चित् एव पुण्यवतां समागम अन्योन्यदर्शनकृत भवति (इति) मन्ये॥ १४॥

अन्योऽन्यदर्शनकृत—अन्योऽन्य यत् दर्शन तेन कृतः—परस्पर दर्शनो से सम्पन्न हुआ। समानानुरूपानुरागकुलवयसाम्—समानानि रूपानुराग कुलवयांसि येषाम्, तादृशानाम्—(बहुव्री०)—समान रूप, अनुराग, कुल तथा आयु हो जिनकी ऐसो का। रूपानुरागकुलवयासि—रूपञ्च अनुरागश्च कुलञ्च वयश्च इति (द्वन्द्व०)।

वक्ष स्थले दयिता[1] नीलोत्पलवासिता मुखे मदिरा ।
शीर्षे च मे शखरको नित्यमव सस्थितो यस्य ॥२॥
[प्रस्खलन्] अरे को मा चालयति ? [सहषम्] अवश्य नवमालिका मां परिहसति ।]

वच्छत्थलम्हि दइआ दिण्णु प्पलवासिआ मुहे मइरा ।
सीसम्मि अ सेहरओ णिच्च विअ सठिआ जस्स ॥२॥
[प्रस्खलन्] अरे ! को म चालदि ? [सहष म्] अवस्स णोमालिआ म परिहसदि ।

चेट —भर्त ? न च तावत्साऽद्यापीहाऽऽगच्छति । भट्टक ! ण अ दाव सा अज्जवि इहागच्छदि ।

विट —[सरोषम्] प्रथमप्रहरे एव मलयवत्या विवाहमङ्गल निर्वृत्तम् । तत्कथ सा इदानीं प्रभातेऽपि नागच्छति ? अथवा विवाहमहोत्सवे सव एव प्रियप्रणयिनीजनसहाय सिद्धविद्याधरलोक कुसुमाकरोद्याने आपान[2] सौख्यमनुभविष्यतीति तर्कयामि[3] । तत्रव नवमालिका मामपेक्षमाणा तिष्ठति । तत्तत्रव गमिष्यामि । कीदृशो नवमालिकया विना शखरक ?

पढमपहरे ज्जेव्व मलअवदीए विआहमगल णिव्वुत्त । ता कीस सा दाणी पभादे वि ण आअच्छदि ? अहवा विआहमहोम्मवे सव्वो ज्जेव्व णिअपणइणीजणसहाओ ? सिद्धविज्जाहरलाओ कुसुमाअरज्जाण आवाण असोक्खमणुभविस्सदि त्ति तक्कमि । तहिं ज्जेव्व णोमालिआ म अवेक्ख माणा चिट्ठदि । ता तहिं ज्जेव्व गमिस्स । कीरिसो णोमालिआए विणा सेहरओ ? ।

[प्रस्खलन्निष्क्रमितुमीहते[4]]

चेट —एतु एतु भर्त्ता । एतत् कुसुमाकरोद्यानम । तत् प्रविशतु भर्त्ता । एदु एदु भट्टके । कुसुमाअरुज्जाण । विसदु भट्टके ।

[उभौ प्रवश नाटयत]

शखरक —विट का नाम है । इस का शाब्दिक अथ 'फूलो का ताज' है ।

1 प्रिया 2 मदिरा पान 3 अनुमान लगाता हू 4 ईहने—चाहता है ।

जिस की छाती पर प्रियतमा मुख में नील कमलों से सुगंधित मदिरा तथा सिर पर मुकुट सदा पड़ रहते हैं।

[लड़खड़ाते हुए] अरे ! मुझ कौन हिला रहा है ? [ध्यानपूर्वक] अवश्य ही नवमालिका मेरे साथ उपहास कर रही है।

चेट स्वामिन् ! वह तो अभी तक आई ही नहीं।

विट [क्रोध सहित] (गर्व के) पहले पहर में ही मलयवती का विवाहमङ्गल सम्पन्न हो गया था तो वह अब तक (आज वे) पर भी अब तक क्यों नहीं आई ? अथवा विवाह के पश्चात् उत्सव पर मार हो सिद्ध तथा विद्याधर लोग (अपनी) प्रिय पत्नियों सहित कुसुमाकर उद्यान में मदिरा पान का आनन्द मनाते होंगे ऐसा मेरा अनुमान है। वहीं पर नवमालिका मेरी प्रतीक्षा करती हुई ठहरी होगी। वहीं चलता हूँ। नवमालिका के बिना भला शेखरक कैसा ?

[लड़खड़ाते हुए निकलने की चेष्टा करता है]

चेट आइए आइए स्वामिन् यह कुसुमाकर उद्यान है अतः स्वामी प्रवेश करें।

[दोनों प्रविष्ट होने का अभिनय करते हैं]

अन्वय वक्षस्थले दयिता मुखं विकसितोत्पलवासिता मदिरा च शीर्षे शेखरक यस्य नित्यम् एव संस्थित ॥ २ ॥

नीलोत्पलवासिता नीलानि यानि उत्पलानि तै वासिता—नील कमलों से सुगंधित।

चालयति √चल+णिच चलाती है हिल रही है मदमस्त होने के कारण विट लड़खड़ा रहा है वह समझता है कि उसे कोई हिला रहा है

तावत्साऽद्यापीहाऽऽगच्छति तावत्+सा+अद्य+अपि+इह+आगच्छति

निवृत्तम् निर्+√वृत्+क्त हो गया है

निजप्रणयिजनसहाय निज य प्रणयिनीजन तेन सहाय—अपनी प्रेयसियों के साथ

प्रतीक्षमाणा—प्रति+√ईक्ष+शानच प्रतीक्षा करती हुई

कीदृशो०—यदि यहाँ शेखरक तथा नवमालिका के शाब्दिक अर्थ लिए जाए तो अर्थ होगा— चदली के फूलों के बिना फूलों का हार अथवा ताज कैसा ? इस प्रकार इन दो शब्दों पर श्लेष समझना चाहिए

प्रस्खलन् प्र+√स्खल्+शतृ—लड़खड़ाता हुआ

[ततः प्रविशति स्कन्धन्यस्तवस्त्रयुगलो विदूषकः]

विदूषक—सम्पूर्णा मनोरथा प्रियवयस्यस्य। श्रुत खलु मयाऽपि प्रियवयस्य कुसुमाकरोद्यान गमिष्यतीति। तद यावत् तत्रैव गमिष्यामि। [परिक्रम्यावलोक्य च] इद कुसुमाकरोद्यान यावत् प्रविशामीदम्। [प्रविश्य भ्रमरबाधा नाटयन्] अरे! कथ पुनर्दुष्टमधुकरा मामेव अभिभवन्ति[1]! [आत्मानमाघ्राय] भवतु ज्ञात, यत् तन्मलयवतीबन्धुजनेन जामातुः प्रियवयस्य इति कृत्वा सबहुमान वर्णकै[2]र्विलिप्तोऽस्मि। सन्तानकुसुमशेखरक[3]श्च मम शीर्षे पिनद्ध.। स खलु एषोऽत्यादरो मेऽनर्थीभूत। किमिदानीमत्र करिष्यामि? अथवा एतेनैव मलयवतीसकाशा[4]ल्लब्धेन रक्तांशुकयुगलेन स्त्रीवेश विधाय उत्तरीयकृतावगुण्ठनो[5] गमिष्यामि। पश्यामि तावत् दास्या पुत्रा दुष्टमधुकरा कि करिष्यन्तीति। [तथा करोति] सपुण्णा मणोरहा पिअवअस्सस्स। सुद क्खु मए वि पिअवअस्सो कुसुमाअरुज्जाण गमिस्सदि त्ति। ता जाव तहिं जेव्व गमिस्स। इद कुसुमाअरुज्जाण, जाव पविशामि इद। अरे! कोस उण दुट्टमहुअरा म जेव्व अभिभवति! भोदु जाणिद ज त मलअवदीबधुजणेण जामातुअस्स पिअवअस्सो त्ति कदुअ सबहुमाण वण्णकेहि विलत्तोम्हि। सन्ताणकुसुमसेहरअ च मम सीसे पिणद्ध। सो क्खु एसो अच्चाअरो अणत्थीभूदो। कि दाणि एत्थ करिस्स? अहवा एदेण जेव्व मलअवदीसआसादो लद्धेण रत्तसुअजुअलेण इत्थिआवेस विहिअ उत्तरीअकिदावगुण्ठणो गमिस्स। पेक्खामि दाव कि दासीए पुत्ता महुअरा करिस्सति।

स्कन्धन्यस्तवस्त्रयुगल—स्कन्ध न्यस्त वस्त्रयो युगल येन स (बहुव्री०)—कन्धे पर वस्त्रो का जोडा रखे हुए।

न्यस्तम्—नि+√अस् (फेंकना)+क्त—रखा हुआ।

भ्रमरबाधाम्—भ्रमरै कृता बाधा ताम् (मध्यमपदलोपी समास) भवरो से की गई पीडा को। आघ्राय—आ+√घ्रा+ल्यप्—सूँघ कर।

विलिप्त—वि+√लिप्+क्त—पोत दिया गया।

सन्तानकुसुम—सन्तान वृक्ष के फूल। सन्तान वृक्ष इन्द्र के नन्दन वन में मिलने वाले कल्प, पारिजात आदि वृक्षो में से एक है।

---

1 आक्रमण करते हैं 2 वर्णकै=रङ्गों से 3 शेखरक=मुकुट 4. सकाशात्=पास से 5 अवगुण्ठन=घूँघट।

[तव क धे पर वस्त्रों का जोना रखे हुए विदूषक प्रवेश करता है]

विदूषक—प्रिय मित्र की मनाकामाएं पूरी हो गई । मैं ने भी सुना है कि प्रिय मित्र कुसुमाकर उद्यान को जाएगा। तो मैं वहीं चलता हूँ। [घूम कर तथा देख कर] यह कुसुमाकर उद्यान है तो मैं इस मे प्रवेश करता हूँ। [प्रविष्ट हो कर, भंवरों से पीडित होने का अभिनय करते हुए] अरे! (ये) दुष्ट भवरे मेरे ऊपर भी कैसे आक्रमण कर रहे हैं! [अपने आप को सूंघ कर] अच्छा! समझा। 'दामाद का प्रिय मित्र है'—ऐसा समझ कर मलयवती के सम्बन्धियो ने सम्मान सहित सुगन्ध रगो मे पोत दिया है तथा सन्तान वृक्ष के फूलो का मुकुट मेरे सिर पर बाध दिया है। मेरा यही अधिक सम्मान अनर्थ का कारण बन गया है। तो अब मैं यहाँ क्या करूँ? अथवा मलयवती के पास से प्राप्त इसी लाल रेशमी वस्त्रो के जोडे से स्त्री का वेश बना कर दुपट्टे से घूँघट निकाल कर चलता हूँ। देखूँगा तब ये दुष्ट भवरे क्या कर लेंगे। [वैसा करता है]

विनद्ध—अपि + √नह् + क्त—बधा हुआ। यहा अपि उपसर्ग के अ का लोप हो गया है।

अनर्थीभूत०—अननय अनथ सम्पद्यमान भूत—अनथ + च्वि + भू + क्त।

रक्तांशुकयुगलेन—रक्त अंशुके तयो युगलन—लाल रेशमी वस्त्रो के जोडे से। रक्तांशुकयुगल का 'नागानन्दम्' मे विशेष महत्त्व है। मलयवती से प्राप्त ऐसे एक जोडे से विदूषक के अपने आप को ढक लेने पर, विट को उस पर नवमालिका होने का सन्देह होता है और इस प्रकार एक हास्य पूर्ण घटना का सूत्रपात होता है। ससुराल से ऐसा ही लाल वस्त्रो का एक अन्य जोडा बाद मे नायक को भी मिलता है जिसे ओढ कर वह गरुड के मन में नाग होने का भ्रम पैदा करने में सफल हो जाता है। अत इस प्रकार ऐसे ही एक अन्य लाल वस्त्रो के जोडे से नाटक की कथा को चरम बिन्दु की ओर अग्रसर होने में सहायता मिलती है।

उत्तरीय०—उत्तरीयेण कृतम् अवगुण्ठन येन (बहुव्रीहि०)।

विट —[निरूप्य सहर्षम्] अरे चेट ! [अङ्गुल्या निर्दिश्य सहासम्] एषा खलु नवमालिका आगता । मां प्रेक्ष्य[1] चिरस्याऽऽगत इति कुपिता अवगुण्ठनं कृत्वा अन्यतो गच्छति । तत् कण्ठे गृहीत्वा प्रसादयाम्येनाम् । अरे चड ! एसा क्खु णोमालिआ आअदा । मं पक्खिअ चिरस्स आअदो त्ति कुविदा अवगुण्ठणं करिअ अण्णदो गच्छदि । ता कण्ठे गण्हिअ पसादेमि णं ।

[सहसोपसृत्य कण्ठे गृहीत्वा मुखे ताम्बूलं[2] दातुमिच्छति ।]

विदूषक —[मदगन्धं सूचयन् नासिकां गृहीत्वा पराङ्मुखः स्थित्वा] कथमेकेषां मधुकराणां साकशात्[3] परिभ्रष्ट[4] इदानीमन्यस्य दुष्टमधुकरस्य मुखे पतितोऽस्मि ! एक्काणं महुअराणं ससाआदो परिब्भट्टो दाणिं अण्णस्स दुट्टमहुअरस्स मुहे पडिदोम्हि ।

विट —कथं कोपेन पराङ्मुखीभूता । भवतु पादयोः पतित्वा प्रसादयामि । [प्रणामं कुर्वन् विदूषकस्य चरणमात्मनः शिरसि कृत्वा] प्रसीद नवमालिके, प्रसीद । कहं कोवेण परम्मुही भूदा ? भोदु, पाएसु पडिअ पसादेहि । पसीद णोमालिए पसीद ।

[ततः प्रविशति चेटी]

चेटी—आज्ञप्ताऽस्मि भर्तृदारिकया—"हञ्जे नवमालिके ! कुसुमाकरोद्यानं गत्वा उद्यानपालिकां पल्लविकां भण । अद्य सविशेषं तमालवीथिकां सज्जीकुरु । मलयवतीसहितेन जामात्रा तत्र गन्तव्यम्" इति । आज्ञप्ता मया पल्लविका । तद् यावत् रजनीविरहवर्धितोत्कण्ठं प्रियवयस्य शेखरकमन्विष्यामि । [दृष्ट्वा] एष शेखरकः । [सरोषम्] कथमन्यां कामपि स्त्रियं प्रसादयति ! तदिह स्थितैव जानामि केयेति । आणत्तम्हि भट्टिदारिआए,—"हञ्जे णोमालिए ! कुसुमाअरुज्जाणं गदुअ उज्जाणपालिअं पल्लविअं भणाहि । अज्ज सविसेसं तमालवीहिअं सज्जीकरेहि । मलअवदीसहिदेण जामाउकेण तत्थ गन्तव्वं' त्ति । आणत्ता मए पल्लविआ । ता जाव रअणीविरहवड्ढिदोत्कण्ठं पिअवअस्सअं सेहरअं अण्णसामि । एसो सेहरओ । कहं अण्णं कम्पि इत्थिअं पसादेदि ! ता इह ट्ठिदा ज्जेव्व जाणामि का एसेत्ति ।

---

1 देखकर 2 पान को 3 पास से 4 छूटा हुआ ।

विट—[देख कर, हर्ष पूर्वक] अरे चट ! [अङ्गुली से मस्त कर के, हंसते हुए] सच मुच यह नवमालिका आ पहुँची। 'देर से आया है'—ऐसा मुझे समझ कर (श० देख कर) क्रुद्ध हुई हुई घूँघट काढ कर, दूसरी ओर जा रही है। तो गले लगा कर इसे मनाता हूँ।

[सहसा आ कर, गले लगा कर, मुह में पान देना चाहता है]

विदूषक—[मदिरा की गन्ध की सूचना देता हुआ, नाक पकड़ कर मुख मोड़े हुए ठहर कर] कैसे एक प्रकार के 'मधुकरो' (भवरो) के पास से बच कर मानो दूसरी प्रकार के 'मधुकर' (शराबी) के मुँह में जा पडा हूँ।

विट—क्रोध से मुख कैसे फरे हुए हो ? [प्रणाम करता हुआ विदूषक के चरणों को अपने सिर पर रख कर] क्षमा करो, नवमालिके ! क्षमा करो।

[तब चेटी प्रवेश करती है]

चेटी—राजकुमारी ने मुझे आज्ञा दी है—'अरी नवमालिका ! कुसुमाकर उद्यान में जा कर मालिन पल्लविका से कहो—आज तमालवृक्षों वाले माग को विशेष रूप से सजा देना। मनस्वती के साथ जामाता ने यहाँ आना है,—मैं ने पल्लविका को आज्ञा दे दी है। तो अब रात्री के वियोग से बढी हुई उत्कण्ठा वाले प्रिय मित्र शेखरक को ढूँढती हूँ। [देख कर] यह शेखरक है। [क्रोध सहित] कैसे किसी और स्त्री को मना रहा है ? तो यहाँ ठहर कर ही मालूम करती हूँ कि यह स्त्री कौन है ?

प्रसादयामि—प्र+√सद्+णिच्+लट—प्रसन्न करता हूँ, मनाता हूँ।

पराङ्मुख—पराक् मुखं यस्य स (बहुव्री०)—दूसरी ओर है मुख जिसका।

दुष्टमधुकराणाम् मधुकरस्य—इस वाक्य में पहले 'मधुकर' का अर्थ भवरा (मधु करोति इति) है तथा दूसरे का अर्थ शराबी (मधु कर यस्य) है।

सज्जीकुरु—असज्ज सज्ज सम्पद्यमान कुरु (सज्ज+च्वि+√कृ)—तैयार करो।

रजनीवर्द्धितोत्कण्ठम्—रजन्या य विरह, तेन वर्धिता उत्कण्ठा यस्य (बहुव्री०) —रात्री में वियोग से बढ़ी हुई उत्कण्ठा वाले को।

अन्विष्यामि—अनु+√इष्+लट्—ढूँढती हूँ।

विटः—[सहर्षम्]

हरिहरपितामहानामपि गर्वितो यो न जानाति नन्तुम् ।
स शेखरकश्चरणयोस्तव नवमालिके ! पतति ॥ ३ ॥

हरिहरपिदामहाण पि गव्विदो जो ण जाणइ णमिदु ।
सो सेहरम्रो चलणेसु तुज्ज णोमालिए ! पडइ ॥ ३ ॥

विदूषकः—दास्याः पुत्र ! मत्तपालक ! कुतोऽत्र नवमालिका ? दासिएपुत्ता ! मच्चवालग्रा ! कुदो एत्थ णोमालिग्रा ?

चेटी—[निरूप्य, सस्मितम्] कथं मामिति कृत्वा मदपरवशेन शेखरकेण आर्य्य आत्रेय प्रसाद्यते ? तद् यावदलीक[1] कोपं कृत्वा द्वावप्येतौ परिहसिष्यामि। कध म त्ति करिग्र मदपरवसेण सेहरएण ग्रज्जो ग्रत्तेग्रो पसादिग्रदि ? ता जाव ग्रलीग्र कोवं करिग्र दुवेवि एदे परिहसिस्सं।

चेटः—[चेटी दृष्ट्वा शेखरकं हस्तेन चालयन्] भर्त्त ! मुञ्चैनम् । न भवत्येषा नवमालिका । एषा पुनर्नवमालिका रोषारक्ताभ्यां लोचनाभ्यां प्रेक्षमाणा आगता । भट्ठका ! मुंच एदं । ण भोदि एसा णोमालिग्रा । एसा उण णोमालिग्रा रोसारत्तेहिं लोग्रणेहिं पेक्खतो आग्रदा ।

चेटी—[उपसृत्य] शेखरक ! का पुनरेषा प्रसाद्यते ? सेहरग्र ! का उण एसा पसादिग्रदि ?

विदूषकः—[अवगुण्ठनमवतार्य] भवति ! कोऽपि ब्राह्मणोऽह मन्दभागधेय-प्रयुक्तः । भोदि ! कोवि बम्हणो ग्रहं मन्दभाग्रधेग्रपउत्तो ।

अन्वयः—यः गर्वितः हरिहरपितामहानाम् अपि नन्तुं न जानाति, नवमालिके ! स च शेखरकः तव चरणयोः पतति ॥ ३ ॥

हरिहरपितामहानाम्—हरिश्च हरश्च पितामहश्च, तेषाम् (द्वन्द्व)—विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा के । व्याकरण के नियमानुसार इस में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होना चाहिए था ।

शूद्रक के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' में शकार भी इस से

---

1. अलीकम्—झूठा ।

विट—[हर्ष पूर्वक]

जो अभिमान में विष्णु शिव तथा ब्रह्मा का भी नमस्कार करना नहीं जानता, वह शखरक, हे नवमालिका ! तुम्हारे चरणों में पड रहा है।

विदूषक—अरे दासीपुत्र ! मद्यपो (शराबियों) के सरदार ! यहाँ नवमालिका कहाँ ?

चेटी [देखकर, मुस्कराते हुए] शेखरक मद के वश में होने के कारण आर्य आत्रेय को '(यह) में हूँ —ऐसा समझ कर, मना रहे हैं। तो झूठा क्रोध करके इन दोनों का ही उपहास करूँगी।

चेट--[चेटी को देखकर शेखरक को हाथ से हिलाता हुआ] हे स्वामी ! इसे छोड दो। यह नवमालिका नहीं है। क्रोध से लाल नेत्रों से देखती हुई यह नवमालिका (तो अब) आ पहुँची है।

चेटी—[पास आकर] अरे शखरक ! यह किस स्त्री को मना रहे हो ?

विदूषक—[घूँघट को उतार कर] देवी जी ! मैं दुर्भाग्य का मारा कोई ब्राह्मण हूँ।

मिलते जुलते विचार को व्यक्त करता है —'गत न देवानामपि यत् प्रणामम्" अर्थात् जिस ने देवताओं को भी कभी नमस्कार नहीं किया।

मत्तपालक—मत्तानां पालक (ष० तत्पु०)—हे शराबियों के सरदार।

प्रसाद्यते प्र + $\sqrt{}$सद् + णिच् + कर्मवाच्य—मनाया जा रहा है।

प्रेक्षमाणा—प्र + $\sqrt{}$ईक्ष् + शानच्—देखती हुई।

अवतार्य—अव + $\sqrt{}$तॄ + णिच् + ल्यप्—उतार कर।

मन्दभागधेयप्रयुक्त —मन्द यत् भागधेय तेन प्रयुक्त —दुर्भाग्य से प्रेरित, अभागा।

विट —[विदूषक निरूप्य] अरे कपिलमर्कट ! त्वमपि शेखरक प्रतारयसि ? अरे चेट, गृहाणैनं यावन्नवमालिकां प्रसादयामि । अरे कविलमक्कडा ! तुमवि सेहरअं पदारेसि ! अरे चडा, गण्ह एदं जाव णोमालिअं पसादेमि ।

चेट: —यद्भर्ता आज्ञापयति । जं भट्टा आणवेदि ।

विट —[विदूषक मुक्त्वा चट्या पादयो पतति] प्रसीद नवमालिके ! प्रसीद । पसीद णोमालिए ! पसीद ।

विदूषक —[आत्मगतम्] एष मेऽपक्रमितुमवसरः[1] । एसो मे अवक्कमिदु अवसरो ।

[पलायितुमीहते ।]

चेट —[विदूषक यज्ञोपवीते गृह्णाति । यज्ञोपवीत त्रुट्यति ।] कुत्र कुत्र कपिलमर्कट ! पलायसे[2] ? कहिं कहिं कविलमक्कडा ! पलाअसि ?

[तदुत्तरीयेण[3] गले बद्ध्वाऽऽकर्षति ।]

विदूषक —भवति नवमालिके ! प्रसीद, मोचय माम् । भोदि णोमालिए ! पसीद ! मोआवेहि म ।

चेटी—[विहस्य] यदि भूमौ शीर्ष निवेश्य पादयोर्मे पतसि । जइ भमिए सीस णिवेसिअ पादेसु मे पडसि ।

विदूषक —[सरोष सप्रकम्पञ्च] भो ! कथ राजमित्र ब्राह्मणो भूत्वा दास्या पुत्र्या पादयो पतिष्यामि ? भो ! कह राअमित्तो बम्हणो भविअ दासीए धीआए पादेसु पडिस्स ?

कपिलमर्कट—कपिलश्चासौ मर्कट तत्सम्बोधने (कर्मधा०)– अर भूरे बन्दर ! संस्कृत में नाटककारो ने, विशेष रूप से कालिदास ने कई बार विदूषक की उपमा बन्दर से दी है । प्रसग के लिए देखिए

'एष खलु भानिमित वानर इव आर्यमाणवकस्तिष्ठति"—कालिदास द्वारा रचित विक्रमोवर्शी म ।

'साधु रे पिङ्गलवानर ! साधु'—कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' म ।

प्रतारयसि—प्र + $\sqrt{}$तृ + णिच्—धोखा देते हो ।

प्रतारयसि०—मजे की बात यह है कि मद मस्तविट इस भ्रान्ति के लिए अपना दोष न मान कर, बिचार विदूषक को अपराधी ठहराता है ।

---

1 अपक्रमितुम्—बाहर जाने के लिए 2 भागते हो । 3 दुपट्टे से ।

विट—[विदूषक को देखकर] अरे भूरे बन्दर ! तुम भी शकारक को धोखा दे रहे हो। अरे चेट ! इसे पकड़ रखो जब तक कि मैं नवमालिका को मना लूँ।

चेट—जो स्वामी की आज्ञा।

विट—[विदूषक को छोड़ कर चेटी के चरणों में गिरते हुए] क्षमा करो नवमालिके क्षमा करो।

विदूषक—[अपने आप] यह बच निकलने का अवसर है। [भागना चाहता है]

चेट—[विदूषक को यज्ञोपवीत से पकड़ता है। यज्ञोपवीत टूट जाता है] अरे भूरे बन्दर ! कहाँ भाग रहे हो ?

[तब गले में बांध कर दुपट्टे से ही खींचता है]

विदूषक—देवी नवमालिके ! कृपा करो। मुझे छुड़ा दो।

चेटी—[हँस कर] यदि भूमि पर सिर रख कर मेरे चरणों में गिरो तो।

विदूषक—[क्रोध से कांपते हुए] क्या राजा का मित्र एवं ब्राह्मण हो कर दासी पुत्री के चरणों में गिरूँ ?

निवेश्य—नि + $\sqrt{}$विश् + णिच + ल्यप्—रखकर टककर।

चेटी—[अङ्गुल्या तर्जयन्ती[1] सस्मितम्] इदानीं पातयिष्यामि। शेखरक ! उत्तिष्ठ। प्रसन्ना तेऽहम्। एष पुनर्जामातुः प्रियवयस्यस्त्वया खलीकृत। एवञ्च श्रुत्वा कदाऽपि भर्ता मित्रावसुस्तुभ्य कुप्यति। तदादरेण सम्मानयैनम्। दाणीं पाडइस्स। सेहरअ ! उट्ठेहि, पसण्णा दे अहएसो उण जामाउअस्स पिअवअस्सो तुए खलीकिदो। एव्वञ्च सुणिअ कदावि भट्टारओ मित्तावसू तव कुप्पइ। आदरेण सम्म णेहि ण।

विट:—यन्नवमालिका आज्ञापयति। [विदूषक कण्ठे गृहीत्वा] आर्य ! त्वं मया प्रियसम्बन्धिक इति कृत्वा परिहसितः। [घूर्णन्] किं सत्यमेव शेखरको मत्तः ? कृतः परिहासः। [उत्तरीय वर्तुलीकृत्य आसन ददाति] इह उपविशतु सम्बन्धिकः। ज णोमालिआ आणवेदि। [विदूषक कण्ठे गृहीत्वा] अज्ज ! तुम मए पिय सम्बन्धिओ त्ति करिअ परिहसिदो। कि सच्चक्क ज्जेव्व सेहरओ मत्तो ? किदो परिहासो। इध उवविसदु सम्बन्धिओ।

विदूषक:—[स्वगतम्] दिष्ट्या[2]ऽपगत इवास्य मदाऽऽवेगः[3]। दिट्ठआ अवगदो विअ से मदावेगो। [उपविशति]

विट.—नवमालिके ! उपविश त्वमपि एतस्य पार्श्वे[4] येन द्वावपि युवाम् सममेव सम्मानयिष्यामि। णोमालिए ! उपविस तुमपि एदस्स पासे, जेण दुवेवि तुम्हे सम ज्जेव्व सम्माणइस्स।

चेटी—[विहस्योपविशति]

विट:—[चषकमादाय] अरे चेट ! सुभृतं खल्वेतच्चषकं[5] कुरु अच्छसुरया। अरे चेडा ! सुभरिद खु एद चसअ करेहि अच्छसुराए।

चेट:—[नाट्येन चषकभरण करोति]।

विट:—[स्वशिर शेखरात् पुष्पाणि गृहीत्वा चषके विन्यस्य, जानुभ्या[6] पतित्वा नवमालिकाया उपनयति[7]] नवमालिके ! पीत्वा आस्वाद्य[8] देहि तत्। णोमालिए ! पिविअ चक्खिअ देहि एद।

चेटी—[सस्मितम्] यत् शेखरको भणति। ज सेहरओ भणादि। [तथा कृत्वा विटस्यार्पयति[9]।]

पातयिष्यामि—√पत्+णिच्+लृट्—गिराऊँगी।

---

1. डराती हुई, चेतावनी देती हुई 2. दिष्ट्या=सौभाग्य से 3. आवेग =जोर
4. पास, निकट 5 चषकम्=प्याले को 6 घुटनों से 7. भेंट करता है 8 चख कर
9. अर्पयति=देती है।

चेटी—[अङ्गुली से डराती हुई मुस्कराहट के साथ] अभी गिराऊंगी। शम्बरक! उठो। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। [गले लगाती है] तुम ने तो जामाता के प्रिय मित्र को मूर्ख बनाया है। ऐसा सुनकर कहीं स्वामी मित्रावसु तुम पर क्रोध करें अतः आदर सहित इन का सम्मान करो।

विट—जैसे नवमालिका की आज्ञा [विदूषक को गले लगा कर] प्रिय सम्बन्धी हो—ऐसा सोच कर मैं ने तुम्हारा उपहास किया है। [घूमता हुआ] क्या शम्बरक सचमुच ही मतवाला है? उपहास हो चुका [चादर खोल कर आसन देता है] यहां बैठिए सम्बन्धी जी!

विदूषक—[अपने आप] सौभाग्य से इस के नशे का जोर उतर आ गया है। [बैठ जाता है]

विट—अरी नवमालिका! तुम भी इस के पास बैठ जाओ ताकि मैं दोनों का एक साथ ही सम्मान कर दूं।

चेटी—[हंस कर बैठ जाती है]

विट—[प्याले को लेकर] अरे चेट! स्वच्छ मदिरा से इस प्याले को अच्छी तरह भर दो।

चेट—[प्याले को भरने का अभिनय करता है]

विट—[अपने सिर के मुकुट से फूलों को ले कर प्याले में रख कर घुटनों के बल गिर कर नवमालिका को देता है] नवमालिके! पी कर चख कर इसे दे दो।

चेटी—[मुस्कराहट के साथ] जैसे शम्बरक कहता है। [ऐसा कर के विट को दे देती है]

खलीकृत—अखल खल सम्पद्यमान कृत—(खल + च्वि + $\sqrt{}$कृ + क्त) मूर्ख बनाया गया है।

कुप्यम॰ क्रुध अथवा कुप के योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है

सम्मानय—सम् + $\sqrt{}$मन् + णिच् सम्मान करो।

प्रियसम्बन्धिक परिहसित—जामाता के सम्बन्धियों तथा घनिष्ठ मित्रों के साथ उपहास करने की प्रथा परम्परागत प्रतीत होती है

वर्तुलीकृत्य—अवर्तुल वर्तुल सम्पद्यमान कृत्वा (वर्तुल + च्वि + $\sqrt{}$कृ + ल्यप्) —गोल बना कर लपेट कर।

सुभृतम् सुष्ठु भृतम् (भृ + क्त)—अच्छी तरह भरा हुआ।

अच्छसुरया—अच्छा या सुरा तया (कर्मधा॰) स्वच्छ मदिरा से।

विन्यस्य—वि + नि + $\sqrt{}$अस (फेंकना) + ल्यप्—रख कर।

विट.—[विदूषकस्य चषकमर्पयति] एतत् नवमालिकामुखसर्गसविशेषवासितरस शेखरकादन्येन केनाप्यन्येनानास्वादितपूर्वं, तत् पिबैतत्। किं ते अनोऽप्यपर सम्मानं करिष्यामि ? एद णोमालिआमुहसग्गसविसेसवासिअरस सेहरआअण्णेण केणवि अणासादिदपुरुव्व, ता पिबेहि एद। किं दे अवर सम्माण करिस ?

विदूषक —[सवैलक्ष्यस्मितं कृत्वा] शेखरक ! ब्राह्मणः खल्वहम्। सेहरअ ! बम्हणो क्खु अह।

विट —यदि त्वं ब्राह्मणः, तत् क्व ते ब्रह्मसूत्रम्[1] ? जदि तुम बम्हणो, ता कहिं दे बम्हसुत्तं ?

विदूषक —तत् खलु अनेन चेटेनाऽऽकृष्यमाणं छिन्नम्। तं क्खु इमिणा चेडेण कट्टीअमाणं छिण्णं।

चेटी—[विहस्य] यद्येवं तद् वेदाक्षराण्यपि तावत् कत्यपि उदाहर। जइ एव्व, ता वेदक्खराइं पि दाव कति वि उदाहर।

विदूषक—भवति ! अनेन शीधुगन्धेन पिनद्धानि मे वेदाक्षराणि ? अथवा किं मम भवत्या सम विवादेन ? एष ब्राह्मणः पादयोस्ते पतति। भोदि ! इमिणा सीहुगन्धेण मे विणद्धाइं वेदक्खराइं। अहवा—किं मम भोदीए सम विवादेण ? एसो बम्हणो पादेसु दे पडदि।

चेटी —[विहस्य हस्ताभ्यां निवार्य] मा खल्वेव करोत्वार्यः। शेखरक ! अपसर, अपसर, ब्राह्मणः खल्वेष। [विदूषकस्य पादयो पतति] आर्य ! न त्वया कोपितव्यम्, सम्बन्ध्यनुरूप खल्वेष मया परिहासः कृत। मा क्खु एव्वं करदु अज्जो ! सेहरअ ! ओसर ओसर बम्हणो क्खु एसो। अज्ज ! ण तुए कुविदव्व, सम्बन्धिआनुरूवो क्खु एसो परिहासो किदो। सेहरअ ! तुमपि इमं पसादहि।

नवमालिकामुख०—नवमालिकाया मुखस्य सगर्गेण सविशेष वासित रस

1. यज्ञोपवीत।

विट —[प्याला विदूषक को देता है] नवमालिका के मुख के सम्पर्क से विशेष रूप से सुगन्धित रस वाली उस (मदिरा) को जिसे शेखरक के अतिरिक्त आज तक किसी दूसरे ने नहीं चखा, तुम पी लो। इस से अधिक और तुम्हारा सम्मान क्या करूँ ?

विदूषक—[आश्चर्य पूर्वक मुस्कराता हुआ] अरे शेखरक ! मैं तो ब्राह्मण हूँ।

विट —यदि तुम ब्राह्मण हो तो तुम्हारा यज्ञोपवीत कहाँ है ?

विदूषक —वह तो इस चेट (नौकर) ने खींचते हुए तोड़ दिया है।

चेटी —[हस कर] यदि ऐसा है तो कुछ वेद मन्त्र ही बोल दो।

विदूषक —देवी जी ! इस मदिरा की गन्ध से मेरे वेदों के अक्षर (गले में ही) रुक गए हैं। अथवा तुम्हारे साथ वाद विवाद से क्या लाभ ? यह ब्राह्मण तुम्हारे पाओं पड़ता है।

चेटी —[हँस कर, हाथों से रोक कर] (आप) आर्य ऐसा न करें। शेखरक ! हटो, हटो, यह ब्राह्मण है। [विदूषक के चरणों में गिरती] आर्य ! आप को क्रोध नहीं करना चाहिए। मैं ने आप से सम्बन्धी मैं साथ किए जाने योग्य ही उपहास किया है।

यस्य तत् (बहुव्री०) —नवमालिका के मुख के सम्पर्क से विशेष रूप से सुगन्धित किया गया है रस जिस का, वह (मधु)।

अनास्वादितपूर्वम्—न आस्वादित पूर्व,—पहिले न चखा गया।

अतोऽप्यपरम् —अत + अपि + अपरम्—इस से भी अधिक।

आकृष्यमाणम् —आ + √कृष् + कर्मवाच्य + शानच्—खींचा जाता हुआ।

कत्यपि-कति + अपि - कुछ ही। उदाहर-उत् + आ + √हृ + लोट्—कहो।

अनेन शीधुगन्धेन वेदाक्षराणि—विदूषक वेद मन्त्रों से पूर्णतया अनभिज्ञ है। वह शराब की गन्ध का बहाना बना कर पिण्ड छुड़ाना चाहता है।

शीधुगन्धेन —शीधुन. गन्धेन (ष० तत्पु०)—शराब की गन्ध से।

पिनद्धानि —अपि + √नह् + क्त—रुक गए हैं, बंध गए हैं। 'अपि' उपसर्ग के 'अ' का लोप हो गया है।

निवार्य—नि + √वृ + णिच् + ल्यप्—रोक कर।

अपराद्धम् - अप + √राध + क्त—अपराध किया है।

विट —अहमप्येनं प्रसादयामि। [पादयोर्निपत्य] मर्षयतु[1] मर्षयत्वार्यं, यद् मया मदपरवशेनापराद्धम्, येनाहं नवमालिकया सह आपानकं[2] गमिष्यामि। अहं पि णं पसादेमि। मरिसेदु मरिसेदु अज्जो जं मए मदपरब्बसेण अवरद्धं जेण अहं णोमालिआए सह आबाणअं गमिस्सं।

विदूषक —मर्षितं मया गच्छतं युवाम्। अहमपि प्रियवयस्य पक्षे। मरिसिदं मए, गच्छ तुम्हे अहंपि पिअवअस्स पक्खामि।

[निष्क्रान्तो विटश्चेट्या सह चेटश्च।]

विदूषक —अतिक्रान्तः ब्राह्मणस्याऽकालमृत्युः। तद्यावदहमपि मत्तपालसङ्गदूषित इह दीर्घिकायां[3] स्नास्यामि। [तथा करोति। नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] एष प्रियवयस्योऽपि रुक्मिणीमिव हरिर्मलयवतीमवलम्ब्य इत एवागच्छति। तद्यावत् पार्श्ववर्ती भवामि। अदिक्कन्तो बह्मणस्स अकालमिच्चू। ता जाव अहंपि मत्तपालअसङ्गदूसिदो इध दिग्घिआए ण्हाइस्सं। एसो पिअवअस्सो वि रुक्किणी विअ हरी मलअवदी अवलम्बिअ इदो ज्जेव्व आअच्छदि ता जाव पासपरिवत्ती।

[ततः प्रविशति गृहीतवरनेपथ्यो नायको मलयवती विभवतश्च परिवारः।]

नायक—[मलयवतीमवलोक्य सहर्षं]

> दृष्टा दृष्टिमधो[4] ददाति, कुरुते नाऽऽलापमाभाषिता,
>
> शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति, बलादालिङ्गिता[5] वेपते[6]।

मर्षितम् — √मृष + क्त—सहा गया क्षमा किया गया।

अतिक्रान्त —अति + √क्रम् + क्त—टल गई।

अकालमृत्यु - अभी अभी आई बला विदूषक के लिए मानो अकाल मृत्यु के समान थी।

मत्तपालसङ्गदूषित —मत्तपालस्य सङ्गेन दूषितः—शराबियों के सरदार की संगति से दूषित।

रुक्मिणीमिव हरिः —सौभाग्यशाली दम्पती की उपमा कई बार श्री कृष्ण तथा उन की पत्नी रुक्मिणी से दी जाती है।

अवलम्ब्य—अव + √लम्ब + ल्यप्—सहारा ले कर।

पार्श्ववर्ती—पार्श्वे वर्तते इति (उपपद तत्पु०)—पास ठहरने वाला।

1 क्षमा करो 2 मधुशाला को 3 बावड़ी में 4 अधः—नीचे 5 बलात्—बल पूर्वक 6 कांपती है।

विट – मैं भी क्षमा मनाता हूँ। [चरणों पर गिर कर] जो मैं ने मद के वश हो कर अपराध किया है, आर्य उस के लिए क्षमा करें ताकि मैं नवमालिका के साथ मधुशाला (मदिरा पान का स्थान) को जाऊँ।

विदूषक—मैं ने क्षमा कर दिया। तुम दोनों जाओ। मैं भी प्रिय मित्र को देखता हूँ।

[चेट के साथ विट तथा चेट चले जाते हैं]

विदूषक—ब्राह्मण की अकाल मृत्यु टल गई। मैं भी इस मतवाले की संगति से दूषित हुआ इस बावडी में स्नान करता हूँ। [वैसा ही करता है। नेपथ्य की ओर देख कर] रुक्मिणी का सहारा लिए हुए श्री कृष्ण की तरह यह प्रिय मित्र भी मलयवती का सहारा ले कर इधर ही चले आ रहे हैं। तो मैं भी साथ हो लेता हूँ।

[तब वर-वस्त्रों को पहने नायक तथा मलयवती और मलधज के साथ परिजन प्रवेश करते हैं]

नायक —[मलयवती को देख कर हर्ष पूर्वक]—

(मेरे) देखने पर दृष्टि नीचे कर लेती है। (मेरे) बात करने पर, उत्तर नहीं देती। शय्या पर मुंह फेर कर बैठती है। बल-पूर्वक आलिङ्गन करने पर काँपने लगती है।

गृहीतवरनेपथ्यः—गृहीत वरस्य नेपथ्य येन स (बहुव्री०)—पहने गए हैं वर के वस्त्र जिस से।

अन्वय—अद्य नवोढा प्रिया वामतया एव मे सुतरां प्रीत्यै याता। (तद्वामतां वर्णयति) दृष्टा अध दृष्टिम् ददाति आभाषिता न आलापम् कुरुते शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति, बलात् आलिंगिता वेपते। वासभवनात् सखीषु निर्यान्तीषु निर्गन्तुम् एव ईहते ॥ ४ ॥

आभाषिता—आ + $\sqrt{}$भाष + क्त—कही गई, सम्बोधित की गई।

परिवृत्य—परि + $\sqrt{}$वृत् + ल्यप्—घूम कर, मुँह फेर कर।

निर्य्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते,
जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरा प्रीत्यै[1] नवोढा प्रिया ॥४॥
[मलयवतीमवलोक्यन्] प्रिय मलयवति !
हुङ्कार ददता मया प्रतिवचो[2] यन्मौनमासेवित,
यद्दावानलदीप्तिभिस्तनुरियं चन्द्रातपैस्तापिता ।
ध्यातं यत् सुबहून्यनन्यमनसा[3][4] नक्तन्दिनानि प्रिये !
तस्यैतत् तपस॰ फलं मुखमिद पश्यामि यत्तेऽधुना ॥ ५ ॥

निर्यान्तीषु—निर्+√या+शतृ+स्त्री०+सप्त० बहुवचन—बाहर जाने लगने पर ।

वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते—वासभवनात्+निर्गन्तुम् (निर्+√गम्+तुमुन्)+एव+ईहते—वास भवन से बाहर जाना ही चाहती है ।

नवोढ़ा—नव यथा स्यात् तथा ऊढ़ा (√वह्+क्त—ब्याही हुई)—नव-विवाहिता ।

सुतराम्—' सु ' के साथ ' तराम् ' लगने से तुलनावाचक क्रिया विशेषण बन गया है । अर्थ है—' अत्यधिक ' ।

अन्वय.—हुकार प्रतिवच ददता मया यत् मौनमासेवितम्, यत् दावानलदीप्तिभिः चन्द्रातपैः इय तनु तापिता । अनन्यमनसा सुबहूनि नक्तन्दिनानि यत् ध्यातम्, प्रिये ! एतत् तस्य तपस फल, यत् अधुना ते इद मुख पश्यामि ॥ ५ ॥

ददता—√दा+शतृ+तृ० एक वचन—देते हुए से ।

आसेवितम्—आ+√सेव्+क्त—सेवन किया गया ।

दावानलदीप्तिभि·—दावस्य (वनस्य) य अनलः तस्य दीप्तिभि दीप्ति येषां ते—जगल की अग्नि की तरह तेज है जिन का, ऐसी (चन्द्रातपं = चाँदनियों) से ।

1 प्रसन्नता के लिये 2. उत्तर 3 सुबहूनि=बहुत अधिक 4 अनन्यमनसा=एकाग्रचित से

सखियों के वास भवन से बाहर जाने पर (स्वयं भी) बाहर जाने की ही इच्छा करती है। (किन्तु) आज (यह) नव विवाहिता प्रिया उल्टा आचरण करने पर भी मुझे और भी आनन्द दे रही है।

[मलयवती को देखते हुए] प्रिय मलयवती !

हूँ हूँ करके उत्तर देते हुए जो मैं ने मौन का सेवन किया वन की अग्नि सा तेज धारण करने वाली चाँदनियों से जो मैं ने यह शरीर तपाया बहुत से दिनों तथा रातों जो (मैं ने) अनन्य मन से (तुम्हारा) ध्यान किया यह उस तपस्या का (ही) फल है जो अब मैं तुम्हारा यह मुख देख रहा हूँ।

तनु —यह शब्द स्त्री० है इसी के पर्यायवाची शब्द काय तथा शरीरम् क्रमश पु० तथा नपु० हैं

तापिता —√तप + णिच + क्त—तपाया गया ।

ध्यानम् √ध्यै + क्त—ध्यान किया गया।

तापिता०—विरह में व्यक्ति को चाँदनी रात भी इस तरह पीड़ित करती है मानो अग्नि की ज्वालाएं हों मुकाबले के लिए देखिए कालिदास की अभिज्ञान० में उक्ति— विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः ।

नक्तन्दिनानि —नक्तं च दिनं च इति तानि रात दिन।

हुङ्कार ददता०—इस श्लोक में नायक उस साधना एवं तपस्या की ओर संकेत करता है जो उस ने विरहावस्था में की थी तथा जिस के फल-स्वरूप मानो वह मलयवती को प्राप्त करने में सफल हुआ है नायक कहता है कि जब मुझे कोई बात कहता तो मैं मन के क्षुब्ध होने के कारण केवल हूं हूँ का उत्तर दे कर ही रह जाता। चाँदनी रात मुझे ऐसे लगतीं मानो आग की ज्वालाएं हों। रात दिन केवल तुम (मलयवती) ही मेरे मन में बसी रहती थी। यहाँ पर मौन धारण करने चाँदनी रातों की पीडा सहने तथा प्रिया का निरन्तर ध्यान करने से वाचिक कायिक तथा मानसिक —तीन प्रकार की तपस्या की ओर संकेत प्रतीत होता है।

नायिका —[अपवार्य] हञ्जे चतुरिके ! न केवलं दर्शनीय, प्रियमपि भणितु जानाति । हञ्जे चदुरिए ! ण केवलं दसणीओ पिअं पि भणिदु जाणादि ।

चेटी —[विहस्य] अयि प्रतिपक्षवादिनी ! सत्यमेवैतत् । किमत्र प्रियवचनम् ? अयि पडिपक्खवादिणि ! सच्चं ज्जेव्व एदं, किं एत्थ पिअवअणं ?

नायक —चतुरिके ! आदेशय मार्गं कुसुमाकरोद्यानस्य ।

चेटी—एतु एतु भर्ता । एदु एदु भट्टा ।

नायक —[परिक्रम्य नायिकां निर्दिश्य] स्वैरं[1] स्वैरमागच्छतु भवती ।

खेदाय[2] स्तनभार एव किमु ते मध्यस्य[3] हारोऽपरः ?
श्राम्यत्यूरुयुग[4] नितम्बभरतः, काञ्च्याऽनया[5] किं पुनः ?
शक्तिः पादयुगस्य नोरुयुगलं वोढुं कुतो नूपुरौ ?
स्वाङ्गैरेव विभूषिताऽसि[6], वहसि क्लेशाय किं मण्डनम्[7] ? ॥६॥

चेटी—एतत् खलु तत् कुसुमाकरोद्यानं, तत् प्रविशतु भर्ता । एदं क्खु तं कुसुमाअरुज्जाणं ता पविसदु भट्टा ।

[सर्वे प्रविशन्ति]

दर्शनीयः—√दृश + ण्यत्—देखने योग्य सुन्दर ।
भणितुम—√भण् + तुमुन् ।
प्रतिपक्षवादिनी—प्रतिपक्षं वदति इति—(उपपद तत्पु०)—प्रतिकूलता मे बोलने वाली उलटी बात कहने वाली ।

अन्वय —स्तनभार एव ते मध्यस्य खेदाय, अपरः हारः किमु ? नितम्बभरतः ऊरुयुगं श्राम्यति पुनः अनया काञ्च्या किम् ? पादयुगस्य ऊरुयुगलं वोढुं न (एव) शक्तिः, नूपुरौ कुतः ? स्वाङ्गैः एव विभूषिता असि, क्लेशाय मण्डनम् किम् वहसि ? ॥ ६ ॥

ऊरुयुगम्—ऊर्वोः युगम् (ष० तत्पु०)—जघाओ का जोडा, दो जाघें ।

---

1 शनै, धीरे 2 खेद के लिए, थकाने के लिए। 3 मध्य भाग के, कमर के 4 श्राम्यति—थकती है 5 तागडी से 6 अलकृत 7 गहने को।

नायिका—[एक ओर] अरी चतुरिका ! (यह) केवल सुन्दर ही नहीं है, मीठा बोलना भी जानते हैं ।

चेटी—[हँस कर] उलटी बात कहने वाली (राजकुमारी जी) ! यह तो सत्य ही है । इस में मीठा बोलने की कौन सी बात है ?

नायक—अरी चतुरिका ! कुसुमाकर उद्यान का मार्ग बताओ ।

चेटी—आइए, आइए स्वामी जी !

नायक—[घूम कर, नायिका की ओर संकेत कर के] आप धीरे धीरे आएँ ।

स्तनों का बोझ ही कमर को थकाने के लिए (काफी) है, फिर यह दूसरा हार किस लिए? नितम्बों के भार से ही दोनों जाँघें थकी जा रही हैं, फिर (कमर में बन्धी हुई) इस तागड़ी का क्या काम ? इन दोनों चरणों में तो दो जङ्घाओं (के बोझ) को उठाने की भी शक्ति नहीं है (फिर यह) पायल (पायज़ेब) कैसी ? तुम तो अपने अङ्गों से ही अलङ्कृत हो रही हो, (अपने आप को) कष्ट देने के लिए गहनों को क्यों पहनती हो ?

चेटी—यह कुसुमाकर उद्यान है, स्वामी प्रवेश करें ।

[सब प्रवेश करते हैं]

नितम्बभरत—नितम्बयो भर, तस्मात्—नितम्बों के भार से ।

पादयुगस्य—पादयो युगम्, तस्य—पाओं के जोड़े की दोनों चरणों की ।

बोढुम्—√वह्+तुमुन्—उठाने के लिए ।

खेदाय मण्डनम्—नायक के कहने का अभिप्राय यह है कि तुम स्वभावतया बहुत सुन्दर हो, अतः गहने तुम्हारे लिए केवल बोझ ही बने हुए हैं ।

नायकः—[विलोक्य] अहो नु कुसुमाकरोद्यानस्य श्रीः[1] ! इह हि ?

निष्यन्दश्चन्दनानां[2] शिशिरयति लतामण्डपे कुट्टिमान्ता-
नाराद्[3] धारागृहाणां ध्वनिमनु तनुते ताण्डवं[4] नीलकण्ठः[5] ।
यन्त्रोन्मुक्तश्च वेगात् चलति विटपिनां[6] पूरयन्नालवाला[7]-
नापातोत्पीड़हेला[8]हृतकुसुमरजः पिञ्जरो[9]ऽयं जलौघः ॥ ७ ॥

अपि च—

अमी गीतारम्भैर्मुखरितलतामण्डपभुवः
परागैः पुष्पाणां प्रकटपटवासव्यतिकराः ।

अन्वय —चन्दनानां निष्यन्दः लतामण्डपे कुट्टिमान्तान् शिशिरयति, आरात् धारागृहाणाम् ध्वनिम् अनु नीलकण्ठः ताण्डवम् तनुते । यन्त्रोन्मुक्त आपातोत्पीडहेलाहृतकुसुमरजः पिञ्जरः विटपिनाम् आलवालान् पूरयन् अयम् जलौघ वेगात् चलति ॥ ७ ॥

शिशिरयति—'शिशिर' से नाम धातु—शीतल बनाता है ।

कुट्टिमान्तान्—कुट्टिमानाम् अन्ताः तान् (ष० तत्पु०)—फर्शों के किनारों को ।

ध्वनिम् अनु—अनु के योग में द्वितीया का प्रयोग होता है—ध्वनि के पीछे ।

तनुते ताण्डव नीलकण्ठः—मोर नाच करता है । जल-प्रपातों तथा फव्वारों के स्वर से मोर को मेघों के गर्जन का भ्रम होता है अतः उस स्वर के साथ वह नाचने लगा है ।

यन्त्रोन्मुक्तः—यन्त्रेभ्य उन्मुक्त (उत्+√मुच्+क्त), प० तत्पु०—(जल-) यन्त्रों से निकला हुआ ।

आपात०—आपाते यः उत्पीड (चलनम्) तेन हेलया (सुगमतया) हृत यत् कुसुमानां रजः तेन पिञ्जर —गिर कर बहने से अनायास ही ली हुई फूलों की धूलि से पीला (बना हुआ यह जल-समूह) ।

जलौघः—जलस्य ओघः (ष० तत्पु०)—जल का समूह ।

---

1. शोभा 2. निष्यन्द —रस 3. आरात्—निकट 4. ताण्डव (नृत्य) को 5. मोर 6. वृक्षों का 7 आलवालान् —क्यारियों को 8. हेला—सुगमता 9. पिञ्जरः—पीला । 10 धूलियों से 11. पटवास—वस्त्रों में लगाने की सुगन्धि 12. व्यतिकर —सम्पर्क ।

नायक —[देख कर] ग्रहा ! कुसुमाकर उद्यान की कितनी बडी शोभा है ! यहाँ पर चन्दन के वृक्षो का (बहता हुग्रा) रग लता मण्डप में फर्शों के किनारो को शीतल बना रहा है। समीप ही जल प्रपात गृहो की ध्वनि के पीछे (कदाचित् मेघ ध्वनि समझ कर) मोर नाच रहा है। जल यन्त्रो (ग्रर्थात्, फव्वारों) से निकला हुग्रा तथा गिर कर बहने से ग्रनायास ही ली हुई फूलो की धूलि से पीला सा बना हुग्रा यह जल का समूह, वृक्षो की क्यारियो (Basins) को भरता हुग्रा तेजी से बह रहा है।

ग्रौर भी,

ये भवरे, ग्रारम्भ किए गए गीतो से (शा० गीतो के ग्रारम्भो से) लता-कुञ्जो की भूमियो को शब्दायमान करते हुए फूलो की धूलि से (लिपटे होने के कारण) ग्रङ्गराज (शा० वस्त्रो में लगी हुई सुगन्धि) से युक्त प्रकट होते हुए, सगिनियो (ग्रर्थात् भ्रमरियो) के साथ पर्याप्त मात्रा

ग्रन्वय ग्रमी मधुपा गीतारम्भै मुखरितलतामण्डपभुव. पुष्पाणां परागै प्रकटपटवासव्यतिकरा सहचरीभि सह पर्याप्त मधुरस पिबन्त समन्तात् पानोत्सवम् इव ग्रनुभवन्ति ॥ ८ ॥

गीतारम्भै —गीतानाम् ग्रारम्भै (ष० तत्पु०)—गीतो के ग्रारम्भों से ग्रर्थात् ग्रारम्भ किए हुए गीतो से।

मुखरितलतामण्डपभुव —मुखरिता लतामण्डपाना भुव यै, ते (बहुव्री०)—शब्दायमान की गई है लताकुञ्जो की भूमिया जिन से वे (भवरे)।

मुखरित—मुखर शब्द से नाम धातु रूप का क्तान्त—शब्दायमान।

प्रकटपटवासव्यतिकर —प्रकटः पटवासस्य व्यतिकर येषु ते (बहुव्री०)—स्पष्ट हो रहा है ग्रङ्गराज (कुंकम चूर्ण) का सम्पर्क जिन में, ग्रर्थात् जो स्पष्ट ही कुंकम चूर्ण से युक्त है।

पिबन्त पर्य्याप्त[1] सह सहचरीभिर्मधुरम

समन्तादापानोत्सवमनुभवन्तीव मधुपा ॥ ८ ॥

विदूषक —[उपसृत्य[3]] जयतु जयतु भवान् । स्वस्ति भवत्य । जदु जदु भव । सोत्थि भोदीए ।

नायक —वयस्य ! चिराद् दृष्टोऽसि ।

विदूषक — भो वयस्य ! लघु[4] एवाऽऽगतोऽस्मि । किं पुनर्विवाहमहोत्सव मिलितसिद्धविद्याधराणामापानदर्शनकौतूहलेन परिभ्रमन्नेतावतीं वेला[5] स्थितोऽस्मि । तत् त्वमपि तावत् प्रक्षस्व । भो वअस्स ! लहुं ज्जेव्व आअदोम्हि । किं उण विआहमहूसवमिलिदसिद्धविज्जाहराण आपाणदंस णकोदूहलेण परिब्भमन्तो एत्तिअं वेलं चिट्ठिदोम्हि । ता तुमं पि दव पक्खा ।

नायक —एव यथाह भवान् । [सम तादवलोक्य] वयस्य ! पश्य पश्य ।

दिग्धाङ्गा हरिचन्दनेन, दधत सन्तानकाना स्रजो[6],

माणिक्याऽऽभरणप्रभाव्यतिकरैश्चित्रीकृताऽच्छांशुका ।

आपानो सवम् —आपानस्य उत्सवम् (प० तत्पु०) — म दरा पान के उत्सव को ।

स्वस्ति भवत्य—आप का कल्याण हो । स्वस्ति के योग में चौथी विभक्ति का प्रयोग होता है ।

विवाहमहोत्सवमिलितसिद्धविद्याधराणाम —विवाहस्य महोत्सवे मिलिता ये सिद्धाश्च विद्याधराश्च तेषाम्—विवाह के महोत्सव पर एकत्रित हुए सिद्धों तथा विद्याधरों के ।

आपानदर्शनकौतूहलेन—आपानस्य यत् दर्शन तेन कौतूहलन— सुरा पान का देखने की उत्सुकता से ।

अन्वय —हरिचन्दनेन दिग्धाङ्गा सन्तानकानां स्रज दधत माणिक्याऽऽभ

---

1 काफी 2 समन्तात्—चारों ओर 3 पास जाकर 4 शीघ्र 5 दूर को 6 मालाओं का ।

में मधुरस का पान करते हुए, सब ओर से मदिरा पानके से उत्सव को मना रहे हैं।

विदूषक—[पास आ कर] जय हो जय हो श्रीमान् की ! आप (मलयवती) का कल्याण हो।

नायक—मित्र ! बहुत देर के बाद दीख पडे हो।

विदूषक—अरे मित्र ! मैं शीघ्र आ गया होता किन्तु विवाह के महोत्सव पर इकट्ठे हुए सिद्धों तथा विद्याधरों के सुरा-पान को देखने की उत्सुकता से घूमता हुआ इतनी देर (वहीं) ठहरा रहा। तो आप भी उसे देखें।

नायक—जैसा आप कहें, ऐसा (ही करते हैं)। [चारों ओर देखकर] मित्र ! देखो, देखो—

हरिचन्दन से लिपे हुए अङ्गों वाले सन्तानक वृक्षों (के फूलों) की मालाओं को धारण करते हुए मणियों के गहनों की कान्ति के सम्पर्क से रंग बिरंग बने हुए स्वच्छ रेशमी वस्त्रों वाले,

—

रणप्रभाव्यतिकरैं चित्रीकृताच्छांशुका अमी विद्याधरा सिद्धजनैः सार्द्धं मिश्रीभूय चन्दनतरुच्छायासु दयितापीतावशिष्टानि मधूनि पिबन्ति ॥ ६ ॥

दिग्धाङ्गा —दिग्धानि अङ्गानि येषां ते (बहुव्री०)—लिपे हुए हैं अङ्ग जिन के, वे (विद्याधर)।

दिग्धानि—दिह् (लेपना)+क्त—लिपे हुए।

हरिचन्दनेन—हरिचन्दन से। हरिचन्दन पीले रंग के चन्दन की एक विशेष किस्म होती है। हरिचन्दन इन्द्र के वन में उपलब्ध होने वाले पाँच वृक्षों में से एक का नाम भी है। सन्तान, कल्प, मन्दार तथा पारिजात अन्य चार वृक्षों के नाम हैं।

वहत —√धा+शतृ—धारण करते हुए।

मणिभूषा०—मणिभूषणानां यानि आभरणानि तेषां या प्रभा तासां व्यतिकरैं (ष० तत्पु०)—मणियों के गहनों की कान्ति के सम्पर्क से।

चित्रीकृताच्छांशुका —चित्रीकृतानि अच्छानि अंशुकानि येषाम् ते (बहुव्री०)— रंग बिरंग बन गए हैं स्वच्छ रेशमी वस्त्र जिन के।

साद्धं सिद्धजनैर्मधूनि दयितापीतावशिष्टान्यमी
मिश्रीभूय[1] पिबन्ति चन्दनतरुच्छायासु विद्याधरा ॥ ९ ॥

तदेहि वयमपि तां तमालवीथिं गच्छाम । [सर्वे परिक्रामन्ति]

विदूषक —एषा खलु तमालवीथिका[2]। एतां सञ्चरन्ती तावत् परिखेदितेव भवती दृश्यते। तदिहैव स्फटिकमणिशिलातल उपविश्य विश्राम्याम।
एसा क्खु तमालवीहिआ। एदं सञ्चरन्ती दाव परिखेदिदा विअ भोदी दीसई। ता इध ज्जेव फटिअमणिसिलाअले उवविसिअ वीसमम्ह।

नायक —वयस्य ! सम्यगुपलक्षितम्—

एतन्मुखं प्रियायाः शशिनं जित्वा कपोलयोः कान्त्या[3]।
तापानुरक्तमधुना कमलं ध्रुवमीहते[4] जेतुम् ॥ १० ॥

[नायिका हस्ते गृहीत्वा] प्रिये ! इहोपविशाम।

नायिका—यदार्यपुत्र आज्ञापयति। जं अज्जउत्तो आणवेदि।

[सर्वे उपविशन्ति।]

नायकः—[नायिकाया मुखमुन्नमय्य पश्यन्] प्रिये ! वृथैव[5] त्वमस्माभि कुसुमाकरोद्यानदर्शनकुतूहलिभि परिखेदिताऽसि। कुत ?—

दयितापीतावशिष्टानि—दयिताभि पीतात् अवशिष्टानि—प्रियाओं के पीने से बची हुई।

परिखेदिता—परि + √खिद् + णिच् + क्त —थकाई हुई।

अन्वय.—प्रियाया एतत् मुखं कपोलयो कान्त्या शशिनं जित्वा अधुना तापानुरक्तम् कमलं ध्रुवं जेतुम् ईहते ॥ १० ॥

तापानुरक्तम्—तापेन अनुरक्तम् (तृ० तत्पु०)—धूप से लाल।

अनुरक्तम्—अनु + √रञ्ज् + क्त—रङ्गा हुआ, लाल।

एतन्मुख०—नायक के कहने का अभिप्राय यह है कि मलयवती का मुख पहले तो अत्यधिक श्वेत एवं शुभ्र होने के कारण चन्द्रमा को मात कर रहा

---

1 मिल कर 2 तमाल वृक्षों का मार्ग 3 शोभा से 4 इच्छा—चाहता है 5 वृथा—व्यर्थ

ये विद्याधर, सिद्धजनो के साथ मिलकर चन्दन के वृक्षो की छाया में प्रियाम्रो के पीने से बची हुई मदिरा का पान करते है।

तो आओ हम भी उस तमाल वृक्षो वाले मार्ग की ओर चलते है।

[सब चल पड़ते हैं]

विदूषक—यह तमाल वृक्षो का मार्ग है। इस पर चलती हुई श्रीमती (मलयवती) जी थकी हुई दीख पडती है। तो यही स्फटिक मणि के शिला तल पर बैठ कर विश्राम करते है।

नायक—मित्र ! तुमने ठीक ही अनुमान लगाया है—

प्रिया का यह मुख (गोरे) गालो की शोभा से चन्द्रमा को जीत कर अब धूप से लाल हुआ निश्चय ही कमल को जीतना चाहता है।

[नायिका को हाथ से पकड़ कर] प्रिये ! यहाँ बैठते हैं।

नायिका—जैसे आर्य पुत्र की आज्ञा।

[सब बैठ जाते हैं]

नायक—[नायिका का मुख ऊपर उठा कर देखते हुए] प्रिये ! कुसुमाकर उद्यान को देखने की उत्सुकता वाले हमने तुम्हे व्यर्थ ही थकाया है। क्योंकि—

था और अब सूर्य की धूप से लाल हो जाने के कारण सौन्दर्य में, लाल कमल को भी जीतने की चेष्टा कर रहा है।

उन्नमय्य—उत् + √नम् + णिच + ल्यप—उठा कर।

कुसुमाकरोद्यानदर्शनकुतूहलिभि—कुसुमाकरोद्यानस्य दर्शनाय कुतूहलिभि—कुसुमाकर उद्यान के दर्शनो के लिए उत्सुक बने हुए (हम) से।

कुतूहलिभि कुतूहलिन् (कुतूहल + इन् मत्वर्थ) से तृतीया बहुवचन।

परिखेदिता—परि + √खिद् + णिच् + क्त—थकाई गई।

एतत्ते भ्रूलतोल्लासि पाटलाऽधरपल्लवम् ।
मुखं नन्दनमुद्यानमतोऽन्यत्केवलं वनम् ॥ ११ ॥

चेटी— [सस्मित विदूषक निर्दिश्य] श्रुतं त्वया, भर्तृदारिका कथं वर्णितेति? आर्य ! पुनरहं त्वां वर्णयामि । सुद तुए भट्टिदारिश्रा कहं वण्णित्ति ? अज्ज उण अहं तुमं वण्णेमि ।

विदूषक —[सदर्पं] भवति ! जीवितोऽस्मि । तत् करोतु भवती प्रसाद, येनैव मा पुनरपि न भणति, यथा त्वमीदृशः तादृशः कपिलमर्कटाकार इति । भोदि ! जीविदोम्हि । ता करेदु भोदि पसाद, जेण एसो म पुणोवि ण भणादि, जहा—तुम ईरिसो तारिसो कविलमकडाश्रारोत्ति ।

चेटी—आर्य ! त्वं मया विवाहजागरणे निद्रायमाणो निमीलिताक्षः शोभमानो दृष्ट । तत्तथैव तिष्ठ, येन वर्णयामि । अज्ज ! तुम मए विश्राहजाश्ररणे णिद्दाश्रमाणणिमीलिश्रच्छो सोहन्तो दिट्टो । ता तह ज्जेव्व चिट्ठ, जेण वण्णेमि ।

विदूषक —[तथा करोति]

अन्वय — एतत् भ्रूलतोल्लासि पाटलाऽधरपल्लवम् ते मुखम् नन्दनम् उद्यानम् अत अन्यत् केवलम् वनम् ॥ ११ ॥

भ्रूलतोल्लासि—भ्रुवौ एव लते भ्रूलते ताभ्याम् उल्लासि (उत्+लसति इति) —भौंहो रूपी लताओ से चमकने वाला ।

पाटलाऽधरपल्लवम्—पाटलः अधर. एव पल्लव यस्मिन्, तत् (बहुव्री०)—लाल होंठ ही पत्ता है जिस में ऐसा मुख रूपी नन्दन उपवन ।

नन्दनम्—नन्दयति इति नन्दनम्—आनन्द देने वाला । इस का अर्थ स्वर्ग में 'नन्दन' नाम वाला उद्यान भी हो सकता है ।

एतत्ते०—नायक ने मलयवती के मुख को आनन्दित करने वाला उद्यान (अथवा नन्दन उपवन) बताते हुए, शेष सब उद्यानो को जगल के समान

भौंहों रूपी लताओं से सुशोभित लाल अधर रूपी पत्तों वाला यह तुम्हारा मुख नन्दन (अथवा आनन्द देने वाला) उद्यान है इस से भिन्न अन्य केवल वन हैं।

चेटी—[मुस्कराहट से विदूषक की ओर संकेत करके] सुना तुम ने राजकुमारी जी का कैसा वर्णन किया गया है? आर्य! मैं भी तुम्हारा वर्णन करूँगी।

विदूषक—[हर्ष पूर्वक] देवी! मैं (तो) जी गया। अब आप कृपा करें जिस से फिर यह (मेरा मित्र) न कहे कि तुम ऐसे हो वैसे हो भूरे बन्दर से हो।

चेटी—आर्य! मैं ने तुम्हें विवाह के जागरण में आँखों को बन्द किए ऊँघते हुए सुन्दर रूप में देखा है। अब उसी तरह बैठ जाओ ताकि मैं तुम्हारा वर्णन करूँ।

[विदूषक ऐसा करता है]

बताया है। अभिप्राय यह कि मलयवती के मुख के पास होते हुए कुसुमाकर उद्यान में आने का कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी।

वर्णयामि √वर्ण के दो अर्थ होते हैं (१) वर्णन करना तथा (२) रँगना। विदूषक इस का पहला अर्थ समझता है तथा चेटी दूसरा अर्थ में काम उठाती है। वर्णयामि के इस प्रकार श्लेषात्मक होने से विदूषक उपहास का पात्र बन जाता है।

कपिलमर्कटाकार—कपिल: च मर्कट: तस्य आकार इव आकार: यस्य स: (बहुव्री०) बन्दर की तरह आकृति है जिस की।

निद्रायमाण निद्रा से नाम धातु निद्रा क्यङ् (=निद्राय)+शानच् सोते हुए, ऊँघते हुए।

निमीलिताक्ष—निमीलिते अक्षिणी यस्य स: (बहुव्री०)—बन्द हुई हैं दोनों आँखें जिस की। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि बहुव्रीहि समास के उत्तर पद में 'अक्षि' आए, तो उसे अक्ष आदेश होता है।

चेटी—[स्वगतम्] यावदेष निमीलिताक्षस्तिष्ठति तावन्नीलरसानुकारिणा तमालपल्लवरसेन मुखम् अस्य कालीकरिष्यामि । [उत्थाय तमालपल्लवं *निष्पीड्य विदूषकस्य मुखं कालीकरोति । नायको नायिका च विदूषकस्य मुखं पश्यतः*]।
जाव एसो णिमीलिअअच्छो चिट्ठदि दाव णीलरसाणुआरिणा तमालपल्लवरसेण मुहं से कालीकरिस्सं ।

नायकः—वयस्य ! धन्य खल्वसि, योऽस्मासु तिष्ठत्सु भवानेव वर्ण्यते !

नायिका—[नायकस्य मुखं दृष्ट्वा स्मितं करोति] ।

नायकः—[नायिकामुखं दृष्ट्वा]—

स्मितपुष्पोद्गमोऽयं ते दृश्यतेऽधरपल्लवे ।
फलं त्वन्यत्र मुग्धाक्षि ! चक्षुषोर्मम पश्यत ॥१२॥

विदूषकः—भवति ! किं त्वया कृतम् ? भोदि ! किं तुए किदं ?
चेटी—ननु वर्णितोऽसि । णं वण्णिदोसि ।

नीलरसानुकारिणा—नीलस्य रसम् अनुकरोति तेन (उपपद तत्पु०)—नील (पौधे के) रस से मिलते जुलते से ।

कालीकरिष्यामि—अकालं कालं सम्पद्यमानं करिष्यामि—काल + च्वि + कृ + लृट्—काला करूँगी ।

निष्पीड्य—निस् + √पीड + ल्यप्—निचोड कर ।

अन्वयः—हे मुग्धाक्षि ! ते अधरपल्लवे अयम् स्मितपुष्पोद्गमः दृश्यते । फलम् तु पश्यत मम चक्षुषोः अन्यत्र ॥ १२ ॥

स्मितपुष्पोद्गमः—स्मितमेव पुष्पं तस्य उद्गमः—मुस्कराहट रूपी फूल का उदय होना ।

अधरपल्लवे—अधरः एव पल्लवम् तस्मिन् (कर्मधा०)—होठ रूपी पत्ते में ।

मुग्धाक्षि—मुग्धे अक्षिणी यस्याः सा तत्सम्बोधने (बहुव्री०)— हे भोले नेत्रों वाली !

---

1 दीख पड़ता है 2 दूसरा हुआ था।

चेटी—[अपने आप] जब तक यह आँख बन्द किए बैठा है, तब तक नील रस से मिलते जुलते तमाल के पत्ते के रस से इस का मुँह काला कर दूँगी।

[उठ कर, तमाल के पत्ते को निचोड़ कर विदूषक के मुख को काला करता है, नायक और नायिका विदूषक के मुख को देखते हैं]

नायक— मित्र! तुम धन्य हो जो हमारे होते हुए भी तुम्हारा वर्णन किया जा रहा है।

नायिका—[नायक के मुख को देख कर मुस्कराती है]

नायक—[नायिका के मुख को देखकर]

हे भोले नेत्रों वाली! मुस्कराहट रूपी फूल तो तुम्हारे अधर (निचले होंठ) रूपी पत्ते में उग रहा है किन्तु फल तो अन्यत्र—तुम्हें देखते हुए मेरी आँखों में—(उत्पन्न हो रहा) है।

विदूषक—देवी! तुमने क्या किया है।

चेटी—वर्णन किया है। (अथवा रङ्ग दिया है।)

स्मितपुष्प०—यहां मलयवती की उपमा लता से दी गई है तथा उस के होंठ तथा मुस्कराहट को क्रमशः कोपल तथा फूल बताया गया है। फूल के बाद फल लगता है और वह फल है— प्रिया के दर्शनों से पैदा हुआ आनन्द"। वह फल फूल के स्थान पर न हो कर, नायक के हृदय में है, यही आश्चर्य की बात है।

विदूषक —[हस्तेन मुख प्रमृज्य दृष्ट्वा सरोष दण्डकाष्ठमुद्यम्य][1] आ दास्या पुत्रि! राजकुल खल्वेतत्। किं तव करिष्यामि? [नायक निर्दिश्य] भो! युवयो पुरतो[2]ऽहं दास्या पुत्र्या खलीकृतोऽस्मि। तत्किं इह स्थितेन। अन्यतो गमिष्यामि। [निष्क्रामति] आ दासीए धीए! राअउल क्खु एद। किं तव करिस्स? भो! तुम्हाण पुरदो एव्व अह दासीए धीआए खलीकिदो! ता किं मम इध ट्ठिदेण? अण्णदो गमिस्स।

चेटी —कुपितो मे आर्य आत्रेय यावदेन गत्वा प्रसादयिष्यामि। कुविदो मे अज्ज अत्तओ जाव ण गदुअ पसादइस्स।

नायिका—हञ्जे चतुरिके! किं मामेकाकिनी[3]मुज्झित्वा गच्छसि? हञ्जे चदुरिए! किं म एआइणी उज्झिअ गच्छसि?

चेटी—[नायक निर्दिश्य सस्मितम्] एवमेकाकिनी चिर भव। [इति निष्क्रान्ता] एव्व एआइणी चिर होहि।

नायक —[नायिकाया मुख पश्यन्]—

दिनकरकरामृष्ट विभ्रत द्युति[4] परिपाटला[5]
दशनकिरणैं ससर्पद्भि स्फुटीकृतकेसरम्।

प्रमृज्य—प्र + √मृज + ल्यप—पोछ कर।
उद्यम्य—उत् + √यम् + ल्यप—उठा कर।
राजकुलम०—विदूषक का जी तो बहुत चाहा कि मैं चेटी को उसकी शरारत का मजा चखाऊँ किन्तु राजकुल (राजा आदि शासक वर्ग) की उपस्थिति में वह ऐसा कर न सका। अपने रोष का प्रदर्शन करने के लिए उसने वहाँ से चला जाना ही उचित समझा।

---

1 दण्डकाष्ठम्—लम्बी लकड़ी को 2 सम्मुख 3 एकाकिनी—अकेला 4 शोभा को 5 गुलाबी लाल।

अयि मुखमिदं मुग्धे ! सत्यं समं कमलेन ते
मधु मधुकरः किन्त्वेतस्मिन् पिबन्न विभाव्यते ? ॥१३॥

नायिका—[विहस्य मुखमन्यतो नयति ।]

नायक—[तदेव पठति]

चेटी—[पटाक्षेपेण प्रविश्य, उपसृत्य] एष खल्वार्य्यमित्रावसु कार्य्येण केनापि कुमारं प्रेक्षितुमिच्छति । एसो क्खु अज्ज मित्तावसू कज्जेण केणवि कुमारं पेक्खिदुमिच्छदि ।

नायक—प्रिये ! गच्छ त्वमात्मनो गृहम् । अहमपि मित्रावसुं दृष्ट्वा त्वरित[1]मागत एव ।

नायिका—[चेट्या सह निष्क्रान्ता]

[ततः प्रविशति मित्रावसुः]

मित्रावसु—

अनिहत्य त सपत्नं[2] कथमिव जीमूतवाहनस्याऽहम् ।
कथयिष्यामि हृतं तव राज्यं रिपुणेति निर्लज्जः ? ॥१४॥

विभाव्यते—वि + √भू + णिच् + कर्मवाच्य—दिखाई देता है ।

दिनकर०—जीमूतवाहन, नायिका के मुख की कमल से उपमा देता है किन्तु कमल का रस चूसने वाला भंवरा तो सदा ही पास रहता है । यहाँ मुख पर मण्डराता हुआ भंवरा उसे दिखाई नहीं देता । इस प्रकार मुख के भंवरे की ओर संकेत कर के नायक ने अप्रत्यक्ष रूप से नायिका के मुख के लिए स्वयं भंवरा बनने की तीव्र अभिलाषा को व्यक्त किया है ।

पटाक्षेपेण—'परदे को हटा कर' । नाट्यशास्त्र के नियमानुसार जब तक किसी पात्र के प्रवेश की पहले सूचना न दी जाए उसे रंगमञ्च पर प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता (नासूचित पात्रप्रवेशो भवेत्) । किन्तु कई बार शीघ्रता, घबराहट, भय आदि के कारण किसी पात्र विशेष का एकदम एवं असूचित प्रवेश ही स्वाभाविक तथा समुचित प्रतीत होता है । ऐसी दशा

1 त्वरित—शीघ्र 2 शत्रु को ।

से) केसरों का स्पष्ट प्रकट करता हुआ तुम्हारा यह मुख सच मुच कमल जैसा है किन्तु इस में रस का पीना हुआ भवरा दिखाई नहीं देता है ।

नायिका—[हंसकर मुख दूसरी ओर फेर लेती है]

नायक—[उसी को (फिर) पकड़ता है]

चेटी—[पर्दा हटा कर प्रवेश कर के पास आकर] यह आर्य मित्रावसु किसी कार्य वश आप से मिलना चाहते हैं।

नायक—प्रिये ! तुम अपने घर जाओ। मैं भी मित्रावसु से मिलकर शीघ्र ही आता हूँ।

नायिका—[चेटी के साथ चली जाती है]

[तब मित्रावसु प्रवेश करता है]

मित्रावसु जीमूतवाहन के उस शत्रु को मारे बिना मैं निलज्ज कैसे कहूँ कि शत्रु ने तुम्हारे राज्य को छीन लिया है ?

में पटाक्षपण (अथवा अपटीक्षपण अथवा पटीक्षेपण) द्वारा उसे प्रविष्ट करा दिया जाता है।

यहाँ पर एक और बात भी ध्यान देने योग्य है नायक मलयवती के मुख के चुम्बन के लिए लालायित हो रहा है किन्तु नाटक के नियम रंगमञ्च पर चुम्बन की आज्ञा नहीं देते। अत 'पटाक्षेपण' द्वारा चेटी का प्रवेश नायक की मनोरथ पूर्ति के मार्ग में बाधा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी एक ऐसी ही समस्या को इसी तरह सुलझाया गया है।

अन्वय—जीमूतवाहनस्य त सपत्नम् अनिहत्य निलज्ज तव राज्य रिपुणा हृतम् इति अहं कथम् इव कथयिष्यामि ॥ १४ ॥

अनिहत्य—न नि हत्य (नि + $\sqrt{}$हन् + ल्यप्) — न मार कर।

निर्लज्जः निर्गता लज्जा यस्य स (बहुव्री०) — बेशरम।

अनिहत्य तम् — मित्रावसु ने महसूस किया कि मुझे नायक के राज्य छिनने की सूचना देने के लिए यहाँ नहीं आना चाहिए था अपितु बिना जीमूतवाहन के कहे स्वयं ही लड़ कर शत्रु से राज्य लौटा लेना चाहिए था। यही कारण है कि वह सूचना देते समय लज्जा का अनुभव कर रहा है।

अनिवेद्य च न युक्तं गन्तुमिति निवेद्य गच्छामि । कुमार ! मित्रावसु प्रणमति ।

नायक —[मित्रावसुं दृष्ट्वा] मित्रावसो ! इत आस्यताम्[1] ।

मित्रावसु —[निरूप्य उपविशति]

नायक —[निरूप्य] मित्रावसो ! सरब्ध इव लक्ष्यसे ?

मित्रावसु —क खलु मतङ्गहतके सरम्भ[2] ?

नायक —किं कृतं मतङ्गेन ?

मित्रावसु —स्वनाशाय किल युष्मदीय[3] राज्यमाक्रान्तम् ।

नायक —[सहर्षमात्मगतम्] अपि नाम सत्यमेतत् स्यात् ?

मित्रावसु —अतस्तदुच्छित्तये आज्ञा दातुमर्हति कुमार । किं बहुना ?—

अनिवेद्य—न+निवेद्य (नि+$\sqrt{}$वद्+ल्यप्)—न निवेदन कर के ।

सरब्ध —सम्+$\sqrt{}$रभ+क्त—घबराया हुआ ।

क खलु सरम्भ —दुष्ट मतङ्ग के विषय में घबराहट कैसी । मित्रावसु का अभिप्राय है कि वह साधारण सा शत्रु शीघ्र ही नष्ट कर दिया जाएगा ।

किं कृतं मतङ्गेन—यह बात ध्यान देने योग्य है कि मित्रावसु तो मतङ्ग के साथ 'हतक'—गाली के से शब्द—का प्रयोग करता है किन्तु नायक केवल मतङ्ग ही कहता है । यह उस की मानसिक उदारता का द्योतक है ।

आक्रान्तम्—आ+$\sqrt{}$क्रम्+क्त—आक्रमण किया गया ।

अपि नाम— 'अपि नाम' का प्रयोग सम्भावना एवं सन्देह के मिश्रित भाव को व्यक्त करता है ।

अपि नाम०—नायक की मन में ही कही गई यह उक्ति कुछ खटकती सी है किन्तु उस के चरित्र को देखते हुए, उस के स्वभाव के अनुकूल ही प्रतीत

---

1 बैठिए 2 घबराहट 3 आप का ।

और बिना निवेदन किए भी जाना उचित नहीं है अत सूचना दे कर ही जाता हूँ। राजकुमार ! मित्रावसु प्रणाम करता है।

नायक—[मित्रावसु को देख कर] मित्रावसु जी ! इधर बैठिएगा।

मित्रावसु—[देख कर बैठता है]

नायक—[देख कर] मित्रावसु ! क्षुब्ध से दीख पड़ते हो।

मित्रावसु—मुए मतङ्ग के विषय में क्षोभ कैसा ?

नायक—मतङ्ग ने क्या किया है ?

मित्रावसु—अपने ही नाश के लिए आप के राज्य पर आक्रमण कर दिया है।

नायक—[हर्ष पूर्वक अपने आप] कहीं यह सत्य हो जाए, तो ?

मित्रावसु—अत उस के समूल नाश के लिए आप को आज्ञा देनी चाहिए। अधिक क्या कहूँ—

होती है। वह राज्य भार को शुरू से ही एक प्रकार का बन्धन समझता चला आ रहा है। इस प्रकार सहज ही उस बन्धन से मुक्ति पा लेना उसे रुचिकर प्रतीत हुआ है।

उच्छित्तये—उत् + छिद् + ति उच्छित्ति का चतुर्थी एकवचन—विनाश के लिए।

ससर्पद्भिः[1] समन्तात् कृतसकलवियन्मार्गयानैर्विमानैः
कुर्वाणा प्रावृषीव[2] स्थगितरविरुच श्यामता[3] वासरस्य[4] ।
एते[5] याताश्च[6] सद्यस्तव वचनमितः प्राप्य युद्धाय सिद्धा,
सिद्धञ्चोद्वृत्तशत्रुक्षयभयविनमद्राजकं ते स्वराज्यम् ॥१५॥

अथवा, किं बलौघैः —

एकाकिनापि[7] हि मया रभसावकृष्ट-
निस्त्रिंश[8]दीधिति[9]सटा[10]भर[11]भासुरेण[12] ।
आरान्निपत्य[13] हरिणेव मतङ्गजेन्द्र-
माजौ[14] पतङ्गहतक हतमेव विद्धि[15] ॥ १६ ॥

अन्वयः—समन्तात् ससर्पद्भिः कृतसकलवियन्मार्गयानैः विमानैः स्थगितरविरुच वासरस्य प्रावृषि इव श्यामताम् कुर्वाणाः एते सिद्धाः च सद्य तव वचनम् प्राप्य इतः युद्धाय याताः, उद्वृत्तशत्रुक्षय-भय विनमद्राजकम् ते स्वराज्यम् सिद्धम् च ॥ १५ ॥

ससर्पद्भिः —सम्+√सृप+शतृ+तृ० एक वचन-फैलते हुए मण्डराते हुए (विमानों) से ।

कृत०—कृतम् सकलस्य वियन्मार्गस्य (वियत मार्गस्य) यानं यैः, तैः (बहुव्री०) —किया गया है सारे आकाश मार्ग का भ्रमण (=यान) जिन से ।

स्थगितरविरुच —स्थगिता. रवेः रुच यस्मिन् (बहुव्री०) ढक दी गई हैं सूर्य की किरणें जिस में । जैसे वर्षा ऋतु में बादल सूर्य के प्रकाश को ढक दिन को अन्धकारमय बना देते हैं वैसे ही यह विमान सूर्य किरणों को ढक कर, दिन को काला बनादेंगे ।

उद्वृत्तशत्रु०—उद्वृत्त य शत्रु तस्य क्षयात् यत् भय तेन विनमत् राजक यस्मिन् तत् (बहुव्री०)—उद्दण्ड शत्रु के नाश से डरे हुए झुक गए हैं(अन्य)

1. चारों ओर 2 प्रावृषि—वर्षा ऋतु में 3 मलिनता को, कालेपन को 4 दिन के 5 गए हुए 6 अभी अभी तत्काल 7 अकेले से भी 8 निस्त्रिंश—तलवार 9 दीधिति—किरण 10 सटा—शेर के बाल 11 भर—समूह 12 भासुरेण—दे-दीप्यमान से 13 आरात्—निकट से 14. आजौ—युद्ध में 15 समझो।

चारों ओर मण्डराते हुए तथा सारे आकाश मार्ग का भ्रमण करने वाले विमानों से सूर्य की किरणों को ढक कर दिन को वर्षा ऋतु की तरह अन्धकारमय (ना० काला) बनाते हुए ये सिद्ध लोग आप की आज्ञा पा कर युद्ध के लिए तत्काल (यहाँ ही) गए यहाँ ही आप को अपना राज्य मिला (ना० सिद्ध हुआ) जिस में उद्दण्ड शत्रु के नाश से भयभीत हुए (अन्य) राजागण नम्र हो जाएंगे

अथवा सेनाओं के समूह से क्या ?

वेग से खींची हुई तलवार की शर के बालों के समूह की तरह चमकती हुई किरणों के समूह से देदीप्यमान मुझ अकेले से ही युद्ध में दुष्ट मतङ्ग को पास से झपट कर यह मारा हुआ समझो जैसे वेग से खींची हुई तलवार की किरणों की तरह बालों के समूह से देदीप्यमान अकेले शेर से पास से झपट कर हाथी मारा जाता है।

राजा गण जिस में।

उद्वृत्त—उत्+√वृत्+क्त–उद्दण्ड।

बलौघ—बलानाम् ओघ (ष० तत्पु०)–सेनाओं के समूह से।

विनमत—वि+√नम्+शतृ—झुकता हुआ।

अन्वय—एकाकिना अपि रभसावकृष्टनिस्त्रिंशदीधितिसटाभरभासुरेण मया आजौ आरात् निपत्य हरिणा मतङ्गजेन्द्र इव मतङ्गहतकम् हतम् एव विद्धि ॥ १६ ॥

रभसाव०—रभसेन अवकृष्ट य निस्त्रिंश त य दीधितय सटा इव तासां भरेण भासुर तेन—वेग से खींची हुई तलवार की केसरों (शेर के बालों) जैसी किरणों के समूह से देदीप्यमान।

रभस०—यह विशेषण मया और हरिणा दोनों के साथ लगता है।

अवकृष्ट—अव+√कृष्+क्त—खींची हुई।

निपत्य—नि+√पत्+ल्यप—झपट कर।

मतङ्गजेन्द्रम्—मतङ्गजानाम् इन्द्र (ष० तत्पु०) तम्—गजराज को (मस्त हाथियों के राजा को)। विद्धि—√विद्+लोट—समझो।

नायक —[कर्णौ पिधाय आत्मगतम्] अहह ! दारुणमभिहितम्[1] । अथवा एव तावत् । [प्रकाशम्] मित्रावसो ! किमिदतत् ? बहुतरमतोऽपि बहुशालिनि त्वयि सम्भाव्यते ।

> स्वशरीरमपि परार्थे[2] य खलु दद्यादयाचित[3] कृपया
>
> राज्यस्य कृते स कथ प्राणिवधक्रौर्यमनुमनुते ? ॥१७॥

अपि च क्लेशान् विहाय मम शत्रुबुद्धिरेव नास्त्यत्र । यदि त्वमस्य प्रिय कर्तुमीहसे, तदनुकम्प्यतामसौ राज्यस्य कृते क्लेशदासीकृतस्तपस्वी[4] ।

मित्रावसु —[सामर्षम्][5] कथ नानुकम्पनीय[6] ईदृशोऽस्माकमुपकारी कृपणश्च[7] ?

नायक —[स्वगतम्] अनिवार्यसरम्भ कोपाक्षिप्तचेता न तावदय शक्यते निवर्तयितुम् । तदेव तावत् । [प्रकाशम्] मित्रावसो उत्तिष्ठ । अभ्यन्तरमेव प्रविशाव । तत्रैव[8] तावत् त्वां बोधयिष्यामि । सम्प्रति परिणतमह[9][10] तथाहि—

पिधाय—अपि + √धा + ल्यप—बन्द करके (यहा 'अपि' के 'अ' का लोप हो गया है) ।
अभिहितम्—अभि + √धा + क्त—कहा गया ।
बहुशालिनि—बाहुभ्या शालते (शोभते) य, तस्मिन् ।
सम्भाव्यते—सम् + √भू + णिच + कर्म वाच्य—सम्भावना की जाती है ।
अन्वय —अयाचित य परार्थे स्वशरीरम् अपि कृपया दद्यात् स राज्यस्य कृते कथम् प्राणिवधक्रौर्यमनुमनुते ? ॥ १७ ॥
प्राणिवधक्रौर्यम्—प्राणिना वध एव क्रौर्यम्—प्राणियो के वध रूपी कठोरता को।
क्रौर्यम्—क्रूरस्य भाव इति—कठोरता ।
स्वशरीरम्०—परोपकार के लिए प्राणो तक को बलिदान करने की नायक की अभिलाषा का ही इस में वर्णन किया गया है । यही नायक के चरित्र की प्रमुख विशेषता है तथा अन्त में उस के आत्म बलिदान के लिए पृष्ठ भूमि तैयार करने के लिए लेखक ने इसी उदार भावना का बार बार परिचय दिया है ।

---

1 दारुणम्—कठोर 2 परोपकार में 3 दद्यात्—दे दे 4 तपस्वी—बेचारा 5 क्रोध सहित 6 अनुकम्पनीय—दया करने योग्य 7 दीन 8 वहा 9 परिणतम्—ढल गया 10 अह—दिन

नायक—[दोनों कान बन्द करके अपने आप] हा ! हा !! हा !!! (कितनी) कठोर बात कही है अथवा इस ये (कह)। [प्रकट रूप से] मित्रावसु ! यह कितनी सी (बात) है ? विशाल भुजाओं वाले आप से तो और (भी) बहुत अधिक सम्भावना की जा सकती है (कि तु) —

जिना मांग जो परोपकार के लिए करुणा वश हो कर अपना शरीर भी दे सकता है वह राज्य के लिए प्राणियों के वध की कठोरता की कैसे अनुमति दे देव ॥ १७ ॥

और फिर क्लेशों—मानसिक विकारों—को छोड कर मैं तो किसी अन्य को शत्रु ही नहीं समझता (शा० क्लेशों को छोड कर मेरी कहा और शत्रु-बुद्धि ही नहीं है)। यदि तुम मेरा भला करना चाहते हो तो राज्य के लिए करुणा का दास बने हुए उस बेचारे (मतङ्ग) पर दया करो।

मित्रावसु—[क्रोध पूर्वक] ऐसा हमारा उपकार करने वाला तथा दीन, भला दया करने योग्य कैसे नहीं है !

नायक—[अपने आप] अनिवार्य (जिस रोका न जा सके) कोप वाले तथा नये नए क्रोध से व्याकुल चित्त वाले इस (मित्रावसु) को रोकना सम्भव नहीं है। तो ऐसा (कहूँ)। [प्रकट रूप से] मित्रावसु ! उठो अन्दर चलें। वहाँ आप को समझाऊँगा अब दिन ढल गया है।

क्या कि —

क्लेश—बौद्ध सिद्धान्त के अनुसार पाँच क्लेश अथवा पाप माने गए हैं—(१) अविद्या (२) अस्मिता (अहङ्कार)। (३) राग। (४) द्वेष (५) अभिनिवेश।

नायक यहाँ पाँच को अपना शत्रु समझता है किसी अन्य को नहीं।

क्लेशदासीकृत—क्लेशानां दास इति क्लेशदास। अक्लेशदास क्लेशदास सम्पद्यमान कृत (च्वि प्रत्यय)—करुणा का दास बनाया गया।

कथम कृतशब्द—यह वाक्य ताने के साथ कहा गया है।

अनिवार्यसंरम्भ अनिवार्य (न निवार्य) संरम्भ यस्य स (बहुव्री०) अनिवार्य क्रोध है जिस का।

कोपाक्षिप्तचेता कोपेन आक्षिप्त चेत यस्य स (बहुव्री०) क्रोध से आक्रान्त है चित्त जिस का। आक्षिप्त आ + √क्षिप् + क्त आक्रान्त।

निवारयितुम्—नि + √वृ + णिच् + तुमुन्—हटाना, रोकना।

बोधयिष्यामि—√बुध + णिच् + लृट्—समझाऊँगा।

निद्रामुद्रावबन्धव्यतिकरमनिश पद्मकोशादपास्य-[1][2]
न्नाशापूरैककर्मप्रवणनिजकरप्रीणिताशेषविश्व ।[3][4][5]
दृष्ट सिद्धै प्रसक्तस्तुतिमुखरमुखैरस्तमप्येष गच्छन् ।
एक श्लाघ्यो विवस्वान परिहितकरणायैव यस्य प्रयास ॥१८॥[6][7][8]

[इति निष्क्रान्ता सर्वे]

इति तृतीयोङ्क

अन्वय—पद्मकोशात् निद्रामुद्राऽवबन्धव्यतिकरम् अनिशम् अपास्यन्, आशापूरैककर्मप्रवणनिजकरप्रीणिताऽशेषविश्व अस्तम् अपि गच्छन् प्रसक्तस्तुतिमुखरमुखै सिद्धै दृष्ट परहितकरणाय एव यस्य प्रयास एक विवस्वान् एव श्लाघ्य ॥ १८ ॥

निद्रामुद्रावबन्धव्यतिकरम्—निद्राया मुद्रा तस्या अवबन्ध तस्य व्यतिकर तम्—नीद के चिह्न स्वरूप सकोच के सम्बन्ध को । रात के आने पर कमल सो जाता है । उस की पत्तियो का सकोच (अर्थात् सिकुडना) ही उस की नीद का चिह्न है । उस सकोच के सम्बन्ध (अर्थात् गाढ बन्धन) को ही सूर्य प्रात काल आ कर दूर करता है भावार्थ यह कि सूर्य रात्री में मुरझाए हुए(बन्द हुए) कमल को प्रात काल खिला देता है ।

अपास्यन्—अप+$\sqrt{}$अस+शतृ (फकना–दिवादिगण परस्म०)—परे फकता हुआ दूर करता हुआ ।

आशापूर०—आशाना (दिशानां) पूर तदेव एक कर्म तस्मिन् प्रवणं (प्रवृत्तं) निजकर प्रीणितम् अशेष विश्व येन स (बहुव्री०)—दिशाओ के पूरा करने के एक मात्र कार्य मे लगी हुई अपनी किरणो से प्रसन्न कर दिया है सम्पूर्ण विश्व को जिस ने ।

प्रसक्तस्तुतिमुखरमुखै—प्रसक्ता भि स्तुतिभि मुखराणि मुखानि येषाम् (बहुव्री०)—की गई स्तुतियो से शब्दायमान मुख हैं जिन के उन से ।

निद्रामुद्रा०—इस श्लोक का एक अर्थ तो ऊपर दिया जा चुका है किन्तु बहुत से

1 पद्म=कमल 2 कोशात्=कली से 3 प्रवण=चतुर 4 कर=किरण हाथ 5 अशेषम्=सम्पूर्ण 6 प्रशसनीय 7 सूर्य 8 प्रयत्न ।

प्रतिदिन कमलों की कलियों से नींद के चिह्न स्वरूप सकोच के सम्बन्ध को दूर करता हुआ दिशाओं को (प्रकाश से) भरने के एक मात्र कार्य में लगी हुई अपनी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न करने वाला, स्तुतियों को करने से शब्दायमान मुखों वाले सिद्धों द्वारा अस्त होता हुआ भी (आदर सहित) देखा गया यह सूर्य ही प्रशंसनीय है जो परोपकार के लिए प्रयत्नशील (रहता) है। (शा०—जिसका प्रयत्न परोपकार करने के लिए ही है)।

[सब के सब चले जाते हैं।]

तृतीय अङ्क समाप्त

शब्दों के श्लेषात्मक (दो अर्थों वाले) होने के कारण इस का एक और अर्थ भी हो सकता है। जिस में परोपकारी राजा का समुचित वर्णन किया गया है। इस दूसरे अर्थ की व्याख्या नीचे दी गई है।

निद्रामुद्रावन्धव्यतिकरम् अपास्यन् आलस्य तथा मोहर लगाने की रुकावट के सम्बन्ध को दूर करता हुआ। दान आदि देने में राज्याधिकारी कई बार आलसी होते हैं तथा राजा की मोहर लगाने में सुस्ती करते हैं। दानी राजा इन रुकावटों को दूर कर देता है।

पद्मकोशात् पद्मों (अरबों खरबों) की संख्या वाले धन कोष से।

आशा०—(लोगों की) आशाओं को पूरा करने के एक मात्र काम में लगे हुए अपने हाथों से सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न करने वाला।

सिद्धैः —सिद्ध हुए कार्यों वाले लोगों से।

अस्तमपदेव गच्छन् आर्थिक क्षेत्र में अवनति को प्राप्त होता हुआ भी यह।

श्लोक का सरलार्थ—पद्मों की संख्या वाले धन कोष से (लोगों को दान देने में) प्रति दिन (राज्य पुरुषों के) आलस्य तथा मोहर लगाने की बाधा के सम्बन्ध को दूर करके तथा अपने हाथों से (लोगों की) आशाओं को पूरा करने के काम में लगने से सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न करता हुआ देदीप्यमान (दानी राजा) ही प्रशंसनीय है जो परोपकार करने में प्रयत्नशील रहता है तथा जो बुरी दशा को प्राप्त होने पर भी (उस द्वारा) सफल हुए कार्यों वाले लोगों से स्तुतियों से शब्दायमान मुखों के साथ (आदर सहित) देखा जाता है।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

[तत प्रविशति कञ्चुकी गृहीतरक्तवस्त्रयुगल प्रतीहारश्च ।]

कञ्चुकी—

अन्त पुराणा विहितव्यवस्थ पदे पदेऽह स्खलनानि रक्षन्
जरातुर सम्प्रति[1] दण्डनीत्या सर्वां नृपस्यानुकरोमि वृत्तिम्[2] ॥१॥

प्रतीहार —आर्य ! वसुभद्र ! क्व नु खलु भवान् प्रस्थित ।

कञ्चुकी—आदिष्टोऽस्मि देव्या मित्रावसुजनन्या यथा —"कञ्चुकिन् ! दशरात्र त्वया यावन्मलयवत्या, जामातुश्च रक्तवासांसि नेतव्यानि ।"

कञ्चुकी—नाटक का एक पारिभाषिक शब्द । कञ्चुकी उस व्यक्ति को कहते हैं जिस पर अन्त पुर अथवा रणिवास के प्रबन्ध एव व्यवस्था बनाए रखने का उत्तरदायित्व होता है । वह प्राय वृद्ध ब्राह्मण होता है तथा अनेक गुणो से सम्पन्न होने के कारण नाना प्रकार के कार्यों को करने में कुशल समझा जाता है । कञ्चुक अर्थात् चोगा पहिनने के कारण ही उसे सस्कृत नाटको में ' कञ्चुकिन् ' का नाम दिया गया है ।

गृहीतरक्तवस्त्रयुगल --गृहीत रक्त वस्त्रयुगल (वस्त्राणा युगलम्) येन स (बहुव्री०) —लाल वस्त्रो का जोडा लिए हुए ।

अन्वय --अ त पुराणा विहितव्यवस्थ पदे पदे सस्खलनानि रक्षन् सम्प्रति जरातुर दण्डनीत्या नृपस्य सर्वां वृत्तिम् अनुकरोमि ॥ १ ॥

अन्त पुर०--इस श्लोक मे कञ्चुकी ने अपनी दशा एव कार्यभार की व्याख्या करते हुए अपनी तुलना राजा से की है । इस उपमा के सम्बन्ध मे श्लेषात्मक (एक से अधिक अर्थ देने वाले) शब्दो का प्रयोग हुआ है । नीचे दिए गए अर्थों में पहला कञ्चुकी के विषय मे समझना चाहिए तथा दूसरा राजा के विषय में ।

---

1 अब 2 आचरण को।

चौथा अंक

[व ुग   ाल ा वः ाकिा जा । लिए हुए द्वारपाल प्रवेश क ा है]

कञ्चुकी—रनि ास की व्यवस्था बनाते हुए पग-पग पर (रानियों) की त्रुटियों का   क्षा करते हुए   बुढ़ापे म व्याकुल ाने के कारण डण्डा को धारण किए हुए मैं राजा के समान ग्राचरण का अनुकरण कर रहा हूँ क्योंकि राजा नगरों के भीतर भा ा की व्यवस्था करता है पग पग पर (लोगों) के अपराधों की रक्षा करते हैं तथा यश के लिए उन्मुख बना हुआ दण्ड नीति का पालन करता है

प्रतीहार—आर्य वसुभद्र   आप कहाँ जा रहे हैं ?

कञ्चुकी—देवी मित्रावसु की माता ने मुझे आदेश दिया है जैसे कि   हे कञ्चुकी   तुम ने दस   रात तक मलयवती तथा जामाता   के पास   लाल वस्त्र ले जाने हैं ।

अन्त पुराणाम (१)   निवास ( ) नग ों के भीतर   भाग

विहितव्यवस्थ   विहिता (वि + $\sqrt{}$धा + क्त) व्यवस्था येन स (बहुव्री०) व्यवस्था बनाए हुए

स्खलनानि—(१) त्रुटियों का   (२) अप ाधों का ।

जरातुर —(१) जरया आतु   बुढ़ापे से व्याकुल   (२) जराया आतुर प्रसन्नता का च्छुक

दण्डनीत्या   (१) डण्ड को लेने से   (२) दण्ड नीति से

दशरात्रम   दशाना रात्रीणा समूह (द्विगु०)   दस रात ।

रक्तवासांसि   रक्तानि वासांसि (कर्मधा)— लाल वस्त्र ।

दुहिता[1] च श्वसुरकुले वर्तते। जीमूतवाहनोऽपि युवराजेन सह समुद्र वेला द्रष्टुमद्य गत इति श्रूयते। तत्र जाने किं राजपुत्र्याः सकाशं[2] गच्छामि अथवा जामातुरिति ?

प्रतीहार—आर्य ! वरं राजपुत्र्याः सकाशं गन्तव्यम्। तत्र हि कदाचिद् स्यां वेलायां जामाता स्वयमेवागतो भविष्यति।

कञ्चुकी—साधूक्तम्। अथ भवान् पुनः क्व प्रस्थितः ?

प्रतीहार—आदिष्टोऽस्मि महाराजविश्वावसुना यथा—भो सुनन्द ! गच्छ मित्रावसुं ब्रूहि अस्मिन् दीपप्रतिपदुत्सवे मलयवत्या जामातुश्च यत्किञ्चित् प्रदीयते तदुत्सवानुरूपं किञ्चिदानाय्य चिन्त्यताम् इति। तद्गच्छतु राजपुत्र्याः सकाशमार्य। अहमपि मित्रावसोराह्वानाय[3] गच्छामि।

[निष्क्रान्तौ]

[विष्कम्भकः]

समुद्रवेलाम्—समुद्रस्य वेलाम् (ष० त०पु०)—समुद्र के तट को। यह शब्द ज्वारभाटा के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। वैसे वेला का अर्थ समय भी होता है।

दीपप्रतिपदुत्सवे—दीपप्रतिपद उत्सवे (ष० त०पु०)—दीपावली के प्रतिपदा के उत्सव पर। यह उत्सव कार्तिक के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिवस पर मनाया जाता था।

विष्कम्भक—नाटक का पारिभाषिक शब्द। प्रवेशक की तरह यह भी एक परिचयात्मक दृश्य है जिस में रंगमञ्च पर अभिनीत न होने वाली भूत एवं भविष्यत् काल की घटनाओं की जानकारी दी जाती है। यह अंक के शुरू में आता है। इस में मध्य तथा नीच पात्र भाग लेते हैं। जब केवल संस्कृत बोलने वाले मध्य कोटि के पात्र इस में भाग लें तो इसे 'शुद्ध' विष्कम्भक कहते हैं और यदि भाग लेने वाले पात्र

---

1 पुत्री 2 पास 3 आह्वानाय—बुलाने के लिए।

और पुत्री मलयवती ससुराल में है। मैं ने सुना है कि जीमूतवाहन भी आज युवराज मित्रावसु के साथ समुद्र के तट (अथवा ज्वारभाट) को देखने गए हैं। तो समझ नहीं आती कि राजपुत्री के पास जाऊँ अथवा जामाता के पास।

प्रतीहार—आर्य! राजपुत्री के पास जाना ही ठीक है। इस समय तक स्वयं जामाता भी शायद वहीं आ गए होंगे।

कञ्चुकी—ठीक कहा! भला आप कहाँ चल पड़े?

प्रतीहार—महाराज विश्वावसु ने मुझे आदेश दिया है, जैसा कि—'अरे सुनन्द! जाओ, मित्रावसु से कहो कि इस दीपावली के प्रतिपदा उत्सव पर, मलयवती तथा जामाता को उत्सव के अनुरूप जो कुछ देना है, (उसके सम्बन्ध में) आ कर कुछ बात चीत कर लो। तो आर्य राजपुत्री के पास जाएँ। मैं भी मित्रावसु को बुलाने के लिए जाता हूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

विष्कम्भक

'मध्य' तथा 'नीच'—दोनों प्रकार के हों तथा क्रमशः संस्कृत और प्राकृत बोलते हों तो उसे 'मिश्र' अथवा संकीर्ण विष्कम्भक कहते हैं।
प्रवेशक तथा विष्कम्भक में कुछ इस प्रकार का भेद समझना चाहिए—
(१) प्रवेशक दो अंक के बीच में ही आता है जब कि विष्कम्भक प्रथम अंक के शुरु में भी आ सकता है।
(२) प्रवेशक में भाग लेने वाले पात्र सदा नीच कोटि कोटि के होते हैं अतः उस में केवल प्राकृत ही बोली जाती है जब कि विष्कम्भक—'शुद्ध' तथा 'मिश्र'—दो प्रकार का होता है।

[तत प्रविशति जीमूतवाहनो मित्रावसुश्च]

नायक —

शय्या शाद्वल[1]मासन शुचि[2]शिला सद्म[3] द्रुमाणा[4]मध[5]

शीत निर्झरवारि पानमशन[6] कन्दा सहाया मृगा ।

इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने,

दुष्प्रापार्थिनि यत्परार्थघटनावन्ध्यैर्वृथा स्थीयते ॥२॥

मित्रावसु —[ऊर्ध्वमवलोक्य] कुमार ! त्वर्यताम् त्वर्यताम् समयोऽयं चलितुमम्बुराशे[7]।

नायक —[आकर्ण्य] सम्यगुपलक्षितम्—

उन्मज्जज्जलकुञ्जरेन्द्ररभसा[8]ऽऽस्फाला[9]नुबन्धो[10]द्धत

सर्वा पर्वतकन्दरोदरभुव कुर्वन् प्रतिध्वानिता[11]।

अन्वय —शाद्वलम् शय्या शुचिशिला आसनम् द्रुमाणाम् अध सद्म शीतम् निर्झरवारि पानम मृगा सहाया —इति अप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे वन अयम एक दोष यत् दुष्प्रापार्थिनि परार्थघटनावन्ध्य वृथा स्थीयते ॥२॥

अप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे—अप्रार्थिता लभ्या सर्वविभवा यस्मिन् (बहुव्री०) तस्मिन् —जहाँ बिना मांगे प्राप्त हो सब वैभव उस (वन) में ।

दुष्प्रापार्थिनि—दुष्प्रापा (दु खेन प्राप्या) अर्थिन यस्मिन् (बहुव्री०)—जहाँ याचक कठिनाई से मिलते हैं ।

परार्थघटनावन्ध्य —परार्थस्य घटनाया वन्ध्य —परोपकार न करने मे निष्फल (असमर्थ) ।

---

1 हरी घास वाली 2 पवित्र 3 घर 4 द्रुमाणां—वृक्षों के 5 अध —नीचे 6 अशनम् —भोजन 7 अम्बुराशे —समुद्र का 8 रभसा—जोर से 9 आस्फाल—थपेड़ा देकर 10 अनुबन्ध—निरन्तर पाना 11 गुञ्जित।

[तब जीमूतवाहन तथा मित्रावसु प्रवेश करते हैं।]

नायक—

हरि घास की शय्या, पवित्र शिला का आसन, वृक्षों के नीचे घर, पीने को झरने का शीतल जल, खाने को कन्दमूल तथा साथी (के रूप में) मृग—इस प्रकार बिना माँगे ही प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण वैभव से युक्त वन में यह एक ही दोष है कि याचक के सुलभ न होने के कारण परोपकार करने में असमर्थ (हम) व्यर्थ ही ठहर रहे हैं।

मित्रावसु—[ऊपर देख कर] कुमार! जल्दी जल्दी करो, यह समुद्र के ज्वार भाटे का (शा० चलने का) समय है।

नायक—[सुन कर] आप ने ठीक समझा।

ऊपर उठते हुए जल रूपी गज राजों के (सूंडों के) जोर से थपेड़ों के सिलसिले से उत्पन्न, पर्वतों की गुफाओं के समस्त भीतरी प्रदेशों को गुंजाता हुआ,—

अन्वय—उन्मज्जज्जलकुञ्जरेन्द्ररभसाऽऽस्फालानुबन्धोद्धतः सर्वाः पर्वतकन्दरोदरभुवः प्रतिध्वानिनीः कुर्वन् श्रुतिपथोन्माथी यथा अयं ध्वनिः उच्चैः उच्चरति तथा प्रेङ्खदुरुत्थशङ्खधवला वेला इयम् आगच्छति ॥ ३ ॥

उन्मज्जत्०—उन्मज्जन्तः ये जलकुञ्जरेन्द्राः तेषां रभसेन यः आस्फालः तस्य अनुबन्धेन उद्धतः—ऊपर उठते हुए जलरूपी गजराजों के (सूंडों के) जोर से थपेड़ों के सिलसिले से उत्पन्न।

उन्मज्जत्—उद् + $\sqrt{}$मस्ज् + शतृ—उठते हुए।

जलकुञ्जरेन्द्रा—जलानि एव कुञ्जरेन्द्राः (कुञ्जराणाम् इन्द्राः—गजों के राजा) जल रूपी गजराज।

उद्धतः—उद् + $\sqrt{}$हन् + क्त—पैदा हुआ, ऊपर फैला गया।

पर्वतकन्दरोदरभुवः—पर्वतानां यानि कन्दराणि तेषां यत् उदरं तस्य भुवः—पर्वतों की गुफाओं के भीतरी प्रदेशों को।

उच्चैरुच्चरति[1] ध्वनिः श्रुतिपथोन्माथी यथायं तथा
प्रायः प्रेङ्खदसंख्यशङ्खधवला वेलेयमागच्छति ॥ ३ ॥

मित्रावसु —नन्वियमागतैव । पश्य—

कवलितलवङ्गपल्लवकरिमकरोद्गारिसुरभिणा पयसा ।
एषा समुद्रवेला रत्नद्युतिरञ्जिता भाति[2] ॥ ४ ॥

तदेह्यस्माज्जलप्रसरणमार्गादपक्रम्यानेनैव गिरिसानुसमीपमार्गेण परिक्रमाव ।
[परिक्रम्यावलोक्य च]

नायक—मित्रावसो, पश्य पश्य शरत्समयपाण्डुभिः पयोदपटलैः प्रावृता[3] प्रालेयाचलशिखरश्रियमुद्वहन्त्येते मलयसानवः[4] ।

मित्रावसु—कुमार, नैवामी मलयसानवः । नागानामस्थिसङ्घाताः खल्वमी ।

नायक—[सोद्वेगम्] कष्टं किं निमित्तममी सङ्घातमृत्यवो[5] जाताः ?

श्रुतिपथोन्माथी—श्रुतिपथम् उन्मथ्नाति इति (उपपद तत्पु०)—कानों के पर्दों को फाड़ने वाला ।

प्रेङ्खदसंख्यशङ्खधवला—प्रेङ्खन्तः ये असंख्याः शङ्खाः तैः धवला—इधर उधर घूमते हुए असंख्य शङ्खों से सफ़ेद ।

नन्वियमागतैव—ननु+इयम्+आगता+एव—यह तो सचमुच आ ही पहुँचा ।

अन्वय—कवलितलवङ्गपल्लवकरिमकरोद्गारिसुरभिणा पयसा रत्नद्युतिरञ्जिता एषा समुद्रवेला भाति ॥ ४ ॥

कवलित०—कवलिताः लवङ्गपल्लवाः यैः (बहुव्री०) ते करिणः मकराश्च (द्वन्द्व) तेषाम् उद्गारेण सुरभिणा—खाए गए हैं लवंग लता के पत्ते जिन से, उन हाथियों और मगरमच्छों के श्वास से सुगन्धित (जल) से ।

कवलित—'कवल' संज्ञा से नामधातु बना कर क्त प्रत्यय—कुक्षमा बनाए हुए, खाए हुए ।

रत्नद्युतिरञ्जिता—रत्नानां द्युतिः, तया रञ्जिता—रत्नों की कान्ति से रंगी हुई ।

1. उच्चरति—उठ रहा है 2. प्रतीत होता है 3. आच्छादित हुये हुए 4. मलय पर्वत की चोटियां 5. सामूहिक मौतें ।

कानों के पर्दों को फाड़ता हुआ, यह शोर जिस प्रकार ऊँचा उठ रहा है, उस से (मैं समझता हूँ), इधर उधर घूमते हुए असख्य शङ्खों से सफेद बना हुआ यह ज्वार भाटा शायद आ रहा है।

मित्रावसु—यह तो सच मुच आ ही पहुँचा। देखो—

लवग लता के पत्तों को खाए हुए हाथियों और मगरमच्छों के श्वास से सुगन्धित जल से यह समुद्र का ज्वार भाटा रत्नों की कान्ति से चित्रित प्रतीत होता है।

तो आओ इस जल के फैलने के मार्ग से हट कर, पर्वत की चोटी के समीप वाले मार्ग से चलते हैं।

नायक—हे मित्रावसु! देखो देखो, शरद् ऋतु के सफेद घन-समूह से आच्छादित ये मलय पर्वत की चोटियाँ हिमालय पर्वत के शिखरों की शोभा का धारण कर रही हैं।

मित्रावसु—ये मलय पर्वत की चोटियाँ नहीं हैं ये तो नागों की हड्डियों के ढेर हैं।

नायक—[उद्वेग सहित] किस कारण से ये सामूहिक मृत्यु को प्राप्त हुए हैं?

तदेहि०—तत् + एहि + अस्मात् + जलप्रसरणमार्गात् + अपक्रम्य + अनेन + एव।

जलप्रसरणमार्गात् जलस्य प्रसरण तस्य मार्गात्—जल के फैलने के मार्ग से।

गिरिसानुसमीपमार्गेण—गिरे सानु तस्य समीप य मार्ग तेन—पर्वत की चोटी के समीप मार्ग से।

शरत्समयपाण्डुभि -शरद समय इव पाण्डुभि -शरत् ऋतु के समान सफेद से।

पयोदपटलै — पयोदाना पटलै (प० तत्पु०)— बादलों के समूह से।

प्रालेयाचलशिखरश्रियम्—प्रालेयस्य (=हिमस्य) य अचल तस्य यानि शिखराणि, तेषा श्रियम्—हिमालय पर्वत की चोटियों की शोभा को।

मित्रावसु—कुमार, नैवामी सघातमृत्यव । श्रूयतां यथैतत् । इह किल स्वपक्षपवनापास्तसमस्तसागरतलपूरं रसातलादुद्धृत्य[1] प्रतिदिनमेकैकं नागमाहारयति वैनतेयः ।

नायक —[सोद्वेगम्] कष्टमतिदुष्करं करोति । ततस्ततः ।

मित्रावसु —ततः सकलनागलोकविनाशशङ्किना नागराजेन वासुकिना गरुत्मानभिहितः ।

नायक —[सादरम्] किं मां प्रथमं भक्षयेति ।

मित्रावसु —नहि नहि ।

नायक —किमन्यत् ।

स्वपक्ष०—स्वपक्षयो पवनेन अपास्त समस्त सागरतलस्य पूर यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा (क्रिया वि०)—अपने पखों की हवा से समस्त सागर के जल को हटाते हुए ।

अपास्त—अप+$\sqrt{}$अस (फेंकना)+क्त—परे फेंकते हुए हटाए हुए ।

तलस्य पूर —तल का भरने वाला अर्थात् जल ।

उद्धृत्य—उत्+$\sqrt{}$हृ+ल्यप्—बलपूर्वक उठा कर ।

आहारयति— आहार से नाम धातु—आहार करता है ।

वैनतेय —विनताया अपत्य पुमान् (विनता+एय) । गरुड तथा साँपों की शत्रुता प्रायः प्रसिद्ध ही है । कश्यप की कद्रू तथा विनता, दो पत्नियाँ थी । एक बार दोनों में बीच सूर्य के घोड़े के वर्ण के विषय में झगड़ा हो गया । विनता के विचार में सूर्य के घोड़े सफेद थे किन्तु कद्रू इन्हें काला मानती थी । कद्रू ने अपने पुत्रों की सहायता से उन्हें काला बना दिया

---

1 रसातलात्—पाताल से ।

मित्रावसु —इदमभिहितम् । त्वदभिपातसन्त्रासात् सहस्रश स्रवन्ति[1] भुजङ्गमाङ्गनानां गर्भा । शिशवश्च पञ्चत्वमुपयान्ति[2] एव च सन्ततिविच्छेदोऽस्माकम् । तव चैव स्वार्थहानि । तत् यदर्थमभिपतति[3] भवान् नागलोक तमिह नागमेकैकमनुदिन प्रेषयामि ।

नायक —कष्टमेव रक्षिता नागराजेन पन्नगा[4] ?

जिह्वासहस्रद्वितयस्य मध्ये नैकाऽपि सा तस्य किमस्ति जिह्वा ।
एकाहिरक्षार्थमहिद्विषेऽद्य दत्तो मयात्मेति यया ब्रवीति ? ॥५॥

मित्रावसु —प्रतिपन्न तत् पक्षिराजेन ।

त्वदभिपातसत्रासात्—तव य अभिपात तस्मात् सन्त्रासात्—तुम्हारे आक्रमण के भय से ।

भुजङ्गमाङ्गनानाम्—भुजङ्गमानाम् अङ्गनानाम् (ष० तत्पु०)—नागो की स्त्रियों के ।

भुजङ्गम—भुजाभ्या गच्छतीति भुजङ्गम , भुजङ्ग , भुजग —साँप । इसी प्रकार तुरग, तुरङ्ग, तुरङ्गम तथा विहग, विहङ्ग विहङ्गम बनते हैं ।

सन्ततिविच्छेद —(ष० तत्पु०)—सन्तानो का नाश ।

अन्वय —जिह्वासहस्रद्वितयस्य मध्ये न एका अपि तस्य जिह्वा अस्ति किम् ? यया अद्य एकाहिरक्षार्थम् मया आत्मा अहिद्विषे दत्तः इति ब्रवीति ॥ ५ ॥

जिह्वासहस्रद्वितयस्य—जिह्वाना यत् सहस्रद्वितयम् (=सहस्रद्वयम्) तस्य—दो हजार जिह्वाओ के ।

जिह्वा० —एक सर्प की दो जिह्वाएँ होती हैं । वासुकि के एक हजार सिर माने जाते हैं अत उसकी दो हजार जिह्वाए हो गई ।

एकाहिरक्षार्थम्—एकस्य अहे रक्षार्थम्—एक साँप की रक्षा के लिए ।

अहिद्विषे—अहीन् द्वेष्टि इति अहिद्विट् तस्मै (उपपद तत्पु०)—सर्पों के शत्रु के लिए । देने के योग में चतुर्थी का प्रयोग होता है ।

---

1 गिर जाते हैं 2 मृत्यु को प्राप्त होते हैं 3 आक्रमण करता है 4 साप ।

मित्रावसु—यह कहा—' तुम्हारे आक्रमण के भय से हजारों नाग स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं तथा बच्चे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । इस प्रकार हमारी सन्तान के विनाश से आप के स्वार्थ की ही हानि होगी। जिस के लिए आप नाग लोक पर आक्रमण करते हैं, उस एक एक नाग को मैं प्रतिदिन यहाँ से भेज दिया करूँगा ।

नायक—दुःख की बात है कि नाग राज (वासुकि) ने नागों की इस तरह रक्षा की ।

दो हज़ार जिह्वाओं में से क्या एक भी उस की ऐसी जीभ नहीं थी जिस से (वह) कहता—' एक नाग की रक्षा के लिए मैं ने आज अपने आप को नागों के शत्रु (गरुड) के अर्पण कर दिया है ।"

मित्रावसु—नाग राज ने उसे स्वीकार कर लिया ।

प्रतिपन्नम्—प्रति+√पद्+क्त—स्वीकार किया गया ।

पक्षिराजेन—पक्षिणा राजा तेन (ष० तत्पु०)—पक्षियों के राजा, (गरुड) से । समास में 'राजन्' शब्द के उत्तर पद होने पर, उस के रूप 'नर' की तरह बनते हैं । यहा पर पक्षिराज्ञा न बन कर पक्षिराजन बनने का यही कारण है । इसी प्रकार महाराज, नागराज आदि के रूप भी 'नर' की भाँति बनते हैं ।

इत्येष भोगिपतिना विहितव्यवस्थो
यान् भक्षयत्यहिपतीन् पतगाधिराजः[1] ।
यास्यन्ति, यान्ति च, गताश्च दिनैर्विवृद्धिं,
तेषाममी तुहिनशैलरुचोऽस्थिकूटाः ॥६॥

नायकः—आश्चर्यम् !

सर्वाऽशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।
शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ! ॥ ७ ॥

अहो ! कष्टमनवसानेय विपत्तिर्नागानाम् । (आत्मगतम्) अपि शक्नुयामहं स्वशरीरसमर्पणेन एकस्यापि नागस्य प्राणपरिरक्षां कर्तुम् ।

[ततः प्रविशति प्रतीहारः]

प्रतीहारः—आरूढोऽस्मि[2] गिरिशिखर, यावन्मित्रावसुमन्विष्यामि । [परिक्रम्य] अय मित्रावसुर्जामातुः समीपे तिष्ठति । [उपसृत्य] विजयेतां कुमारौ ।

अन्वयः—इति एष भोगिपतिना विहितव्यवस्थः यान् अहिपतीन् भक्षयति, तेषाम् अमी तुहिनशैलरुचः अस्थिकूटाः दिनैः विवृद्धिं गताः, यान्ति, यास्यन्ति च ॥ ६ ॥

भोगिपतिना—भोगीना पतिना (ष० तत्पु०) सर्पों के स्वामी—वासुकि—से । जब किसी समास मे 'पति' शब्द उत्तरपद हो, तो उस के रूप हरि की भाँति होते हैं । यही कारण है कि यहाँ 'भोगिपत्या' न बनकर भोगिपतिना बना है । इसी प्रकार भूपति आदि के रूप भी हरि की तरह ही बनते हैं ।

भोगिन्—भोग+इन् (भोगाः=फणाः अस्य सन्तीति भोगिन्)—साँप ।

विहितव्यवस्थ—विहिता व्यवस्था यस्य स. (बहुव्री०)—जिस की व्यवस्था की गई है वह (गरुड) ।

तुहिनशैलरुच—तुहिनस्य शैल तस्य रुचिरिव रुचिः येषा (बहुव्री०)—बर्फ के पहाड (हिमालय) की सी शोभा वाले ।

---

1. पक्षियों का राजा (गरुड) 2 चढ गया ।

इस प्रकार नाग-राज (वासुकि) द्वारा व्यवस्था किए जाने पर, जिन जिन नाग-राजाओं को यह पक्षिराज (गरुड) खाता है, उन-उन की हिमालय की शोभा वाले हड्डियों के ढेर दिन के व्यतीत होने के साथ साथ, बढ गए हैं, बढ रहे हैं तथा बढते जाएँगे।

नायक—कितना आश्चर्य है!

मब अपवित्र (पदार्थों) के घर, कृतघ्न, नाशवान तथा तुच्छ शरीर के लिए भी मूर्ख लोग पाप करते हैं।

ओह! कष्ट की बात है कि नागों की यह विपत्ति (कभी) समाप्त होने वाली नहीं। [अपने आप] काश! अपने शरीर के समर्पण द्वारा मैं एक भी नाग की प्राण रक्षा कर पाता।

[तब द्वारपाल प्रवेश करता है]

प्रतीहार—पहाड की चोटी पर चढ आया हूँ तो मित्रावसु को ढूँढता हूँ। [घूम कर] यह मित्रावसु जामाता के पास ही ठहरे हैं। [पास जाकर] दोनों कुमारों की जय हो।

अस्थिकूटा—अस्थ्नाम् कूटा (ष० तत्पु०) हड्डियों के ढर।

अन्वय—मूढा सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिन शरीरकस्य कृते अपि पापानि कुर्वते ! ॥ ७ ॥

सर्वाशुचिनिधानस्य—सर्वाणि यानि अशुचीनि, तेषा निधानस्य—सब अपवित्र (पदार्थों) के घर का।

कृतघ्नस्य—कृतघ्न का, कृतघ्न इस लिए कि इसे सुन्दर एव सुदृढ बनाए रखने के सब प्रयत्नो के किए जाने पर भी, यह नष्ट हो जाता है।

शरीरकस्य—कुत्सित शरीर, शरीरक तस्य (कुत्सितार्थे 'क' प्रत्यय)—तुच्छ शरीर के।

अनवसाना—न अवसान यस्या सा (बहुव्री०)—जिस का अन्त नहीं है।

मित्रावसुः—सुनन्द ! किं निमित्तमिहागमनम् ?

प्रतीहार —[कर्णे कथयति ।]

मित्रावसु —कुमार ! तातो मामाह्वयति[1] ।

नायक —गम्यताम् ।

मित्रावसु —कुमारेणापि बहुप्रत्यवायेऽस्मिन् प्रदेशे न चिरं स्यातव्यम् ।
[इति निष्क्रान्त ।]

नायक—यावदहमप्यस्माद्गिरिशिखरादवतीर्य समुद्रतटमवलोकयामि ।
[परिक्रामति ।]

[नेपथ्य]

हा पुत्रक शङ्खचूड ! कथं व्यापाद्यमानोऽद्य किल त्वं मया प्रेक्षितव्य ?

हा पुत्तग्र सङ्खचूड ! कहं वावादिग्रमाणो ग्रज्ज किल तुमं मए पक्खिदव्वो ।

नायक—[आकर्ण्य] अये ! योषित[2] इवार्त्तप्रलाप ! केयम् ? कुतो वाऽस्या भयमिति स्फुटीकरिष्ये । [परिक्रामति ।]

[तत प्रविशति रुदत्या वृद्धयाऽनुगम्यमान शङ्खचूडो गोपायितवस्त्रयुगलश्च किङ्कर ।]

कर्णे०—सन्देश दीपावली के उत्सव पर दिए जाने वाले उपहार के विषय में है जिसे लेखक पहले ही बता चुका है। पुनरावृत्ति (Repetition) से बचने के लिए ही कदाचित् कान मे कहने के सकेत को अपनाया गया है।

बहुप्रत्यवाये—बहव प्रत्यवाया यस्मिन् (बहुव्री०) तस्मिन्–बहुत विघ्न हैं जिस में उस (प्रदेश) में ।

यावत्०—यावत्+अहम् + अपि+अस्मात्+गिरिशिखरात्+अवतीर्य (अव+तॄ+ल्यप्)—जब तक मैं भी इस पर्वत के शिखर से उतर कर ।

व्यापाद्यमान —वि+आ+√पद्+णिच्+कर्मवाच्य+शानच्—मारा जाता हुआ । आर्त्तप्रलाप —आर्त्तश्चासौ प्रलाप (कर्मधा०)—करुण विलाप ।

स्फुटीकरिष्ये—अस्फुटं स्फुटं सम्पद्यमानं करिष्ये (स्फुट+च्वि+√कृ+लृट्) —स्पष्ट करूँगा ।

---

1 बुलाता है 2 स्त्री का ।

मित्रावसु—सुनन्द ! यहां किस लिए आए हो ?

प्रतीहार—[कान में कहता है]

मित्रावसु—कुमार ! मुझे पिता जी बुला रहे हैं।

नायक—जाइए।

मित्रावसु—बहुत विघ्नों से युक्त इस स्थान पर कुमार को भी देर तक नहीं ठहरना चाहिए।

[चला गया]

नायक—तो मैं भी इस गिरि शिखर से उतर कर समुद्र-तट को देखता हूँ।
[चलता है]

[नेपथ्य में]

हा ! पुत्र शङ्खचूड आज मैं तुम्हें मारा जाता हुआ कैसे देखूँगी ?

नायक—[सुन कर] अरे ! स्त्री का सा करुण विलाप है। यह स्त्री कौन है ? इसे भय किस से है—यह स्पष्ट करता हूँ। [चलते हैं]

[तब रोती हुई वृद्धा से अनुसरण किया जाता हुआ शङ्खचूड तथा वस्त्रों के जोड़े को छुपाए नौकर प्रवेश करते हैं]

रुदत्या √रुद्ं+शतृ+स्त्री०+तृ० एक वचन—रोती हुई से।

अनुगम्यमान—अनु+√गम्+कर्मवाच्य+शानच—अनुसरण किया जाता हुआ।

गोपायितवस्त्रयुगल—गोपायित (गुप+णिच+क्त) वस्त्रयो युगलं येन स (बहुव्री०)—छुपाया हुआ है वस्त्रों का जोडा जिस ने।

वृद्धा—[सास्रम्] हा पुत्रक शङ्खचूड ! कथं व्यापाद्यमानोऽद्य किल त्वं मया प्रेक्षितव्यः ? [चिबुकं[1] गृहीत्वा] अनेन मुखचन्द्रेण विरहितमिदानीमन्धकारी-भविष्यति पातालम् । हा पुत्तअ सङ्खचूड ! कहं वावादिअमाणो अज्ज किल तुमं मए पेक्खिदव्वो ? इमिणा मुहचंदेण विरहीअं दाणीं अधआरीभवि-स्सदि पाआलं ।

शङ्खचूडः—किमिति वैक्लव्येन सुतरां[2] न[3] पीडयसि ।

वृद्धा—[निर्वर्ण्य, पुत्रस्याङ्गानि स्पृशन्ती] हा पुत्र ! कथं तेऽदृष्टसूर्यकिरणं सुकुमारं शरीरं निर्घृणहृदयो गरुड आहारयिष्यति ? [कण्ठे गृहीत्वा रोदिति] हा पुत्तअ ! कहं दे अदिट्ठसूरकिरणं सुउमारं सरीरं णिग्घिण-हिअओ गरुडो आहालइस्सदि ?

शङ्खचूड—अम्ब ! अलं परिदेवितेन । पश्य—

क्रोडीकरोति प्रथमं यदा जातमनित्यता ।

धात्रीव जननी पश्चात्तदा शोकस्य कः क्रमः ? ॥ ८ ॥

[गन्तुमिच्छति ।]

वृद्धा—पुत्रक ! तिष्ठ मुहूर्तम्, यावत् ते वदनं प्रेक्षे । पुत्तअ ! चिट्ठ मुहुत्तअं जाव दे वअणं पेक्खामि ।

मुखचन्द्रेण—मुखम् एव चन्द्रः तेन (कर्मधा०)—मुख रूपी चन्द्रमा से ।

अन्धकारी भविष्यति–अन्धकार+च्वि+√भू+लृट्–अन्धकार-मय होजाएगा ।

वैक्लव्येन—विक्लवस्य भावः, तेन—व्याकुलता से ।

अदृष्टसूर्यकिरणम्—न दृष्टा सूर्यस्य किरणा येन (बहुव्री०) —जिस ने सूर्य का प्रकाश नहीं देखा ।

निर्घृणहृदय—निर्घृण (निर्गता घृणा यस्मात् तत्—बहुव्री०) हृदयं यस्य सः—कठोर है हृदय जिस का ।

---

1. ठोडी को 2 अत्यधिक 3. हमें ।

वृद्धा— हा ! पुत्र शङ्खचूड, आज मैं तुम्हें मारा जाता हुआ कैसे देखूँगी ? [ठोढ़ी पकड़ कर] इस मुख चन्द्र से शून्य यह पाताल अब अन्धकारमय हो जाएगा।

शङ्खचूड—माता ! इस प्रकार व्याकुलता से हमें अत्यधिक पीडित क्यों करती हो ?

वृद्धा—[ध्यान से देख कर, पुत्र के अङ्गों को छूता हुई] हा ! पुत्र, सूर्य की किरणों को न देखने वाले तुम्हारे कोमल शरीर का कठोर हृदय गरुड कैसे खाएगा [गले से लगा कर रोती है]

शङ्खचूड—माता विलाप न करो। देखो—

पैदा हुए (प्राणी) को पहले अनित्यता (नश्वरता) ही गोद में लेती है, दाई की तरह माता तो बाद में (गोद में लेती है) तो शोक का क्या काम ?

वृद्धा—क्षण भर के लिए तो ठहरो बेटा ! तनिक मैं तुम्हारे मुख को देख लूँ।

[जाना चाहता है]

अम्ब—'अम्बा' का सम्बोधन एक वचनान्त रूप।

अलं परिदेवितेन विलाप से बस। अलम् के साथ तृतीया का प्रयोग होता है।

अन्वय—यदा जातम् अनित्यता धात्री इव प्रथमम् क्रोडीकरोति पश्चात् जननी, तदा शोकस्य कः क्रमः ? ॥८॥

क्रोडीकरोति— क्रोड से नाम धातु (क्रोड + च्वि + कृ + लट्)-गोद में लेती है।

क्रोडी०—बच्चे के पैदा होते ही पहले माँ उसे गोद में लेती है और फिर वह दाई के हाथ में दिया जाता है। यहां पर माँ को ही धात्री बनाया गया है क्यों कि बच्चे के जन्म लेते ही पहले नश्वरता उसे सम्भाल लेती है।

लेखक ने श्रीमद्भागवत के इसी विचार को भिन्न शब्दों में व्यक्त किया है—'मृत्यु जन्मवतां वीर देहेन सह जायते'। श्रीमद्भगवद्गीता में भी स्पष्ट रूप से लिखा है—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ।'

किङ्कर—एहि कुमार शङ्खचूड ! किं ते एतया भणन्त्या ? पुत्रस्नेहमोहिता खल्वेषा, न जानाति राजकार्यम् । एहि कुमाल सखचूड ! किं ते एदाए भणतीए ? पुत्तसि णहमोहिदा क्खु एसा, ण जाणेदि लाअक्ज ।

शङ्खचूड—अयमागच्छामि ।

किङ्कर—[अग्रतोऽवलोक्याऽऽत्मगतम्] आनीत खल्वेव मया वध्यशिलासमीपे, तद्वध्यचिह्नं दारयामि । आणीदो क्खु एसो मए वज्झसिलासमीव ता वज्झचिन्ह दाइस्स ।

नायक—इयमसौ योषित्[1] । [शङ्खचूड दृष्ट्वा] नूनमनेन अस्या सुतेन भवितव्यम् । तत् किमाक्रन्दति[2] ? [समन्तादवलोक्य] न खल्वस्या भयकारण किञ्चित् पश्यामि । कुतोऽस्या भयमिति ? यावदुपसर्पामि । प्रसक्त एवायमेतेषामालाप । कदाचिदत एवास्याभिव्यक्तिर्भविष्यति[3] । तद्विटपान्तरितस्तावच्छृणोमि । [तथा करोति]

किङ्कर—[सास्र कृताञ्जलि] कुमार शङ्खचूड ! एष स्वामिन आदेश' इति कृत्वा ईदृश निष्ठुर मन्त्र्यते[4] । कुमाल सखचूड ! एसो सामिणो आदेशो त्ति करिअ ईरिस णिट्ठुर मन्तीअदि ।

भणन्त्या—√भण्+शतृ+स्त्री०+तृ० एक वचन—कहती हुई से ।

पुत्रस्नहमोहिता—पुत्रस्य स्नेहेन मोहिता—पुत्र के स्नेह से मोहित हुई ।

वध्य चिह्नम्—वध्यस्य चिह्नम्—मारे जाने वाले का चिह्न, ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे मारे जाने वाले व्यक्ति को लाल वस्त्र पहनाए जाते थे अथवा इसी से मिलते जुलते किसी अन्य चिह्न से उस चिह्नित किया जाता था । मृच्छकटिक' नाटक मे चारुदत्त के शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया गया था तथा मालतीमाधवम्' नाटक में मालती को लाल वस्त्र ही पहिनाए गए थे ।

---

1 स्त्री 2 चिल्लाती है 3 अभिव्यक्ति=स्पष्टता 4 कहा जाता है ।

किङ्कर—आओ, कुमार शङ्खचूड ! इस बोलती हुई से तुम्हें क्या ? पुत्र-स्नेह से मोहित हुई हुई यह सच मुच ही राज कार्य को नहीं जानती।

शङ्खचूड—लो, मैं अभी आया।

किङ्कर—[आगे देख कर अपने आप] मैं इसे वध्य शिला के पास ले आया हूँ तो (अब) वध्य चिह्न दे दूँ।

नायक—यह वह स्त्री है। [शङ्खचूड को देख कर] निश्चय ही यह इस का बेटा होगा। तो रोती क्यों है ? [चारों ओर देख कर] मैं इस के भय का कोई कारण नहीं देख रहा हूँ। इन की यह बात चीत शुरु ही है। शायद (इस से) इस का परिचय मिल। तो वृक्ष के पीछे छिप कर सुनता हूँ। [वैसा करता है]

किङ्कर—[आसुओं सहित हाथ जोड़ कर]—कुमार शङ्खचूड ! "यह स्वामी की आज्ञा है" —यह समझ कर ऐसी निष्ठुर बात कहता हूँ।

प्रसक्त —प्र + √सञ्ज् + क्त—शुरु हुई है।

तद्विटप०—तद् + विटपान्तरित (विटपन अन्तरित —तृ० तत्पु०) + तावद् + शृणोमि—तो वृक्ष के पीछे छिपा हुआ सुनता हूँ।

कुमार मन्त्रयते—किङ्कर (दास) जो कुछ कहने लगा है शङ्खचड तो पहले ही उस स परिचित है। स्पष्ट ही यह वार्तालाप नायक को यह अवगत कराने के लिए है कि उस स्त्री के करुण विलाप का कारण क्या है ?

शङ्खचूड —भद्र ! कथय ।

किङ्कर —नागराजो वासुकिराज्ञापयति । नागलाओ वासुई आणवदि ।

शङ्खचूड —[शिरस्यञ्जलिं बद्ध्वा सादरम्] किमाज्ञापयति देव ?

किङ्कर —इद रक्तांशुकयुगल परिधाय आरोह वध्यशिला, येन रक्तांशुकमुप लक्ष्य गरुड आहारयिष्यति' इति । एद लत्तसुअजुअल परिहिअ आरुह वज्झसिल जएलत्तसुअ उवलक्खिअ गलुडो आहालइस्सदि त्ति ।

नायक -[श्रुत्वा] कथमसौ वासुकिना परित्यक्त ।

किङ्कर —कुमार ! गृहाणैतद्वसनयुगलम् ।

कुमाल ! गण्ह एद वसणजुअल

[इत्यर्पयति]

शङ्खचूड—[सादरम्] उपनय [गृहीत्वा] शिरसि स्वाम्यादेश ।

वृद्धा—[पुत्रस्य हस्ते वाससी दृष्ट्वा सोरस्ताडम्] हा वत्स ! इद खलु वज्रपात सन्निभ सम्भाव्यते । [मोह गता ।] हा वच्छ ! एद क्खु वज्जपादसण्णिभ समावीअदि ।

किङ्कर —आसन्ना गरुडस्याऽऽगमनवेला, तल्लघु गच्छामि । [इति निष्क्रान्त] आसण्णा गलुडस्स आगमणवेला, ता लहु गच्छामि ।

शङ्खचूड — अम्ब ! समाश्वसिहि !

वृद्धा —[समाश्वस्य सास्र] हा पुत्रक ! हा मनोरथशतलब्ध ! क्व पुनस्त्वा प्रेक्षिष्ये ? हा पुत्तअ ! हा मणोरहसदलद्ध ! कहि पुणो तुम पेक्खिस्स ? [कण्ठे गृह्णाति]

रक्तांशुकयुगलम्—रक्तयो अंशुकयो युगलम्—लाल वस्त्रो का जोडा ।

परिधाय - परि+$\sqrt{}$धा+ल्यप - पहन कर ।

सोरस्ताडम्–उरस ताड इति उरस्ताड तेन सहित यथा स्यात् तथा(क्रिया वि) —छाती पीटने के साथ ।

शङ्खचूड—भद्र ! कहो।
किङ्कर—नागराज वासुकि आज्ञा देते हैं।
शङ्खचूड—[सिर पर हाथ बांध कर, आदर सहित] देव क्या आदेश देते हैं ?
किङ्कर—इस लाल वस्त्रों के जोडे को पहन कर वध्य शिला पर चढ जाओ ताकि लाल वस्त्र को देख कर गरुड तुम्हें खा जाए।
नायक—[सुन कर]—कैसे यह वासुकि द्वारा (मरने के लिए) छोड दिया गया है।
किङ्कर—कुमार ! यह लाल वस्त्रों का जोडा ले लो।

[अर्पण कर देता है]

शङ्खचूड—[आदर सहित] लाओ। [ले कर] स्वामी की आज्ञा सिर माथे पर।
वृद्धा—[पुत्र के हाथों में दो वस्त्रों को देख कर, छाती पीटती हुई] हा पुत्र ! यह तो वज्रपात के समान प्रतीत होता है। [अचेत हो गई]
किङ्कर—गरुड के आने का समय समीप है, तो शीघ्र ही चलता हूँ।

[चला गया]

शङ्खचूड—माता ! धैर्य धारण करो।
वृद्धा—[धारज धर कर आंसुओं सहित] हा पुत्र ! सैंकडो मनोरथो से प्राप्त हुए (लाल) ! तुम्हें फिर कहाँ देखूँगी ? [गले लगाती है]।

वज्रपातसन्निभम्—वज्रस्य पात तेन सन्निभम्—वज्र के गिरने जैसा।
सम्भाव्यते—सम् + √भू + णिच + कर्मवाच्य—प्रतीत होता है।
आसन्ना—आ + √सद् + क्त—निकट।
मनोरथशतलब्ध—मनोरथाना शत तेन लब्धा—सैंकडो मनोरथों से प्राप्त हुए।

नायक —ओह नैर्घृण्य[1] गरुडस्य ! अपि च —

मूढाया मुहुरश्रुसन्ततिमुच कृत्वा प्रलापान बहून्
कस्त्राता[2] तव पुत्रकेति कृपण[3] दिक्षु[4] क्षिपन्त्या दृशम्[5] ।
अङ्के[6] मातुरवस्थित[7] शिशुमिम त्यक्त्वा घृणामश्नत[8]
चञ्चुर्नैव खगाधिपस्य हृदय वज्रेण मन्ये कृतम् ॥ ९ ॥

शङ्खचूड —[आत्मनोऽश्रूणि निवारयन्] अम्ब ! किमतिवैक्लव्येन ।

यैरत्यन्तदयापरैर्न विहिता वन्ध्याऽर्थिना[9] प्रार्थना,
यै कारुण्यपरिग्रहान्न गणित[10] स्वार्थं परार्थं प्रति ।
ये नित्य परदु खदु खितधियस्ते साधवोऽस्त गता,
मात ! सहर[11] बाष्पवेगमधुना कस्याग्रतो रुद्यते ? ॥ १० ॥

ननु समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

नैर्घृण्यम्—निर्घृणस्य भाव —निर्दयता ।

अन्वय —मूढाया मुहु अश्रुसन्ततिमुच 'क त्राता तव पुत्रक' इति बहून् प्रलापान् कृत्वा कृपणम् दिक्षु दृशम् क्षिपन्त्या मातु अङ्के अवस्थितम् इमम् शिशुम् घृणाम् त्यक्त्वा अश्नत खगाधिपस्य न चञ्चु हृदयम् एव वज्रेण कृतम्, मन्ये ॥ ९ ॥

अश्रुसन्ततिमुच —अश्रूणा सन्तति मुञ्चतीति तस्या (उपपद तत्पु०)—आँसू बहाती हुई का ।

क्षिपन्त्या —√क्षिप + शतृ + स्त्री + तृ०, एक वचन—फेंकती हुई द्वारा ।

अश्नत —√अश + शतृ + पु० + प० एकवचन—खाते हुए का ।

खगाधिप—खगानाम् अधिप (अधिक पाति इति)—पक्षियो का पालक, पक्षिराज ।

निवारयन् —नि + √वृ + णिच् + शतृ—दूर करता हुआ ।

---

1 मुहु =बार बार 2 त्राता=रक्षक 3 दीनता से 4 दिशाओं में 5 दृष्टि को 6 गोद में 7 ठहरे हुए को 8 घृणाम् =दया को 9 व्यर्थ निष्फल 10 परवाह की 11 रोक लो।

नायक—ओह ! गरुड की (इतनी) निर्दयता ! और भी—

मोहित हुई हुई बार बार अश्रु-समूह को छोड़ती हुई, बहुत से विलाप करती हुई 'हे पुत्र ! तुम्हारा कौन रक्षक है' —(यह कह कर) दिशाओं में दीनता से दृष्टि पात करती हुई माता की गोद में टिके हुए इस बालक को दया रहित (श० दया को छोड़ कर) हो कर खाते हुए पक्षि राज (गरुड) की चोञ्च ही नहीं (अपितु) हृदय (भी) वज्र से (बना हुआ है) —ऐसा मैं समझता हूँ।

शङ्खचूड–[अपने आंसुओं को पोंछता हुआ] माता ! अधिक व्याकुलता से क्या लाभ ? जिन अत्यन्त दयालु पुरुषों ने याचकों की प्रार्थना को निष्फल नहीं होने दिया (श० बनाया) जिन्हों ने करुणा करने (श० करुणा को स्वीकार कर के) परोपकार के लिए स्वार्थ की परवाह नहीं की जो सदा दूसरों के दुःख से दुःखी होने के स्वभाव वाले हैं वे सज्जन चल बसे। हे माता ! आंसुओं के वेग को रोको अब किस के आगे रो रही हो ?

धैर्य्य धारण करो धैर्य धारण करो।

अन्वय –यैः अत्यन्तदयापरैः अर्थिनां प्रार्थना वन्ध्या न विहिता, यैः कारुण्यपरिग्रहात् परार्थम् प्रति स्वार्थः न गणितः ये नित्यम् परदुःखदुःखितधियः, ते साधवः अस्तम् गताः। मातः ! अधुना बाष्पवेगम् संहर, कस्य अग्रतः रुद्यते ? ॥ १० ॥

अत्यन्तदयापरैः –अत्यन्त दयापरैः (दया परः येषां तैः—बहुव्री०)—अत्यन्त दयालु। विहिता—वि + $\sqrt{}$धा + क्त—की गई।

कारुण्यपरिग्रहात् –कारुण्यस्य (करुणाया भावः तस्य) परिग्रहात्—दया के अपनाने से। परार्थं प्रति — प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग।

परदुःखदुःखितधियः –परेषां दुःखानि तैः दुःखिताधियः येषां ते (बहुव्री०)—दूसरों के दुःख से दुःखी होने वाली बुद्धि है जिन के, वे।

वृद्धा—[सास्रम्] कथं समाश्वसिष्यामि, किमेकपुत्रक इति कृत्वा सानुकम्पेन नागराजेन प्रेषितोऽसि[1] ? हा ! कथमविच्छिन्ने जीवलोके मम पुत्रक स्मृत ? सर्वथाऽहमस्मि मन्दभाग्या । कहं समास्ससिस्सं ? किं एक्कपुत्तओ त्ति कदुअ माणुकम्पेण णाअराएण पेसिदोसि ? हा ! कहं अविच्छिण्णे जीअलोए मम पुत्तओ सुमिरदो ? सव्वधा अहं म्हि मदभग्ग । [मूर्च्छति]

नायकः—[सकरुणम्]

आर्त्तं कण्ठगतप्राणं, परित्यक्तं स्वबन्धुभिः ।

त्राये[2] नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः ? ॥ ११ ॥

तद्यावदुपसर्पामि ।

शङ्खचूडः—अम्ब ! सस्तम्भयाऽऽत्मानम्[3] ।

वृद्धा—हा पुत्रक ! यदा नागलोकपरिरक्षकेण वासुकिना परित्यक्तोऽसि, तदा कस्तेऽपरः परित्राणं[4] करिष्यति ? हा पुत्तअ ! जदा णाअलोअपरिरक्खएण वासुइणा परिच्चत्तोसि, तदा को दे अवरो परित्ताणं करिस्सदि ?

नायक —[उपसृत्य] नन्वहम् ।

वृद्धा—[नायकं दृष्ट्वा ससम्भ्रमम्[5] उत्तरीयेण पुत्रकमाच्छाद्य नायकमुपसृत्य जानुभ्यां[6] स्थित्वा] विनतानन्दन ! व्यापादय माम् । अहं ते नागराजनाहारनिमित्त परिकल्पिता[7] । विणदाणन्दण ! वावादेहि मं । अहं दे णाअराएण आहारणिमित्तं परिकप्पिदा ।

नायक —[सास्रम्] अहो पुत्रवात्सल्यम् ।

सानुकम्पेन- अनुकम्पया सह वर्तमानं तेन (बहुव्री०)—दया से युक्त ।

अविच्छिन्ने—न विच्छिन्ने (वि+√छिद्+क्त+सप्तमी, एक वचन)—नाश न होने पर ।

अन्वय—आर्त्तम् कण्ठगतप्राणम् स्वबन्धुभिः परित्यक्तम् एनम् यदि न त्राये, ततः मे शरीरेण कः गुणः ? ॥ ११ ॥

---

1. भेजे गए 2. रक्षा करता हूँ 3 रोको 4 रक्षा को 5 ससम्भ्रमम्—घबराहट से 6 घुटनों से 7. निश्चित की गई ।

वृद्धा—[आसुओं सहित] धैर्य कैसे धारण करूँ ? इकलौते बेटे हो—क्या यह सोच कर दया के कारण नागराज (वासुकि) ने तुम्हें भेजा है ? हा ! (शेष) प्राणी लोक के जीवित रहते हुए मेरा पुत्र कैसे याद किया गया ? मैं तो सब तरह से अभागिन हूँ। [मूर्छित हो जाती है]

नायक—[करुणा सहित]

दुःखी, मरणासन्न (शा० कण्ठ तक पहुँचे हुए प्राणों वाला) अपने बन्धुओं से त्यक्त इस को यदि न बचाऊँ तो मेरे शरीर से क्या लाभ ? तो पास चलता हूँ।

शंखचूड—माता ! अपने आप को संभालो।

वृद्धा—हा पुत्र ! जब नागलोक के रक्षक वासुकि ने ही तुम्हें त्याग दिया है तो दूसरा कौन तुम्हारी रक्षा करेगा ?

नायक—[पास आकर] निश्चय से मैं (रक्षा करूँगा)।

वृद्धा—[नायक को देखकर घबराहट से पुत्र को दुपट्टे से ढककर नायक के पास आकर घुटनों के बल ठहर कर] हे विनता के पुत्र (गरुड) ! मेरा वध करो नागराज ने आपके आहार के लिए मुझे निश्चित किया है

नायक [आसुओं सहित] ओह ! (स्तनी) पुत्र वत्सलता

कण्ठगतप्राणम् कण्ठं गताः प्राणाः यस्य स तम् (बहुव्री०)—कण्ठ को पहुँच गए हैं प्राण जिस के उसे **आच्छाद्य**–आ + $\sqrt{}$छद् + णिच् + ल्यप्–ढक कर।

विनतानन्दन विनतायाः नन्दन (ष० तत्पु०)—विनता को प्रसन्न करने वाले।

गरुड को विनतानन्दन के नाम से सम्बोधित कर के वृद्धा उस के मन में दया भाव उपजाने की चेष्टा करती है। उस का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार तुम्हारी मां विनता तुम्हें देख कर प्रसन्न हो उठती है वैसे ही मेरा पुत्र भी मेरे हृदय को आनन्दित करता है।

व्यापादय वि + आ + $\sqrt{}$पद् + णिच् + लोट् मध्यम पुरुष—मारो वध करो

विनतानन्दन परिकल्पिता हृदय की व्याकुलता एवं घबराहट के कारण वृद्धा ने सामने से आते हुए नायक को ही गरुड समझ लिया अतः पुत्र-स्नेह से प्रेरित हो कर उस ने उसे यह शब्द कहे।

अस्या विलोक्य मन्ये पुत्रस्नेहेन विक्लवत्वमिदम् ।
अकरुणहृदय करुणा कुर्वीत भुजङ्गशत्रुरपि ॥ १२ ॥

शङ्खचूड —अम्ब ! अलं त्रासेन । न नागशत्रु । पश्य—

महाहिमस्तिष्कविभेदमुक्तरक्तच्छटाचर्चितचण्डचञ्चु ।
क्वासौ गुरुत्मान ? क्व च नाम सौम्यस्वभावरूपाकृतिरेष साधु ?
॥ १३ ॥

वृद्धा—अह खलु तव मरणभीता सर्वमेव लोक गरुडमय पश्यामि । अहं खु तुज्झ मरणभीआ सव्व च्चेव लोअ गलुडमअ पक्खामि ।

नायक —अम्ब ! मा भैषी[1] । नवयमह विद्याधरस्त्वत्सुतसरक्षणार्थ मेवायात ।

वृद्धा—[सहर्षं] पुत्रक ! पुन पुनरेव भण । पुत्तअ ! पुणो पुणो एव्व भण ।

नायक —अम्ब ! किं पुन पुनरभिहितेन[2] ? ननु कर्मणैव सम्पादयामि[3] ।

अन्वय –पुत्रस्नहेन अस्या इदम् विक्लवत्वम् विलोक्य अकरुणहृदय भुजङ्गशत्रु अपि करुणां कुर्वीत ॥ १२ ॥

विक्लवत्वम् —विक्लवस्य भाव (विक्लव + त्व)—व्याकुलता ।

अकरुणहृदय —अकरुणम् (न विद्यते करुणा यस्य तत्—बहुव्री०) हृदय यस्य स (बहुव्री०) कठोर हृदय वाला ।

अन्वय —महाहिमस्तिष्कविभेदमुक्तरक्तच्छटाचर्चितचण्डचञ्चु असौ गरुत्मान् क्व ? सौम्यस्वभावरूपाकृतिः च एष साधु नाम क्व ? ॥१३॥

महा०—महान्त ये अहय तपा यानि मस्तिष्काणि तेषां विभेदेन मुक्ता या रक्तस्य छटा ताभि चर्चिता चण्डा च चञ्चु यस्य स (बहुव्री०)—बड़े बड़े नागो के सिरो को तोडने से निकले हुए रक्त की छटा से लथपथ हुई तथा भयकर चोच है जिसकी ।

---

1 डरो 2 अभिहितेन—कहने से 3 करता हूँ ।

पुत्र-स्नेह के कारण इसकी इस व्याकुलता को देखकर, मैं समझता हूँ कि कठोर हृदय नाग शत्रु (गरुड) भी दया करेगा।

शङ्खचूड़--माता ! डरो मत। (यह) गरुड नहीं है। देखो--

कहाँ तो बडे बडे नागों के सिरो को तोडने से निकले हुए रक्त की छटा से लथपथ हुई भयकर चोंच वाला वह गरुड और कहाँ सौम्य स्वभाव, सौन्दर्य (तथा) आकृति वाला यह सज्जन ?

वृद्धा--तुम्हारी मृत्यु से डरी हुई मैं तो सम्पूर्ण ससार को ही गरुड मय देख रही हूँ।

नायक--माँ ! डरो मत। यह मैं विद्याधर तुम्हारे पुत्र की रक्षा के लिए ही आया हूँ।

वृद्धा--[हर्ष पूर्वक] बटा ! बार बार ऐसा कहो।

नायक--मा ! बार-बार कहने स क्या (लाभ) ? सचमुच कार्य रूप में ही (एसा) करूँगा।

सौम्यस्वभावरूपाकृतिः--सौम्या स्वभावरूपाकृतय (स्वभावश्च रूपश्च आकृतिश्च--द्वद्व) यस्य स (बहुव्री०)--सौम्य स्वभाव सौन्दर्य तथा आकृति है जिसकी।

महाहि साधु"-- दो क्व शब्दो का प्रयोग महान् अन्तर दिखाने के लिए किया जाता है। मुकाबले के लिए देखो-- 'क्व बत हरिणकाना जीवित च अतिलाल। क्व च निशितनिपाता वज्रसारा शरास्ते।"--शाकुन्तल

गरुडमयम्--गरुड एव गरुडमय तम् (गरुड+मयट् स्वरूपार्थे)।

मा भैषी--मा और मास्म के साथ लुङ लकार लोट् के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ऐसी दशा में लुङ के आगम 'अ' का लोप हो जाता है। इसी लिए यहाँ √भी के लुङ् मध्यम पु० एक वचन के 'अभैषी' के 'अ' का लोप हो गया है। 'मास्म गम पार्थ' तथा "मा शुच" इसी नियम के अन्य उदाहरण हैं।

वृद्धा—[शिरस्यञ्जलिं बद्ध्वा] पुत्रक ! चिरं जीव । पुत्तअ ! चिरं जीअ ।

नायक —

ममैतदम्बार्पय वध्यचिह्नं प्रावृत्य यावद्विनताऽऽत्मजाय[1] ।
पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयितुं ददामि ॥ १४ ॥

वृद्धा —[कर्णौ पिधाय] प्रतिहतममङ्गलम् । त्वमपि शङ्खचूडनिर्विशेषः पुत्र अथवा शङ्खचूडादप्यधिकतरः, य एव बन्धुजनपरित्यक्तमपि पुत्रकं मे शरीरप्रदानेन रक्षितुमिच्छसि । पडिहदं अमंगलं । तुमं पि सङ्खचूडणि व्विसेसो पुत्तो । अहवा सङ्खचूडादो वि अहिअअरो जो एव्व बन्धुजणपरि च्चत्तं वि पुत्तअं सरीरप्पदाणेण रक्खिदुमिच्छसि ।

शङ्खचूड - अहो ! जगद्विपरीतमस्य महासत्त्वस्य चरितम् । कुतः ?—

विश्वामित्रः श्वमांसं श्वपच इव पुरा[2]ऽभक्षयद्यन्निमित्तं,
नाडीजङ्घो निजघ्ने कृततदुपकृतिर्यत्कृते गौतमेन ।

अन्वय —अम्ब ! एतत् वध्यचिह्नम् मम अर्पय यावत् प्रावृत्य विनतात्मजाय ते पुत्रस्य जीवितरक्षणाय स्वदेहम् आहारयितुं ददामि ॥१४॥

प्रावृत्य—प्र + आ + √वृ + ल्यप्—ढक कर ।

जीवितरक्षणाय —जीवितस्य रक्षणाय (ष० तत्पु०)–जीवन की रक्षा के लिए ।

पिधाय—अपि + √धा + ल्यप्— बन्द करके ढक कर । अपि के अ का लोप हो गया है ।

प्रतिहतममङ्गलम् —अमङ्गल नष्ट हो । वृद्धा ऐसे सुभाव का सुनना भी पाप समझती है ।

शङ्खचूडनिर्विशेष —शङ्खचूडेन निर्विशेष (तृ० तत्पु०)—शङ्खचूड जैसा ।

निर्विशेष —निर्गत विशेष यस्मात् सः —निकल गया है फरक जिसका वह सदृश ।

---

1 विनता के पुत्र (गरुड) के लिए 2 पहले प्राचीन काल में ।

वृद्धा — [सिर पर अञ्जलि बाँध कर] पुत्र ! चिरकाल तक जीओ।

नायक —

मां ! यह वध्य चिह्न मुझे द दो ताकि इसे ओढ़कर तुम्हारे पुत्र की प्राण रक्षा के लिए अपने शरीर को भोजन के लिए गरुड को भेंट कर दूँ।

वृद्धा —[दोनों कान ढक कर] अमङ्गल का नाश हो। तुम भी शङ्खचूड के समान पुत्र हो, बल्कि शङ्खचूड स भी बढ़कर हो जो बन्धुजनों स भी परित्यक्त मेरे पुत्र को (अपना) शरीर देकर बचाना चाहते हो।

शङ्खचूड—अहा ! इस महा प्राणी का आचरण विश्व स विपरीत है।

क्योंकि—

जिन (प्राणों) क लिए प्राचीन काल में विश्वामित्र ने चाण्डाल की तरह कुत्ते के मास को खाया था, जिन के लिए गौतम ने अपना उपकार करने वाले नाडीजङ्घ का वध किया था—

बन्धुजनपरित्यक्तम्—बन्धुजनेन परित्यक्तम् (तृ० तत्पु०)—बन्धुजनों से छोड़े हुए।

जगद्विपरीतम्—जगत विपरीतम्—विश्व के प्रतिकूल संसार से उलट।

महासत्त्वस्य—महत् सत्व (सत भाव सत्त्वम्) यस्य स (बहुव्री०)—महान् स्वभाव है जिसका।

अन्वय—यन्निमित्त पुरा श्वपच इव विश्वामित्र श्वमासम् अभक्षयत् यत्कृते कृततदुपकृति नाडीजङ्घ गौतमेन निजघ्ने, यदर्थम् अयम् काश्यपस्य पुत्र तार्क्ष्य प्रतिदिनम् उरगान् अत्ति, तान् एव प्राणान् कृपया तृणम् इव य साधु परार्थम् ददाति ॥१५॥

श्वमांसम्—शुन. मासम् (ष० तत्पु०)—कुत्ते के मास को।

श्वपच —श्वमासम् पचतीति श्वपच. —कुत्ते के मास को पकाने वाला, चाण्डाल। निजघ्ने—नि+√हन्+लिट्+कर्मवाच्य—मारा गया।

कृततदुपकृति —कृता तस्य उपकृति येन स. (बहुव्री०)—किया गया है उसका उपकार जिससे, वह।

पुत्रोऽय काश्यपस्य प्रतिदिनमुरगानत्ति तार्क्ष्यो यदर्थं,
प्राणास्तानेव साधुस्तृणमिव कृपया य परार्थं ददाति ॥१५॥

[नायकमुद्दिश्य] भो महासत्त्व [1] त्वया दर्शितैवाऽऽत्मप्रदानव्यवसाया न्निर्व्याजा मयि दयालुता। तदलमनेन निर्बन्धेन[2]।

काश्यपस्य —काश्यप का गरुड के पिता का नाम काश्यप था।

प्रतिदिनम—दिने दिने (अव्ययी०)—रोज-रोज।

अत्ति—√अद्+लट—खाता है।

तार्क्ष्य —तृक्षस्य अपत्य पुमान्, तृक्ष का पुत्र (गरुड)। तृक्ष, काश्यप का दूसरा नाम था। अत एक ही पक्ति में काश्यपस्य पुत्र तथा तार्क्ष्य का प्रयोग समुचित प्रतीत नही होता।

विश्वामित्र ददाति—इस श्लोक में यह बताया गया है कि जीमूतवाहन का स्वभाव अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियो से कितना भिन्न है। जहाँ अन्य बडे लोग अपने प्राणो की रक्षा के लिए बड से बड पाप एव अनुचित काम करने से नही झिझकते वहाँ परोपकार भावना से प्रेरित होकर जीमूतवाहन उन्ही प्राणो को तिनके की तरह बलिदान करने के लिए निश्चय किए बैठा है।

पौराणिक व्यक्तियो की जिन जीवन घटनाओ की ओर इस श्लोक में सकेत किया गया है उनका सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

विश्वामित्र ०—दुर्भिक्ष के दिनो में भूख स पीडित होकर विश्वामित्र भोजन के लिए जगह जगह घूम रहा था। चलत चलते चाण्डालो के एक गाव में जा पहुँचा। वहाँ एक घर में उसे कुत्ते के मास का एक टुकडा दीख पडा। आधी रात के समय वह उस खाने ही लगा था कि एक चाण्डाल ने उसे इस हीन वृत्ति स रोकने की चेष्टा की किन्तु विश्वामित्र ने उसकी बात को सुनी अनसुनी करके मास का टुकडा खा ही लिया।

1 उरगान्—सापों को 2 आग्रह शि ।

जिनके लिए (अब) काश्यप का यह पुत्र गरुड प्रतिदिन साँपों को खाता है, उन्हीं प्राणों को जो यह सज्जन कृपा से दूसरे के लिए तिनके की तरह बलिदान कर रहा है।

[नायक की ओर संकेत करके] हे महापुरुष ! आप ने आत्म प्रदान (अपने आप को दे डालने) के निश्चय से मेरे ऊपर छल-हीन करुणा का प्रदर्शन तो कर ही दिया है। अतः इस आग्रह को छोड़ दीजिए।

नाडीजङ्घ गौतमेन--गौतम नाम का एक बूढ़ा ब्राह्मण धन के लिए मारा मारा फिर रहा था। रास्ते में नाडीजङ्घ नाम के एक बकराज से उसकी भेंट हो गई। नाडीजङ्घ ने उसकी धन की अभिलाषा को जान कर उसे अपने एक मित्र धनी राक्षस विरूपाक्ष के पास भेज दिया। वहाँ से उसे बहुत सा धन प्राप्त हुआ। गौतम जब वापिस लौट रहा था तो रास्ते में उसे भूख ने बहुत अधिक सताया। रात का समय था। नाडीजङ्घ अपने स्थान पर सो रहा था। उसके उपकार को सर्वथा भुला कर गौतम ने उसे मार डाला और उसे खा कर अपनी भूख को शान्त किया।

आत्मप्रदानव्यवसायात् आत्मनः प्रदानं तस्य व्यवसायः तस्मात् आत्म समर्पण के निश्चय से।

निर्व्याजा-- निर्गतः व्याजः यस्याः सा (बहुव्री०) निकल गया है छल जिसका, निष्कपट।

दयालुता--दया अस्य अस्ति इति दयालुः तस्य भावः (दया+आलुच +तल्)।

पश्य—

जायन्ते च म्रियन्ते च मादृशा[1] क्षुद्रजन्तव ।
परार्थे बद्धकक्षाणा त्वादृशामुद्भव[2][3] कुत ? ॥ १६ ॥

तत् किमनेन निर्बन्धन ? मुच्यतामयमध्यवसाय[4] ।

नायक —शङ्खचूड ! न मे चिराल्लब्धावसरस्य परार्थसम्पादनामनोरथस्यान्त रायम्[5] कर्त्तुमर्हसि । तदल विकल्पेन[6] । दीयतामेतद् वध्यचिह्नम् ।

शङ्खचूड —भो महासत्त्व ! किमनेन वृथाऽऽत्मायासेन ? न खलु शङ्खधवल शङ्खपालकुल शङ्खचूडो मलिनीकरिष्यति । यदि ते वयमनुकम्पनीया, तदियमस्मद्विपत्तिविक्लवा न यथा जीवित जह्यात् तथाऽभ्युपायश्चिन्त्य ताम् ।

नायक.—किमत्र चिन्त्यते ? चिं तत एवाभ्युपाय । स तु त्वदायत्त ।

अन्वय—मादृशा क्षुद्रजन्तव जायन्ते च म्रियन्ते च, परार्थे बद्धकक्षाणाम् त्वादृशामुद्भव कुतः ॥ १६ ॥

क्षुद्रजन्तव —क्षुद्राश्च ये जन्तव (कर्मधा०)—तुच्छ प्राणी ।

बद्धकक्षाणाम्—बद्ध कक्ष यै (बहुव्री०) तेषाम्—बाँध रखी है कमर जिन्होने उनका ।

लब्धावसर —लब्ध अवसर येन स (बहुव्री०) तस्य—मिला है अवसर जिसे, उसका ।

परार्थसम्पादनामनोरथस्य—पदार्थस्य (परेषाम् अर्थस्य) सम्पादना एव मनोरथ यस्य (बहुव्री०), तस्य—परोपकार करने का मनोरथ है जिसका, उसका ।

आत्मायासेन—आत्मन आयासन (ष० तत्पु०)—अपने को कष्ट देने से, अलम् के साथ तृतीया का प्रयोग हुआ है ।

---

1 मेरे जैसे 2 त्वादृशाम्—तुम्हारे जैसों का 3 उद्भव—जन्म 4 अध्यवसाय—निश्चय 5 अन्तरायम्—बाधा को 6 सोच विचार से ।

देखिए —

मेरे जैसे तुच्छ प्राणी पैदा होते और मरते ही रहते हैं। परोपकार के लिए कमर कसे हुए आप जैसे (महापुरुषों) का जन्म कहाँ ?

अतः इस हठ को रहने दो। इस निश्चय को छोड़ दो।

नायक—शंखचूड ! चिरकाल पश्चात् उपलब्ध अवसर वाले, परोपकार करने के मेरे मनोरथ के (मार्ग में) तुम्हें बाधा नहीं डालनी चाहिए। अतः सन्देह मत करो। यह वध्य-चिह्न (मुझे) दे दो।

शङ्खचूड़—हे महापुरुष ! अपने आपको इस प्रकार व्यर्थ कष्ट देने में क्या लाभ ? शङ्ख की तरह सफेद शंखपाल के कुल को शङ्खचूड निश्चय ही कलङ्कित नहीं करेगा। यदि आप हम पर दया करना चाहते हैं, तो वैसा उपाय सोचिए, जिस से हमारी विपत्ति से व्याकुल यह मा प्राणों को न त्याग दे।

नायक— यहाँ सोचने की क्या बात है ? उपाय तो सोचा ही हुआ है। वह तुम पर निर्भर है।

शङ्खधवलम् — शङ्खवत् धवलम् — शङ्ख की तरह सफेद।

शङ्खपाल — नागवंशों के आठ मुख्य प्रवर्तकों में से एक का नाम शङ्खपाल है। अनन्त, वासुकि, शेष, तक्षक आदि अन्य नाम हैं।

मलिनीकरिष्यति— अमलिन मलिन सम्पद्यमान करिष्यति (मलिन + च्वि + √कृ + लृट्—मैला बनाएगा, कलङ्कित करेगा।

अस्मद्विपत्तिविक्लवा: —अस्माकं या विपत्तिः तया विक्लवा —हमारी विपत्ति से व्याकुल।

जह्यात्—√हा + विधि० —छोड़ दे।

त्वदायत्तः —त्वयि आयत्त (स० तत्पु०)—तुम पर निर्भर।

शङ्खचूड—कथमिव ?

नायकः—

> म्रियते म्रियमाणे या त्वयि, जीवति जीवति ।
> ता यदीच्छसि जीवन्तीं रक्षाऽऽत्मानं ममाऽसुभिः ॥ १७ ॥

अयमभ्युपायः । तदर्पय त्वरितं वध्यचिह्नं, यावदनेनाऽऽत्मानं प्रच्छाद्य वध्यशिलामारोहामि । त्वमपि जननीं पुरस्कृत्याऽस्माद्देशान्निवर्तस्व । कदाचिदम्बाऽवलोक्य सन्निकृष्टं घातस्थानं स्त्रीस्वभावकातरत्वेन जीवितं जह्यात् । किं न पश्यसि भवानिदं विपन्नपन्नगाऽनेककङ्कालसङ्कुलं महाश्मशानम् । तथाहि—

अन्वय—या त्वयि म्रियमाणे म्रियते, जीवति जीवति, यदि ताम् जीवन्तीम् इच्छसि, (तदा) मम असुभिः आत्मानम् रक्ष ॥ १७ ॥

म्रियमाणे—√मृ+शानच्+सप्तमी एक वचन—मरने पर।

म्रियमाणे त्वयि—तुम्हारे मर जाने पर, (भाव सप्तमी का प्रयोग हुआ है)।

जीवति—√जीव्+शतृ+स० एक वचन—जीने पर।

असुभिः—असु का तृ० बहुवचनान्त रूप। असु' तथा इसके पर्यायवाची शब्द प्राण के रूप सदा पु० बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं।

प्रच्छाद्य—प्र+√छद्+णिच्+ल्यप्—ढक कर।

पुरस्कृत्य—पुरस्+√कृ+ल्यप्—आगे करके।

अस्मात्॰—अस्मात्+देशात्+निवर्तस्व—इस स्थान से लौट जाओ।

सन्निकृष्टम्—सम्+नि+√कृष्+क्त—निकट आया हुआ।

शङ्खचूड—सो कैसे ?

नायक—जो तुम्हारे मरने पर मरती है, जीवित रहने पर जीती है, उस को यदि जीवित रखना चाहते हो, तो मेरे प्राण से अपनी रक्षा करो।

यह उपाय है। तो शीघ्र ही मुझे वध्य चिह्न दे दो, ताकि अपने आप को इस से ढक कर वध्य शिला पर चढ़ूँ। तुम भी माता को आगे कर के इस स्थान से लौट जाओ। कहीं मा, पास ही में वध स्थान को देख कर स्त्री स्वभाव-सुलभ भीरुता से प्राण(न) त्याग दे। क्या आप मरे हुए नागों के अनेक कङ्कालों (अस्थि-पञ्जरों) से भरे हुए महान् मरघट को देख नहीं रहे हो ? जब कि—

स्त्रीस्वभावकातरत्वेन—स्त्रियाः स्वभावः स्त्रीस्वभावः तस्य कातरत्वेन—स्त्री के स्वभाव की भीरुता के कारण।

विपन्नपन्नगाऽनेककङ्कालसङ्कुलम्—विपन्नाः (वि + $\sqrt{}$पद् + क्त) ये पन्नगाः तेषाम् अनेके ये कङ्कालाः तैः सङ्कुलम्—मरे हुए साँपों के अनेक कङ्कालों से भरे हुए (श्मशान) को।

चञ्चच्चञ्चूद्धृतार्द्धच्युतपिशितलवग्रासंसवृद्धगर्द्धै-[1][2][3][4][5]
र्गृद्धैरारब्धपक्षद्वितयविधुतिभिर्बद्धसान्द्रान्धकारे ।
वक्त्रोद्वान्ता पतन्त्यश्छमिति शिखिशिखाश्रेण्योऽस्मिन् शिवाना
मस्रस्रोतस्यजस्रस्रुतबहुलवसावासविस्रे स्वनन्ति ॥ १८ ॥[6][7][8][9][10][11][12][13]

शङ्खचूड.—कथ न पश्यामि ?—

अन्वय —चञ्चच्चञ्चूद्धृतार्द्धच्युतपिशितलवग्राससंवृद्धगर्द्धै आरब्धपक्षद्वितय विधुतिभि गृद्धै बद्धसान्द्रान्धकारे अस्मिन् अजस्रस्रुतबहुलवसावासविस्रे अस्रस्रोतसि शिवानाम वक्त्रोद्वान्ता शिखिशिखाश्रेण्य पतन्त्य छमिति स्वनन्ति ॥ १८ ॥

चञ्चत् गर्द्धै —चञ्चती या चञ्चु तया उद्धृत (अथ च) अर्द्धच्युत य पिशितस्य लव , तस्य ग्रासे संवृद्ध गर्द्ध येषाम् (बहुव्री०) तै —लपलपाती हुई चोच से उठाए गए तथा आध गिरे हुए मांस के टुकडे के ग्रास में बढी हुई लालसा है जिन की उन (गीधो) से ।

उद्धृत —उत्+√धृ+क्त —उठाया गया ।

अर्धच्युत —अर्धांशात् च्युत (प० तत्पु०)—आधा गिरा हुआ ।

संवृद्ध —सम्+√वृध+क्त—बढा हुआ ।

आरब्धपक्षद्वितयविधुतिभि —आरब्धा पक्षयो द्वितयस्य विधुतय य (बहुव्री०) तै —आरम्भ की गई है पखो के जोडे की फडफडाहट जिन से उन (गीधो) से ।

बद्धसान्द्रान्धकारे बद्ध सान्द्र अन्धकार यस्मिन् (बहुव्री०) यस्मिन्—बना दिया गया है घना अन्धकार जिस में एसे (श्मशान) में ।

वक्त्रोद्वान्ता —वक्त्रेभ्य उद्वान्ता (उत्+वम्+क्त)—मुखो से निकलते हुए (अग्नि की ज्वालाओ के समूह) ।

1 चञ्चत्—लपलपाती 2 मास 3 टुकडा 4 लुकमा खाना 5 गर्द्ध =लालच 6 शिवानाम् =गीदडियो के 7 अजस्र=लगातार 8 बही हुई 9 बहुत सी 10 चर्बी 11 मस्तक 12 दुर्गन्धित 13 शब्द करते हैं ।

लपलपाती हुई चोंच से उठाए गए तथा आधे गिरे हुए मांस के टुकड़ों को खाने के लिए बढ़ी हुई लालसा वाले गीधों ने दोनों पंखों की फड़फड़ाहट को शुरू कर के घने अन्धकार से भर दिया है जिसे, ऐसे (मरघट) में, निरन्तर बहती हुई बहुत सी चर्बी के सम्पर्क से दुर्गन्धित रक्त की धार में गीदड़ों के मुख से निकली हुई अग्नि की लपटों के गिरते हुए समूह 'छम छम' का शब्द कर रहे हैं।

शंखचूड़—क्यों नहीं देख रहा हूँ ?

पतन्त्य.—√पत्+शतृ+स्त्री०+बहुवचन—गिरती हुई (ज्वालाओं के समूह)
छमिति—छम्+इति—छम' 'छम' का शब्द।
शिखिशिखाश्रेण्य—शिखिन शिखाना श्रेण्य—अग्नि की ज्वालाओं के समूह शृगालों को प्राय आग उगलते हुए वर्णन किया गया है अत उन्हें 'उल्कामुख' भी कहते हैं।
असृक्स्रोतसि—असृजस्य स्रोत तस्मिन् खून की धार में।
अजस्रस्फुटबहलवसावासविस्रे—अजस्र स्रु ता या बहुला वसा तया य: वास: तेन विस्रा, तस्मिन्—निरन्तर बहती हुई बहुत सी चर्बी के सम्पर्क से दुर्गन्धित (खून की धार) में।

श्लोक का भावार्थ—श्मशान भूमि में बहुत से गीध हैं। वे अपनी लपलपाती चोंच से मांस के टुकड़ों को उठाते हैं किन्तु उठाते समय जो टुकड़े नीचे गिर जाते हैं उन्हें खाने के लिए उन की लालसा बढ़ जाती है और वह अपने पंखों को फड़फड़ाने लगते हैं। इन पंखों की फड़फड़ाहट से श्मशान अन्धकारमय हो गया है। मरघट में गीदड़ियां भी हैं। उन के मुँह से आग की लपटें निकलती हैं और छम छम का शब्द करती हुई खून की उस धार में गिरती हैं जिस में से लगातार बहती हुई चर्बी के कारण दुर्गन्ध आ रही है।

यह श्लोक भीभत्स रस का अच्छा उदाहरण है।

प्रतिदिनमहिनाऽऽहारेण विनायकाऽऽहितप्रीति ।
शशिधवलास्थिकपाल वपुरिव रौद्र श्मशानमिदम् ॥ १६ ॥

नायक —शङ्खचूड ! तद्गच्छ किमेभि सामीप्यासं ?

शङ्खचूड —आसन्न खलु गरुडस्याऽऽगमनसमय । [मातुरग्रतो जानुभ्या स्थित्वा] अम्ब ! त्वमपि निवर्तस्वेदानीम[1] ।

समुत्पत्स्यामहे मातर्यस्या यस्या गतौ[2] वयम् ।
तस्या तस्या प्रियसुते ! माता भूयास्त्वमेव न[3] ॥ २० ॥

अन्वय —प्रतिदिनम् अहिनाहारेण विनायकाऽऽहितप्रीति शशिधवलास्थिकपाल इद श्मशान रौद्रम् वपुरिव ॥ १६ ॥

प्रतिदिनम्—दिने दिने (अव्ययी०) ।

प्रतिदिनम् इदम्—इस श्लोक में श्मशान की उपमा महादेव के शरीर से दी गई है। इन के श्लेषात्मक होने से इन के दो दो अर्थ निकलते हैं एक श्मशान के पक्ष में है तथा दूसरा शिवजी के शरीर के पक्ष मे।

अहिनाऽऽहारेण—(१) आहार रूप अर्थात् भोजन बने हुए साप से ।
(२) हार बने हुए साँप से ।

विनायकाऽऽहितप्रीति—(१) वीना (=पक्षीणा) नायक तस्य आहिता प्रीति येन स —गरुड को दी गई है प्रसन्नता जिस से अर्थात् गरुड को सन्तोष देने वाला (श्मशान) ।
(२) विनायक (=गणेश) को आनन्द देने वाल (महादेव का शरीर) ।

शशिधवलाऽस्थिकपालम्—(१) शशिवत् धवलानि अस्थीनि कपालानि च यस्मिन्—चाद की तरह सफेद हड्डियो और खोपडियो वाला (श्मशान)
(२) शशी च धवलास्थिकपालानि च यत्र—चन्द्रमा तथा सफेद हड्डियो वाली खोपडियो वाला (महादेव का शरीर) ।

---

1 निवर्तस्व—लौट जाओ 2 योनो में 3 हमारी ।

प्रतिदिन सापो के खाने मे पक्षियो के नेता (गरुड) को प्रसन्न करने वाला चन्द्रमा के सफेद हड्डियो तथा खोपडियो वाला यह मरघट महादेव के शरीर की तरह है क्योंकि महादेव का शरीर भी सदा हार रूपी साप से युक्त विनायक (गणेश) को प्रसन्न करने वाला तथा चन्द्रमा और सफेद हड्डियो वाली खोपडियो का धारण करने वाला है

नायक—शखचूड ! तो जाओ इन सान्त्वना वाली बातो से क्या लाभ ?

शखचूड—गरुड के आने का समय निकट ही है [माता के प्रणाम करके हाथ जोड कर] मा ! अब तुम भी लौट जाओ।

मा ! जिस जिस योनि मे हम जन्म ले उस उस (योनि) में हे पुत्र का प्यार करने वाली ! तुम ही हमारी माता बनो।

रौद्रम्—रुद्रस्य इद रौद्रम्– महादेव का।

सामोपन्याय साम्न उपन्यास समझाने बुझाने के प्रकाश मे।

आसन्न – आ + $\sqrt{}$सद् + क्त निकट

अन्वय – प्रियसुते ! मात ! यस्याम् गतौ वयम् समुत्पत्स्यामहे तस्याम् तस्याम् गतौ त्वमेव न माता भूया ॥ २० ॥

समुत्पत्स्यामहे—सम् + उत् + $\sqrt{}$पद् + लृट्—पैदा होंगे

प्रियसुते—प्रिय सुत यस्या तत्सम्बोधने (बहुव्रीहि) पुत्र है प्यारा जिस का ऐसी हे (माता !)

वृद्धा—[सास्र] कथमस्य पश्चिमं[1] वचनम् ? । पुत्रक ! न खलु त्वामुज्झित्वा[2] मे पादावन्यतो वहतस्तदिहैव त्वया सह स्थास्यामि। वह पच्छिम स वग्रण ? : पुत्तग्र ! ण क्खु तुम उज्झिग्र मे पाग्रा ग्रण्णदो वहंति । इह ज्जेव्व तुए सह चिट्ठिस्स ।

शङ्खचूडः—[उत्थाय] यावदहमप्यदूरे भगवन्त दक्षिणगोकर्णं प्रदक्षिणीकृत्य[3] स्वाम्यादेशमनुतिष्ठामि[4] ।

[उभौ निष्क्रान्तौ]

नायक —कष्टम् । न सम्पन्नमभिलषितम्[5] । तत्कोऽत्राभ्युपाय ?

कञ्चुकी —[तरसा प्रविश्य] इद वासोयुगम् ।

नायक —[दृष्ट्वा सहर्षमात्मगतम्] दिष्टया सिद्धमभिवाञ्छितमनेनातर्कितोपनतेन रक्तांशुकयुगलेन ।

कञ्चुकी—इद वासोऽयुग देव्या मित्रावसुजनन्या कुमाराय प्रेषितम्[7] । तदेतत् परिधत्ता कुमार ।

दक्षिणगोकर्णम्—दक्षिण के गोकर्ण महादेव को । कुल बारह गोकर्ण—महादेव के स्थान–माने जाते हैं । जिस गोकर्ण की ओर यहाँ सकेत है वह वर्तमान केरल राज्य में मालाबार के समुद्र तट पर स्थित है । दक्षिण दिशा में होने के कारण ही इसे दक्षिण गोकर्ण कहा गया है। नेपाल में स्थित गोकर्ण को 'उत्तर गोकर्ण' के नाम से पुकारा जाता है ।

वासोयुगम्—वाससो युगम् (ष० तत्पु०)—वस्त्रों का जोडा ।

तत्को वासोयुगम्—नायक तथा कञ्चुकी के इस वार्तालाप में लेखक ने पारिभाषिक रीति 'पताका-स्थान' का प्रयोग किया है । द्व्यर्थक अथवा श्लिष्ट शब्द के प्रयोग के कारण यदि वहाँ प्रधान अर्थ से भिन्न कोई अन्य

---

1 अन्तिम 2 छोड़ कर 3 प्रदक्षिणा करके 4 पालन करता हूँ 5 पूरा हुआ 6 अभिवाञ्छितम्—मनोरथ 7 भेजा गया ।

[चरणों में गिरता है]

वृद्धा—[आसूर्या सहित] किस तरह ये इस के अन्तिम शब्द है ? पुत्र ! तुम्हें छोड़ कर मेरे चरण कहीं और नहीं चलते, अत यहीं तुम्हारे पास ठहरूँगी।

शालवृद्ध—[उठ कर] अब मैं पास ही दक्षिण (में स्थित) भगवान् गोकर्ण की प्रदक्षिणा कर के स्वामी की आज्ञा का पालन करता हूँ।

[दोनों चले गए]

नायक—दुःख है। मनोरथ पूरा नहीं हुआ। तो यहाँ क्या उपाय किया जाए?

कञ्चुकी—[शीघ्रता से प्रवेश कर के] यह वस्त्रों का जोड़ा है।

नायक—[देख कर, हर्ष पूर्वक अपने आप] सौभाग्य से सहसा प्राप्त हुए इस लाल वस्त्रों के जोड़े से मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया है।

कञ्चुकी—यह वस्त्रों का जोड़ा, देवी मित्रावसु की जननी ने कुमार के लिए भेजा है, अत कुमार इसे पहन लें।

अर्थ व्यञ्जित होता हो जिस से बाद में आने वाली घटनाओं का सम्बन्ध हो तो उसे "पताका स्थान" कहते हैं। यहां नायक सहज ही यह प्रश्न करता है कि मनोरथ-पूर्ति के लिए अब क्या उपाय किया जाए? कञ्चुकी ने सहसा उपस्थित हो कर लाल वस्त्र भेंट करते समय स्वाभाविक रूप से जो इदवास-युगम् के शब्द कहे हैं वह नायक के प्रश्न का उत्तर बन गया है क्योंकि लाल वस्त्रों का जोड़ा ही परोपकार सिद्धि के कार्य में उपाय रूप बन जाता है।

यहां पर एक बात विशेष रूप से खटकती है। कञ्चुकी को भला यह कैसे मालूम हुआ कि नायक श्मशान भूमि में है? यदि उसे यह मालूम हो भी गया था तो उसे मङ्गलमय उपहार को ऐसे अशुभ स्थान पर भेंट करना कहां तक समुचित कहा जा सकता है? ऐसा मालूम होता है कि कथा के विकास के लिए लेखक को कोई अन्य साधन नहीं दीख पड़ा, अत उस ने इस असंगत ढंग को अपनाया है।

अतर्कितोपनतेन—न तर्कितम् उपनतम् च बिना सोचे प्राप्त हुए।

परिधत्ताम्—परि+ √धा (आत्मने०) + लोट् + प्रथम पु० एक वचन धारण करें।

नायक —[सादरम्] उपनय।
कञ्चुकी—[उपनयति।]
नायक —[गृहीत्वाऽऽत्मगतम्] सफलीभूतो मे मलयवत्या पाणिग्रह[1]।
[प्रकाशम्] कञ्चुकिन् ! गम्यताम्, मद्वचनादभिवादनीया[2] देवी।
कञ्चुकी—यथाज्ञापयति कुमार। [इति निष्क्रान्त]

वासोयुगमिद रक्त[3] प्राप्ते काले समागतम्।
महतीं प्रीतिमाधत्ते परार्थे देहमुज्झत ॥ २१ ॥

[दिशोऽवलोक्य]। यथाऽय चलितमलयाचलशिखरशिलासञ्चय प्रचण्डो नभस्वान्[4], तथा तर्कयामि[5], आसन्नीभूत खलु पक्षिराज इति। तथाहि—

तुल्या सवर्तकाभ्रं पिदधति गगन[6] पङ्क्तय पक्षतीना[7]
तीरे वेगानिलो[8]ऽम्भ[9] क्षिपति भुव[10] इव प्लावनायाम्बुराशे[11]।

सफली पाणिग्रह —यदि उस का मलयवती से विवाह न होता तो भेंट के रूप मे उस लाल वस्त्रो का जोडा न मिलता और वह वध्यशिला पर शखचड का स्थान न ले सकता। इस वस्त्रो के जोडे के प्राप्त होने से उसे जो हार्दिक मनोरथ में सिद्धि मिलने लगी है उसी से वह मलयवती के साथ आज अपना विवाह सफल हुआ समझता है।

अन्वय —इदम रक्तम वासोयुगम् प्राप्ते काले समागतम्, परार्थे देहमुज्झत (मे) महतीम् प्रीतिम् आधत्ते ॥ १२ ॥

उज्झत —√उज्झ्+शतृ+प० एक वचन—छोडते हुए का।

चलितमलयाचलशिखरशिलासञ्चय — चलिता मलयाचलस्य शिखराणा शिलाना सञ्चया येन (बहुव्री०) स —उडने लग हैं मलयपर्वत की चोटियो के शिलाओ के ढेर जिस से ऐसा वह (पवन)।

आसन्नीभूत —आसन्न (आ+सद्+क्त)+च्वि+√भू+क्त—निकट पहुँचा हुआ।

---

1 विवाह 2 नमस्कार की जानी चाहिए 3 लाल 4 हवा 5 अनुमान लगाता हू 6 आकाश को 7 पङ्खों की 8 जल को 9 पृथ्वी के 10 डुबोने के लिए 11 समुद्र के।

नायक — [आदर सहित] लाओ।

कञ्चुकी—[ले आता है।]

नायक—[ले कर अपने आप] मेरा मलयवती के साथ विवाह सफल हो गया।

[प्रकट रूप से] अरे कञ्चुकी! जाओ, मेरी ओर से देवी को प्रणाम कहना।

कञ्चुकी—जो कुमार की आज्ञा। [चला गया]

ठीक समय पर प्राप्त हुआ यह लाल वस्त्रों का जोड़ा दूसरे के लिए अपने शरीर को देते हुए मुझे बड़ा आनन्द दे रहा है।

[दिशाओं की ओर देख कर] जब कि यह भयानक वायु मलय पर्वत की चोटियों के शिला समूह को तोड़ रहा है तो मैं अनुमान लगाता हूं कि पक्षि राज (गरुड) निकट आ पहुंचे हैं। जब कि—

प्रलयकालीन मघों के समान पंखो की पंक्तियां आकाश को ढक रही है, तेज पवन, मानो पृथ्वी को डुबाने के लिए समुद्र के जल को किनारे पर फेंक रहा है—

अन्वय—सवर्त्तकाभ्रं तुल्या पक्षतीणाम् पङ्क्तय गगनम् पिदधति, वेगानिल: अम्बुराशे अम्भ भुव प्लावनाय इव तीरे क्षिपति, सपदि च, कल्पान्तशङ्काम् कुर्वन् दिग्द्विपेन्द्रैं सभय वीक्षित द्वादशादित्यदीप्ति देहोद्योत मुहु दश आशा कपिशयति॥ २२॥

सवर्त्तकाभ्रं.—सवर्त्तका यानि अभ्राणि तै —सवर्त्तक (नाम) के मेघों के (तुल्य)।

सवर्त्तक०—गरुड के आगमन ने प्रलयकालीन वातावरण सा पैदा कर कर दिया है, नायक उसी का वर्णन कर रहा है। प्रलय एक कल्प के अन्त पर आता है। उस में ४३२० वर्ष होते हैं। प्रलय के समय सवर्त्तक, पुष्कर, आवर्त्तक भयकर वर्षा करते हैं बारह सूर्य पूरे तेज से चमकते हैं हवाएँ उग्र वेग से बहती हैं तथा सारा विश्व जल-मग्न हो जाता है।

पिदधति—अपि+$\sqrt{}$धा+लट्+बहुवचन—ढक देती हैं (अपि के 'अ' का विकल्प से लोप हो जाता है।

वेगानिल—वेगस्य अनिल (ष० तत्पु०)—जोर की हवा।

कुर्वन् कल्पान्तशङ्कां सपदि[1] च सभयं वीक्षितो दिग्द्विपेन्द्रै-
र्देहोद्योतो दशाऽऽशा[2] कपिशयति मुहुर्द्वादशादित्यदीप्ति ॥२२॥

तद् यावदसौ नागच्छेत् शङ्खचूड, तावत् त्वरिततरमिमां वध्य शिलामारोहामि । [तथा कृत्वा, उपविश्य स्पर्शं नाटयति] अहो स्पर्शोऽस्याः !

न तथा सुखयति मन्ये मलयवती मलयचन्दनरसाऽऽर्द्रा ।
अभिवाञ्छितार्थसिद्ध्यै वध्यशिलेयं यथाऽऽश्लिष्टा ॥ २३ ॥

अथवा किं मलयवत्या ?

कल्पान्तशङ्काम्—कल्पस्य अन्त तस्य शङ्काम्—कल्प के अन्त की शङ्का को ।

वीक्षित —वि+√ईक्ष+क्त—देखा गया ।

दिग्द्विपेन्द्रै —दिशा द्विपेन्द्रा (ष० तत्पु०)—दिशाओं के हाथी । पौराणिक मतानुसार आठ दिशाओं की रक्षा के लिए आठ हाथी नियुक्त किए हुए हैं । ऐरावत, पुण्डरीक आदि उन के नाम हैं । गरुड के शरीर का बारह सूर्यों जैसा प्रकाश जब बार बार दिशाओं को चमकाने लगा तो ये दिग्गज भी प्रलय की आशङ्का से भयभीत हो उठे ।

देहोद्योत:—देहस्य उद्योत (ष० तत्पु०)—शरीर का प्रकाश ।

कपिशयति—कपिश करोति इति (कपिश+णिच+लट्+नाम धातु) पीला बनाता है ।

द्वादशादित्यदीप्ति —द्वादश ये आदित्या तेषां दीप्ति इव दीप्ति यस्य स (बहुव्रीo)—बारह सूर्यों जैसी कान्ति है जिस की ऐसा (शरीर का प्रकाश) ।

अन्वय —अभिवाञ्छितार्थसिद्ध्यै आश्लिष्टा इयम् वध्यशिला यथा सुखयति तथा मलयचन्दनरसाऽऽर्द्रा मलयवती न इति मन्ये ॥ २३ ॥

सुखयति—सुख करोति (सुख से नाम धातु)—सुख देता है ।

---

1 एक दम सहसा - दिशाओं को ।

सहसा प्रलय की आशंका को (पैदा) करता हुआ तथा दिग्गजों से भय पूर्वक देखा गया (गरुड के) शरीर का बारह सूर्यों जैसी कान्ति वाला प्रकाश दस दिशाओं को बार बार पीला सा बना रहा है।

तो जब तक शंखचूड नहीं आता, मैं शीघ्र ही इस वध्य शिला पर चढ जाता हूँ। [वैसा करके, बैठ कर स्पर्श का अभिनय करता है] आहा ! इस का स्पर्श (कितना सुखदायक है !)—

मलय पर्वत के चन्दन के रस से शीतल मलयवती वैसा सुख नहीं देती, जैसा कि अभीष्ट इच्छा की सफलता के लिए आलिङ्गन की गई यह वध्य शिला—ऐसा मैं समझता हूँ।

अथवा मलयवती से क्या ?

मलयचन्दनरसार्द्रा—मलयस्य ये चन्दना तेषां रसेन आर्द्रा—मलय पर्वत के चन्दन वृक्षों के रस से शीतल (बनी हुई मलयवती)।

अभिवाञ्छितार्थसिद्धयै—अभिवाञ्छितस्य अर्थस्य सिद्धयै (ष० तत्पु०) अभीष्ट इच्छा की सफलता के लिए।

आश्लिष्टा—आ + √श्लिष् + क्त—गले लगाई गई।

शयितेन मातुरङ्के विस्रब्ध[1] शैशवे न तत् प्राप्तम् ।
लब्धं सुखं मयाऽस्या वध्यशिलाया यदुत्सङ्गे[2] ॥ २४ ॥

तदयमागतो गरुत्मान्, यावदात्मानमाच्छादयामि[3] । [तथा करोति]

गरुड —

क्षिप्त्वा बिम्ब[4] हिमांशोर्भयकृतवलया सस्मरञ्छेषमूर्ति,
सानन्द स्यन्दनाऽश्वत्रसनविचलिते पूष्णि[5] दृष्टोऽग्रजेन ।
एष प्रान्तावसज्जज्जलधरपटलैरायतीभूतपक्ष
प्राप्तो वेलामहिध्रं मलयमहमहिग्रासगृध्नुः क्षणेन ॥ २५ ॥

अन्वय —शैशवे मातु अङ्के विस्रब्ध शयितेन तत् सुख न प्राप्तम् यस्या वध्यशिलाया उत्सगे यत् मया लब्धम् ॥ २४ ॥

शयितेन उत्सङ्गे—जो आनन्द नायक को बचपन में माता की गोद में लेटने से मिला वह मलयवती के सरस आलिङ्गन से अधिक था किन्तु परोपकार के लिए वध्य शिला के सम्पर्क से प्राप्त होने वाला आनन्द पहले दोनो प्रकार के आनन्दो से बढ कर है ।

अन्वय —भयकृतवलयाम् शेषमूर्तिम् सस्मरन् हिमांशो बिम्बम् क्षिप्त्वा पूष्णि स्यन्दनाश्वत्रसनविचलिते अग्रजेन सानन्दम् दृष्ट प्रान्तावसज्जज्जलधरपटलै आयतीभूतपक्ष अहिग्रासगृध्नु एष अहम् वेलामहीध्रम् मलयम् क्षणात्प्राप्त ॥ २५ ॥

हिमांशो —हिमवत् अशव यस्य (बहुव्री०) तस्य –बर्फ की तरह (शीतल) किरणें है जिस की उस चन्द्रमा की ।

भयकृतवलयाम् —भयात् कृत वलय यया (बहुव्री०) ताम् – भय से बनाई हुई है कुण्डली जिस ने उस (शेषनाग की मूर्ति) को ।

शेषमूर्त्तिम्—शेषस्य मूर्त्तिम् (ष० तत्पु०)—शेष नाग की मूर्त्ति को गरुड

1 विश्वस्त, निश्शङ्क 2 उत्सङ्गे =गोद में 3 आच्छादयामि=ढक लेता हूँ 4 चन्द्रमण्डल को ।

बचपन में माता की गोद मे निश्शङ्क हो कर सोए हुए (म ने) वह सुख प्राप्त नही किया जो मैं ने (अब) वध्य शिला की गोद में पाया है।

लो ! वह गरुड आ पहुँचा अब मैं अपने आप को ढक लू । [वैसा करता है]

गरुड—चन्द्रमा के बिम्ब को फाड कर भय से कुण्डली मारे हुए शेष नाग की मूर्ति को याद करता हुआ रथ के घोडो के भय के कारण सूर्य के डगमगा जाने पर बडे भाई से आनन्द पूर्वक देखा गया किनारो मे लटकते हुए मेघ समूह से विस्तृत बने हुए पखो वाला साँप को ग्रास बनाने की लालसा वाला यह मैं क्षण भर में ही (समुद्र-)तट-वर्ती मलयपर्वत पर आ पहुँचा हू ।

वैकुण्ठ में शेष नाग पर सोये हुए विष्णु महाराज की सेवा कर के भू लोक में आया करता था। जब यह वहाँ से चलने लगता तो शेषनाग डर के मारे कुण्डली मार लेता था। गरुड शेष की उसी दशा को रास्ते में सोचते आते थे।

स्यन्दनाश्वत्रसनावचलिते —स्यन्दनस्य ये अश्वा तेषा त्रसनेन विचलिते—रथ के घोडो के डर के कारण (सूर्य के) विचलित होने पर।

अग्रजन अग्रे जायते इति अग्रज तेन—बडे भाई से सूर्य का सारथि अरुण है। वह गरुड का बडा भाई है। जब गरुड बडे वेग के साथ सूर्य लोक में से गुजरता तो उसके भय से सूर्य के घोडे बिदक जाते और सूर्य डगमगा उठता अपने छोटे भाई के इतने प्रताप को देख कर अरुण का आनन्दित होना स्वभाविक ही है

प्रान्तावसज्जज्जलधरपटल प्रान्तेषु अवसज्जत (अव + √सञ्ज + शतृ) ये जलधरा तेषा पटल किनारो से लटकते हुए मेघो के समूहो से।

आयत भूतपक्ष —अनायतौ आयतौ सम्पद्यमानौ भूतौ पक्षौ यस्य स (बहुव्रीहि॰)

विस्तृत बन गए है दोनो पख जिस के।

वेलाम लाद्रिम —वेलायाम् मलयाद्रि (मलय पर्वत) (समुद्र) तट पर (स्थित) पर्वत।

अहिग्रासगृध्नु —अहीना ग्रास तस्य गृध्नु सॉपो के ग्रास का लोभी

क्षिप्त्वा क्षणेन इस श्लोक में लेखक ने पहले चन्द्र फिर सूर्य तथा बाद में बादलो का वर्णन किया है। सूर्य व चन्द्र की अपेक्षा पृथ्वी से अधिक दूर होने के कारण पहले सूर्य फिर तथा बाद में चन्द्रमा का वर्णन होना चाहिए था।

नायकः—[सपरितोषम्]

संरक्षता पन्नगमद्य पुण्यं मयाऽर्जितं[1] यत्स्वशरीरदानात् ।
भवे[2] भवे तेन ममैवमेवं भूयात् परार्थः खलु देहलाभः ॥२६॥

गरुडः—[नायकं निर्वर्ण्य]

अस्मिन्वध्यशिलातले निपतितं शेषानहीन्[3] रक्षितुं,
निर्भिद्याऽशनिदण्डचण्डतरया चञ्च्वाऽधुना वक्षसि[4] ।
भोक्तुं भोगिनमुद्धरामि[5] तरसा[6] रक्ताम्बरप्रावृतं,
दिग्धं मद्धृदयदीर्यमाणहृदयप्रस्यन्दिनेवाऽसृजा[7] ॥२७॥

[इत्यभिपत्य[8] नायकं गृह्णाति । नेपथ्ये पुष्पाणि पतन्ति । दुन्दुभयश्च[9] स्वनन्ति[10] ।]

गरुडः—[ऊर्ध्वं[11] दृष्ट्वाऽऽरण्यं[12] च] अये पुष्पवृष्टिर्दुन्दुभिध्वनिश्च !
[सविस्मयम्] अये !

आमोदानन्दितालिः निपतति किमियं पुष्पवृष्टिर्नभस्तः ?
स्वर्गे किं चैव चक्र[13] मुखरयति दिशां दुन्दुभीनां निनादः[14] ? ।

अन्वय—स्वशरीरदानात् अद्य पन्नगम् संरक्षता मया यत् पुण्यम् अर्जितम् तेन मम एवम् खलु भवे भवे परार्थं देहलाभः भूयात् ॥ २६ ॥

संरक्षता—सम्+√रक्ष+शतृ+तृ० एक वचन—रक्षा करते हुए से ।

अन्वय.-शेषान् अहीन् रक्षितुम् अस्मिन् वध्यशिलातले निपतितम् मद्धृदयदीर्यमाण हृदयप्रस्यन्दिना असृजा इव दिग्धम् रक्ताम्बरप्रावृतम् भोगिनम् अधुना अशनिदण्डचण्डतरया चञ्च्वा तरसा निर्भिद्य भोक्तुम् उद्धरामि ॥२७॥

निर्भिद्य—निर्+√भिद्+ल्यप्—फाड़ कर ।

अशनिदण्डचण्डतरया—अशनेः द. दण्ड. तस्मात् अधिक चण्डा तया—वज्र के दण्ड से भी अधिक भयङ्कर ।

---

1. अर्जित किया गया 2. जन्म में 3 सारे सांपों को 4 छाती पर 5 उद्धरामि—उठाता हूँ 6. जल्दी से 7 खून से 8 अभिपत्य—झपट कर 9 नगाड़े 10 बजते हैं 11. ऊपर 12 देख कर 13 समूह 14 शोर ।

नायक [सतोष के साथ]
अपने शरीर के दान से साँप की रक्षा करते हुए आज मैंने जो पुण्य सञ्चित किया है उस से जन्म जन्म में परोपकार के लिए इसी प्रकार शरीर प्राप्त होवे

गरुड़—[नायक को ध्यान से देख कर]
सर्प साँपों की रक्षा करने के लिए इस वध्यशिला तल पर पड़े लाल वस्त्र से ढके हुए मानो मेरे भय से फटते हुए हृदय से बहते हुए खून से लिप हुए साँप के वक्ष स्थल से अधिक भयङ्कर चोंच से नाड़ी फाड़ कर खाने के लिए तेज़ी से उठता हूँ।

[झपट कर नायक को पकड़ लेता है नेपथ्य में फूल गिरते हैं और नगाड़े बजते]

[आश्चर्य सहित] अरे
सुगन्धि से भौंरों को प्रसन्न करने वाला आकाश से यह पुष्प वर्षा क्यों हो रही है और स्वर्ग में नगाड़ों का यह शोर दिशाओं के समूह को मुखरित क्यों कर रहा है ?

रक्ताम्बरप्रावृतम—रक्त च तत् अम्बर च (कर्मध०) तेन प्रावृतम् (प्र + आ √वृ + क्त) लाल वस्त्र से ढके हुए

दिग्धम —√दिह् + क्त—लिप हुए (साँप) को

मद्भयभिद्यमानहृदयप्रस्यन्दिना मत्त भय मद्भय तेन भिद्यमान (√ भिद् + कर्मवाच्य + शानच) यत् हृदय तस्मात् प्रस्यन्दते इति (उपपद तत्पु०) मेरे भय से फट जाते हुए हृदय से बहते हुए (रक्त) से।

अन्वय —आमोदानन्दितालि पुष्पवृष्टि नभस्त कि निपतति ? स्वर्ग दुन्दुभीनाम् निनाद दिग्भाग चक्रम किम वा मुखरम करोति ? आम ज्ञातम मम जवमरुता स अपि पारिजात कम्पित जातसहारराड्स सर्व संवर्तकाभ्र इवम रसितम इति मन्ये । २८॥

आमोदानन्दितालि —आमोदेन आनन्दिता अलय यया स (बहुव्री०) सुगन्धि से प्रसन्न कर दिए गए है भँवर जिस से वह (फूलों की वर्षा)।

मुखरयति—मुखर करोति (मुखर से नाम धातु) शब्दायमान कर रहा है

विहस्य—

आ ज्ञातं ! सोऽपि मन्ये मम जवमरुता कम्पितः पारिजातः,
सर्वैः संवर्तकाभ्रैरिदमपि रसितं जातसंहारशङ्कैः ॥ २८ ॥

नायकः—[आत्मगतम्] दिष्ट्या कृतार्थोऽस्मि ।

गरुडः—[नायकं कलयन्]

नागानां रक्षिता भाति गुरुरेव यथा मम ।
तथा सर्पाशनाकाङ्क्षा व्यक्तम्[1] अपनेष्यति[2] ॥ २९ ॥

तद्यावदेनं गृहीत्वा मलयपर्वतमारुह्य यथेष्टम्[3] आहारयामि ।

[इति निष्क्रान्तः]

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति चतुर्थोऽङ्कः

जवमरुता—जवस्य मरुत् तेन—वेग की वायु से ।

पारिजात — व्याख्या के लिए देखिए III. 9

संवर्तकाभ्रैः —संवर्तक मेघों से । व्याख्या के लिए देखिए IV 22

रसितम्—√रस्+क्त—ध्वनि की गई है ।

जातसंहारशङ्कैः —जाता संहारस्य शङ्का येषां तैः (बहुव्री०)—पैदा हो गई है प्रलय की शङ्का जिन की, उन (संवर्तक मेघों) से ।

जातसंहारशङ्कैः —देवताओं ने तो नायक के आत्म-समर्पण से प्रसन्न हो कर पुष्प-वर्षा की है तथा नगाड़े बजाए हैं और गरुड़ यह समझ रहा है कि स्वर्ग में पारिजात वृक्ष मेरे वेग से काँप उठा है अतः फूल गिरा रहा है और प्रलयकालीन मेघ प्रलय की आशंका के पैदा हो जाने से जोर जोर से गर्जने लगे हैं ।

अन्वयः—एषः नागानाम् रक्षिता गुरुः भाति, तथा सर्पाशना काङ्क्षाम् मम व्यक्तम् अपनेष्यति ॥ २९ ॥

---

1 स्पष्ट 2 अपनेष्यति=दूर कर देगा 3. यथेष्टम् =इच्छानुसार ।

[इस कर] हाँ जान लिया है। मेरे विचार में मेरे वेग की वायु से (स्वर्ग में) पारिजात (का वृक्ष) भी काँप उठा है (तथा) सारे प्रलय के बादलों ने प्रलय की शङ्का पैदा हो जाने से यह गर्जना की है।

नायक [अपने आप] सौभाग्य से मैं कृतार्थ हो गया।

गरुड—[नायक को पकड़ता हुआ]

जैसे यह नागों का रक्षक मुझे भारी प्रतीत होता है उस से आज (मेरी) साँपों को खाने की इच्छा को निश्चय ही मिटा देगा।

तो इसे लेकर मलय पर्वत पर चढ़ कर इच्छानुसार खाऊँगा।

[चला गया]

[सब चले गए]

नागानाम अपनव्याप्ति—इस श्लोक के दो अर्थ निकलते हैं एक तो स्थिति के अनुसार वाच्य (Literal) है तथा दूसरा व्यङ्ग्य (Suggestive) है व्यङ्ग्य अर्थ से आगे आने वाली घटनाओं का हल्का सा परिचय मिल जाता है अतः यहाँ पताका स्थान का प्रयोग समझना चाहिए (पताका स्थान की व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ

नीचे दी गई व्याख्या में पहला अर्थ वाच्य है तथा दूसरा व्यङ्ग्य।

नागाना रक्षिता (१) साँपों का रक्षक (शङ्खचूड) जिस ने अपने आप को पेश कर के शेष साँपों की रक्षा की है।

(२) साँपों का रक्षक (जीमूतवाहन) जो आत्म-बलिदान द्वारा सब नागों की रक्षा करने जा रहा है।

गुरु—(१) भारी (२) गुरु शिक्षक।

स्पर्शिनाकाङ्क्षाम्—(१) सर्पस्य अशने या आकाङ्क्षा ताम्—(अब) साँपों को खाने की इच्छा को

(२) सर्पाणां अशने या आकाङ्क्षा ताम्—सदा की साँपों को खाने की इच्छा को।

व्यङ्ग्य अर्थ—साँपों का यह रक्षक जैसे मेरा गुरु प्रतीत होता है यह स्पष्ट ही आज मेरी साँपों को खाने की (चिरन्तन) इच्छा को नष्ट कर देगा।

[परिक्रम्य अग्रे दृष्ट्वा] अयमसौ राजर्षिर्जीमूतवाहनस्य पिता जीमूतकेतुरुटजाङ्गणे[1] सह स्वधर्मचारिण्या राजपुत्र्या वध्वा च पर्युपास्यमानस्तिष्ठति। तथाहि—

क्षौमे भङ्गवती[2] तरङ्गितदशे फेनाम्बुतुल्ये वहन्
जाह्नव्येव विराजितः[3] सवयसा देव्या महापुण्यया।
धत्ते तोयनिधेरयं[4] सुसदृशीं जीमूतकेतुः श्रियं[5]
यस्यैषान्तिकवर्तिनी मलयवत्याभाति वेला यथा ॥ २ ॥

स्वधर्मचारिण्या—स्वधर्मं चरति इति तया (उपपद तत्पु०)—अपने धर्म का आचरण करने वाली से धर्मपत्नी से।

पर्युपास्यमान—परि+उप+√आस्+कर्मवाच्य+शानच सेवा किया जाता हुआ।

अन्वय—भङ्गवती फेनाम्बुतुल्ये क्षौमे वहन् सवयसा देव्या जाह्नव्या इव महापुण्यया विराजितः अयम् जीमूतकेतुः तोयनिधेः सुसदृशीम् श्रियम् धत्ते यस्य अन्तिकवर्तिनी एषा मलयवती वेला इव आभाति ॥ २ ॥

भङ्गवती—भङ्गा (सिकुडन) सन्ति अस्य इति भङ्गवत् तयो—सिकुड़नों वाल दो (रेशमी वस्त्रों) को। भङ्गवती भङ्गवत् (नपु०) का प्रथमा० द्विवचन है।

तरङ्गितदशे—तरङ्गिताः (तरङ्गा अस्य सञ्जाता) दशा (आँचल) ययो ते (बहुव्री०)—लहराते हुए आँचल वाले दो (रेशमी वस्त्रों) को।

फेनाम्बुतुल्ये—फेन युक्तम् यत् अम्बु फेनाम्बु (मध्यमपदलोपी समास) तेन तुल्ये—झाग वाले जल के समान।

जाह्नव्या—जह्नोः अपत्यम् स्त्री तया—जह्नु की पुत्री (गङ्गा) से।

---

1 उटज=कुटिया 2 दो रेशमी वस्त्र 3 सुशोभित 4 तोयनिधेः=समुद्र की 5 शोभा को।

तद् यावदुपसर्पामि ।

[तत प्रविशति पत्नीवधूसमेतो जीमूतकेतुः ।]

जीमूतकेतुः—

भुक्तानि यौवनसुखानि यशोऽवकीर्णं[1]
राज्ये स्थितं स्थिरधिया चरितं तपोऽपि ।
श्लाघ्यः सुत, सुसदृशान्वयजा स्नुषेयं,[2]
चिन्त्यो मया ननु कृतार्थतयाऽद्य मृत्युः ॥३॥

सुनन्दः—[सहसोपसृत्य] 'जीमूतवाहनस्य--' ।

जीमूतकेतु —[कर्णौ पिधाय] शान्तं पापम् ! शान्त पापम् ।

वृद्धा—प्रतिहत खल्वेतदमङ्गलम् ।] पडिहद क्खु एद अमगल ।

मलयवती—वेपते मे हृदयमनेन दुर्निमित्तेन[3] । वेवदि मे हिअअ दुण्णि दुण्णिमित्तेण ।

जीमूतकेतुः—[वामाक्षिस्पन्दन सूचयित्वा] भद्र ! किं जीमूतवाहनस्य ?

अन्वयः—यौवनसुखानि भुक्तानि, यश अवकीर्णम्, राज्ये स्थितम्, स्थिरधिया तपः अपि चरितम्, सुनः श्लाघ्य., सुसदृशान्वयजा इयम् स्नुषा, अद्य ननु कृतार्थतया मया मृत्यु चिन्त्य ॥ ३ ॥

स्थिरधिया—स्थिरा या धी तया (कर्मधा०)—स्थिर बुद्धि से ।

सुसदृशान्वयजा—सुसदृशे अन्वये जाता इति (उपपद तत्पु०) अपने ही समान वंश में पैदा हुई ।

जीमूतवाहनस्य०—जीमूतकेतु के मुख से मृत्यु का शब्द निकला ही था कि सुनन्द ने सहसा प्रविष्ट होकर जीमूतवाहन का समाचार जानने की बात कही । उसके मुँह से 'जीमूतवाहनस्य' का शब्द निकला तो जीमूतकेतु ने उसे अपने मुख से निकले हुए अन्तिम शब्द मृत्यु के योग में समझ कर सुनन्द की

1. फैल गया है 2. पुत्र-वधु 3 अपशकुन से ।

नो पास चलता हूँ।

[तब पत्नी और पुत्रवधु के साथ जीमूतकेतु प्रवेश करते हैं।]

जीमूतकेतु—यौवन के सुख भोग चुका हूँ यश फल चुका है, राज्य पर स्थित रहा हूँ स्थिर बुद्धि से तपस्या भी कर ली है। पुत्र प्रशंसनीय है अपने हा समान (उच्च) कुल मे पदा हुई यह पुत्रवधु है। सफलमनोरथ हो चुकने पर अब तो मुझ मृत्यु का ही चिन्तन करना चाहिए।

सुनन्द--[सहसा आकर] जीमूतवाहन की

जीमूतकेतु—[कानों को ढककर] अमगल नष्ट हो ! अमगल नष्ट हो !!

वृद्धा—इस अनय का सचमुच नाश हो।

मलयवती—इस अपशकुन से मेरा हृदय काँपने लगा है

जीमूतकेतु—[बा आँख के फड़कने की सूचना देता हुआ] भद्र ! जीमूतवाहन की क्या ?

बात को बीच ही में काट दिया और अपने कानो पर हाथ रख लिया ताकि वह ऐसी अनथ की बात न सुन सके।

इस सवाद से आगे आने वाली नायक की मृत्यु का आभास मिल जाता है अत इसे पताका स्थान कहा जा सकता है। (पताकास्थान की व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ)

वामाक्षिस्पन्दनम्—वामम् एतद् अक्षि तस्य स्पन्दनम्—बाई आँख का फड़कना। पुरुषो की बाई तथा स्त्रियो की दाईं आँख का फड़कना अपशकुन समझा जाता है।

सुनन्द—जीमूतवाहनस्य वार्त्तामन्वेष्टुं महाराजविश्वावसुना युष्मदन्तिकं प्रेषितोऽस्मि ।

जीमूतकेतु—किमसन्निहितस्तत्र मे वत्सः ?

वृद्धा—[सविषादम्] महाराज ! यदि तत्र न सन्निहितः, तत् क्व गतो मे पुत्रको भविष्यति ? महाराअ ! जइ तहिं ण सण्णिहिदो ता कहिं गदो मे पुत्तओ भविस्सदि ?

जीमूतकेतु—नूनमस्मत्प्राणयात्रार्थं निरानन्दं[2] दूरं गतो भविष्यति ।

मलयवती—[सविषादमात्मगतम्] अहं पुनरार्यपुत्रमप्रेक्षमाणा अन्यदेव किमप्याशङ्के । अहं उण अज्जउत्तं अपेक्खन्ती अण्णं उज्जेव किंपि आसङ्कामि ।

सुनन्द—आज्ञापय किं मया स्वामिने निवेदनीयम् ?

जीमूतकेतु—[वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा] जीमूतवाहनश्चिरयती' ति पर्य्याकुलोऽस्मि हृदयेन ।

> स्फुरसि[3] किमु दक्षिणेतर ! मुहुर्मुहुः सूचयन्ममानिष्टम् ।
> हतचक्षुरपहतं ते स्फुरितं, मम पुत्रकः कुशली ॥ ४ ॥

अन्वेष्टुम्—अनु+√इष्+तुमुन्—ढूँढने के लिए ।

असन्निहित —न संनिहित (सम्+नि+√धा+क्त)—न निकट ठहरा हुआ ।

अस्मत्प्राणयात्रार्थम्—अस्माकं प्राणयात्रा या, तदर्थम्—हमारे जीवन निर्वाह के लिए ।

अप्रेक्षमाणा—न प्रेक्षमाणा (प्र+√ईक्ष्+शानच्+स्त्री०)—न देखती हुई ।

चिरयति—चिरं करोति इति (चिर+नाम धातु)—देर लगा रहा है ।

अन्वय —हे दक्षिणेतर ! हतचक्षुः मम अनिष्टम् सूचयन् मुहुः मुहुः किमु स्फुरसि ? ते स्फुरितम् अपहतम् मम पुत्रकः कुशली ॥ ४ ॥

---

1 अन्तिकम्—पास 2 अधिक 3 फड़कते हो ।

सुनन्द—जीमूतवाहन का समाचार पाने के लिए महाराज विश्वावसु ने मुझे आप के पास भेजा है ।

जीमूतकेतु—क्या मेरा पुत्र वहाँ उपस्थित नही है ?

वृद्धा—महाराज ! यदि वहाँ उपस्थित नही है तो मेरा पुत्र कहाँ गया होगा ?

जीमूतकेतु—निश्चय ही हमारे जीवन निर्वाह के लिए (कन्द-मूल लाने) अधिक दूर चला गया होगा ।

मलयवती—[दु:ख सहित अपने आप] आर्य पुत्र को न देखती हुई मैं तो कुछ और ही शंका करने लगी हूँ ।

सुनन्द—आज्ञा दीजिए, मुझे स्वामी से क्या निवेदन करना है ?

जीमूतवाहन—[बाई आंख का फड़कना को सूचित करता हुआ] "जीमूतवाहन देर लगा रहा है'—इससे मैं हृदय से व्याकुल हूँ ।

मेरे अमंगल की सूचना देती हुई, अरी बाई आँख ! बार बार क्यो फड़क रही हो । री अभागिन आँख ! तेरा फड़कना नष्ट हो, मेरा पुत्र सकुशल होवे ।

दक्षिणेतर—दक्षिणात् इतर (प० तत्पु०), तत्सम्बोधने—दाई से अन्य अर्थात् हे बाई (आँख !)

[ऊर्ध्वमवलोक्य] अयमेव त्रिभुवनैकचक्षुर्भगवान् सहस्रदीधितिः स्फुट[1] जीमूतवाहनस्य श्रेयः[2] करिष्यति ।

[विलोक्य सविस्मयम्]

आलोक्यमानमतिलोचनदुःखदायि-
रक्तच्छटानिजमरीचिरुचो विमुञ्चत्[3] ।
उत्पातवाततरलीकृततारकाभ-
मेतत्पुरः पतति किं सहसा नभस्तः[4] ? ॥ ५ ॥

कथं चरणयोरेव पतितम् ?

[सर्वे निरूपयन्ति]

जीमूतकेतुः—अये कथं लग्नसरसमांसकेशश्चूडामणिः ! कस्य पुनरयं स्यात् ?

देवी—[सविषादम्] महाराज, पुत्रस्यैव मे एतच्चूडारत्नम् । महाराअ, पुत्तअस्स विअ मे एदं चूडरअणं ।

मल०—अम्ब ! मैवं भण । अम्ब ! मा एव्वं भण ।

त्रिभुवनैकचक्षुः—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम् (समाहार द्विगु०) तस्य चक्षुः—तीनों लोकों के एकमात्र चक्षु ।

सहस्रदीधितिः—सहस्रं दीधितयः यस्य सः (बहुव्री०)—हजार किरणें हैं जिसकी, अर्थात् सूर्य ।

अन्वय—आलोक्यमानम् अतिलोचनदुःखदायि, निजमरीचिरुचः रक्तच्छटाः विमुञ्चत् उत्पातवाततरलीकृततारकाभम् एतत् पुरः सहसा नभस्तः किं पतति ? ॥ ५ ॥

अतिलोचनदुःखदायि—लोचनेभ्यः दुःखं ददाति इति लोचनदुःखदायि (उपपद तत्पु०) अत्यन्तं यथा स्यात् तथा दुःखदायि—लोचनों को अत्यधिक दुःख देने वाला ।

1. स्पष्ट 2 कल्याण 3 छोड़ता हुआ 4 आकाश से ।

[ऊपर देखकर] यह तीनों लोकों के एक मात्र चक्षु भगवान् सूर्य अवश्य ही जीमूतवाहन का कल्याण करेंगे। [देखकर आश्चर्य पूर्वक] देखने पर नेत्रों को अत्यधिक दु:ख देने वाली खून (अथवा लाल) जैसी छटा वाली अपनी किरणों की कान्ति को छोडती हुई, उत्पातसूचक हवा से हिलाए गए (पुच्छल) तारे की सी चमक वाली, यह कौन (स. वस्तु) सहसा आकाश से सम्मुख गिर रही है।

क्या चरणों में ही आ गिरी है ?

[सारे ध्यान से देखते हैं]

जीमूतकेतु—अरे ! कैसे चूडामणि—सिर का भूषण—है जिस पर सरस (अर्थात् खून से गीला) माँस तथा बाल लगे हुए हैं। यह भला किस का होगा ?

देवी—[दु:ख सहित] महाराज ! यह चूडामणि तो मेरे पुत्र ही का है।

मलयवती—माँ ! ऐसा मत कहो।

रक्तच्छटानिजमरीचिरुच —रक्तस्य छटा इव या निजमरीचिनाम् रुचः ता— खून जैसी छटा वाली अपनी किरणों की कान्तियों को।

उत्पातवाततरलीकृततारकाभम्—उत्पातसूचक वात उत्पातवातः (मध्यमपदलापी समास) तेन तरलीकृता या तारका, तस्या आभा इव आभा यस्य, तत्—उत्पात सूचक हवा से हिलाए गए तारे सी चमक वाली (वस्तु)।

इस प्रकार पुच्छल तारे का आकाश से टूट कर गिरते दीख पडना अपशकुन समझा जाता है तथा किसी महान् उपद्रव का सूचक माना जाता है।

लग्नसरसमासकेशः—लग्न सरस मांस केशाश्च यस्मिन् स (बहुव्री०)— लगे हुए हैं सरस मास तथा बाल जिस पर, ऐसा (चूडामणि)।

सुनन्द —महाराज ! मैवमविज्ञाय विकल्पीभू । अत्र हि—

ताक्ष्येण[1] भक्ष्यमाणाना पन्नगानामनेकश ।

उल्कारूपा पतन्त्येते शिरोमणय ईदृशा ॥ ६ ॥

जीमू०—देवि ! सोपपत्तिकमभिहितम । कदाचिदेवमपि स्यात् ।

वृद्धा—सुनन्दक ! यावदनया वेलया श्वशुरसदनमेवागतो मे पुत्रको भविष्यति । तद्गच्छ ज्ञात्वा लब्धेवस्माक निवेदय । सुणदम ! जाव इमाए वलाए ससुरसदण ज्जेव्व आग्रदो मे पुत्तग्रो भविस्सदि । ता गच्छ, जाणिग्र लहु एव ग्रह्माण णिवदेहि ।

सुनन्द —यदाज्ञापयति देवी । [इति निष्क्रा त]

जीमू०—[तत प्रविशति रक्तवस्त्रसवीत शङ्खचूड: ।] देवि ! अपि नाग चूडामणि स्यात ।

शङ्ख०—[सास्रम्]

गोकर्णमर्णवतटे त्वरित प्रणम्य

प्राप्तोऽस्मि ता खलु भुजङ्गमवध्यभूमिम् ।

आदाय त नखमुखक्षतवक्षसञ्च

विद्याधर गगनमुत्पतितो गरुत्मान्[2] ! ॥ ७ ॥

मा भू —व्याकुल मत होग्रो । मा के साथ लुङ् (Aorist) का प्रयोग लोट् के अर्थ में होता है किन्तु ऐसी दशा में लुङ के आगम अ' का लोप हो जाता है । अभू के अ के लोप हो जाने का भी यही कारण है ।

अन्वय —ताक्ष्येण भक्ष्यमाणानाम् पन्नगानाम अनेकश ईदृशा उल्कारूपा शिरोमणय पतन्ति ॥ ६ ॥

भक्ष्यमाणानाम्—$\sqrt{}$भक्ष+कर्मवाच्य+शानच्+ष० बहुवचन—खाए जाते हुओ का । उल्कारूपा —उल्कावत् रूप येषाम् ते (बहुव्री०)—उल्का (टूटे हुए तारे) के रूप वाली ।

पन्नगानाम् शिरोमणय —साँप के मस्तक में मणि होती है—ऐसा प्रवाद प्राचीन परम्परा से चला आ रहा है ।

1 गरुड से 2 गरुड ।

सुनन्द—महाराज ! इस प्रकार बिना जाने (आप) व्याकुल न हों। यहाँ तो—गरुड द्वारा खाए जाते हुए साँपों की अनेक ऐसी सिर की मणियाँ टूटे हुए तारों की तरह गिरती ही रहती हैं।

जीमूतकेतु—हे देवी ! (इसने) युक्ति-युक्त बात कही है। शायद ऐसा ही हो।

वृद्धा—अरे सुनन्दक ! इस समय तक मेरा पुत्र श्वशुर के घर आ गया होगा। तो जाओ, पता लगा कर जल्दी सूचना दो।

सुनन्द—जो देवी की आज्ञा। [चला गया]

जीमूतकेतु—देवी ! शायद नाग की ही चूडा मणि हो।

[तब लाल वस्त्रों से ढका हुआ शङ्खचूड प्रवेश करता है]

शङ्खचूड—[आंसुओं सहित]

समुद्र-तट पर गोकर्ण को शीघ्र प्रणाम करके मैं इस नागों के वध्य स्थान को पहुँचा ही था, कि नाखुनों और मुख से जख्मी की गई छाती वाले उस विद्याधर को लेकर गरुड आकाश को उड गया।

सोपपत्तिकम्—उपपत्त्या सहितम्—युक्ति के साथ।

अभिहितम्—अभि + √धा + क्त—कहा गया है।

श्वशुरसदनम्—श्वशुरस्य सदनम् (ष० तत्पु०)—ससुर के घर को।

रक्तवस्त्रसंवीत—रक्तवस्त्राभ्या (रक्तञ्च तत् वस्त्रञ्च ताभ्याम्—कर्मधा०) संवीत. (सम् + वि + √इ + क्त—ढका हुआ) लाल वस्त्रों से ढका हुआ।,

अन्वयः—अर्णवतटे गोकर्णम् त्वरितम् प्रणम्य तां खलु भुजङ्गमवध्यभूमिम् प्राप्त अस्मि नखमुखक्षतवक्षसम् च तम् विद्याधरम् आदाय गरुत्मान् गगनम् उत्पतित ॥७॥

गोकर्णम् व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ ६

अर्णवतटे—अर्णवस्य तटे—समुद्र के तट पर।

प्रणम्य—प्र + √नम् + ल्यप्—प्रणाम करके।

नखमुखक्षतवक्षसम्—नखानि च मुखं च इति तयोः समाहार नखमुखम् (समाहार द्वन्द्व) तेन क्षत वक्ष यस्य तम् (बहुव्री०) नाखूनों और मुख से घायल की गई छाती है जिस की उस को।

[रुदन्] हा महासत्त्व ! हा परमकारुणिक ! हा निष्कारणैकबान्धव हा परदुःखदुःखित ! क्व गतोऽसि ? । प्रयच्छ मे प्रतिवचनम्[1] । हा शङ्खचूडहतक ! किं कृतं त्वया ?—

नाऽहित्राणात्कीर्त्तिरेका मयाऽऽप्ता,
नापि श्लाघ्या स्वामिनोऽनुष्ठिताऽऽज्ञा ।
दत्त्वात्मानं रक्षितोऽन्येन शोच्यो
हा धिक् ! कष्टं ! वञ्चितो[2] वञ्चितोऽस्मि ॥८॥

तन्नाहमेवंविधं क्षणमपि जीवन्नुपहास्यमात्मानं करोमि । यावदेतदनुगमनं प्रति यतिष्ये[3] । [परिक्रामन् भूमौ दत्तदृष्टिः]

आदावुत्पीडपृथ्वीं प्रविरलपतितां स्थूलबिन्दुं ततोऽग्रे
ग्रावस्वापातशीर्णप्रसृततनुकणां[4] कीटकीर्णां स्थलीषु[5] ।

कारुणिक —करुणा शीलम् अस्य कारुणिकः (करुणा + ठक्)—दयालु ।
अन्वय —अहित्राणात् एका श्लाघ्या कीर्तिः न आप्ता स्वामिनः आज्ञा अपि न अनुष्ठिता, अन्येन आत्मानम् दत्त्वा रक्षितः शोच्यः हा धिक् ! कष्टम् ! वञ्चितः वञ्चितः अस्मि ॥ ८ ॥
अहित्राणात्—अहीनां त्राणं तस्मात्—साँपों की रक्षा से ।
आप्ता—√आप् + क्त + स्त्री० —प्राप्त की गई ।
अनुष्ठिता—अनु + √स्था + क्त—पालन की गई ।
उपहास्यम्—उपहसितुं योग्यम्—उपहास किए जाने योग्य ।
अनुगमनं प्रति—प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है ।
दत्तदृष्टिः —दत्ता दृष्टिः येन सः (बहुव्री०)—दृष्टि दिए हुए ।
अन्वय —तार्क्ष्यम् दिदृक्षुः आदौ उत्पीडपृथ्वीम् प्रविरलपतिताम् स्थूलबिन्दुम् ग्रावस्वापातशीर्णप्रसृततनुकणाम् स्थलीषु कीटकीर्णाम् धातुभित्तौ दुर्लक्ष्याम् घनतरुशिखरे स्त्याननीलस्वरूपाम् एनाम् रक्तधाराम् अनुसरन् व्रजामि ॥ ९ ॥

1 उत्तर 2. ठगा गया 3 यत्न करूँगा 4 ग्रावसु=पत्थरों पर 5 वन-भूमियों में ।

[रोते हुए] हा महापुरुष ! हा परम दयाशील ! हा अकारण ही एक-मात्र बन्धु ! हा दूसरे के दुःख मे दुःखी होने वाले ! कहाँ चले गए हो। मुझे उत्तर दो। रे नीच शङ्खचूड ! तुमने क्या कर दिया ?

साँपो की रक्षा द्वारा मैंने कोई यश प्राप्त नहीं किया। स्वामी की प्रशसनीय आज्ञा का भी मैंने पालन नहीं किया। दूसरे (व्यक्ति) ने आत्म-समर्पण कर मेरी रक्षा की है। मैं शोचनीय हूँ। हा धिक्कार है! दुःख की बात है ! मै ठगा गया हूँ, खूब ठगा गया हूँ।

इस प्रकार का मै क्षण भर भी जीवित रह कर अपने आप को उपहास-पात्र नहीं बनाऊँगा। अब मै उसके पीछे जाने का प्रयत्न करूँ। [चलते हुए पृथ्वी पर दृष्टि गाड़े हुए]

शुरु शुरु मे (छाती के) विदारण के कारण चौडी, तब आगे पतली होती हुई (भी) मोटे मोटे बिन्दुओ वाली, पत्थरो पर गिरने के कारण बिखरे और फैले हुए पतले कणो वाली, वन-भूमियो में कीडो से व्याप्त

पादौ···व्रजामि – इस श्लोक का अनुवाद करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्पीडपृथ्वीम्, प्रविरलपतिताम्, स्थूलबिन्दुम्, आपातशीर्णप्रसृततनुकणाम्, कीटकीर्णाम्, दुर्लक्ष्याम्, स्त्यानतीलस्वरूपाम् – ये सभी द्वितीया विभक्ति के एकवचनान्त रूप हैं तथा 'रक्तधाराम्' के विशेषण हैं। इस श्लोक में शङ्खचूड उस खून की धारा का वर्णन कर रहा है जिसका अनुसरण करते हुए वह गरुड को देखने का इच्छुक है।

उत्पीड़पृथ्वीम्—उत्पीडेन पृथ्वीम् (पृथु+स्त्रियां ङीप् मोटी)—(छाती के) फाडने के कारण मोटी को।

प्रविरलपतिताम्—प्रविरल यथा स्यात् तथा पतिताम् बिरली बिरली पड़ी हुई को।

स्थूलबिन्दुम्–स्थूला: बिन्दव: यस्या, ताम् (बहुव्री०)–मोटे बिन्दुओ वाली को।

आपातशीर्णप्रसृततनुकणाम्—आपातेन शीर्णा: ($\sqrt{}$शॄ+क्त – बिखरे हुए) प्रसृता: (प्र+सृ+क्त—फैले हुए) तनव कणा यस्या ताम् (बहुव्री०)–गिरने से बिखरे हुए और फैले हुए पतले कणो वाली को।

कीटकीर्णाम्—कीटै: कीर्णा ($\sqrt{}$कॄ+क्त – व्याप्त, भरी हुई) ताम्—कीडो से भरी हुई को।

दुर्लक्ष्या धातुभित्तौ घनतरुशिखरे स्त्याननीलस्वरूपा-
मेना तार्क्ष्यदिदृक्षुर्निपुणमनुसरन् रक्तधारा व्रजामि ॥६॥

वृद्धा—[ससाध्वसं] महाराज ! एष सशोक इव रुदितवदन इत एव त्वरितमागच्छन् हृदयं मे आकुलीकरोति। तत् ज्ञायतां तावत् क एष इति। महाराग्र ! एसो ससोग्रो विग्र रुदिदवग्रणो इदो ज्जेव्व तुरिदं ग्राग्रच्छन्तो हिग्रग्रं मे ग्रकुलीकरेदि। ता जाणीग्रदु दाव को एसो त्ति।

जीमूतकेतु—यथाऽऽह देवी।

शङ्ख०—[साक्रन्दम्] हा त्रिभुवनैकचूडामणे ! क्व मया द्रष्टव्योऽसि। मुषितोऽस्मि भो मुषितोऽस्मि।

जीमूत०—[ग्राकर्ण्य सहर्षं विहस्य] देवि ! मुञ्च शोकम्। श्रस्याय चूडामणिर्नूनं मांसलोभात् केनापि पक्षिणा मस्तकादुत्खायानीयमानोऽस्या भूमौ पपात।

दुर्लक्ष्याम्—दुःखेन लक्षयितुं योग्याम्—कठिनाई से दीखने वाली को।
घनतरुशिखरे—घना ये तरवः तेषां शिखरे—घने वृक्षों की चोटी पर।
स्त्याननीलस्वरूपाम्—स्त्यानं अत एव च नीलं स्वरूपं यस्याः, ताम् (बहुव्री०)—गाढ़, नीले आकार वाली को।
दिदृक्षुः—द्रष्टुम् इच्छुः (√दृश्+सन्+उ)—देखने का इच्छुक।
सशोकः—शोकेन सह वर्तमानः (बहुव्री०)—शोक-युक्त।
रुदितवदनः—रुदितं वदनं यस्य सः (बहुव्री०)—रोते हुए चेहरे वाला।
आकुलीकरोति—आकुल+च्वि+√कृ+लट्—व्याकुल बना रहा है।
त्रिभुवनैकचूडामणे—त्रिभुवनस्य एकः चूडामणिः, तत्सम्बोधने—हे तीन लोकों का एक मात्र चूडामणि ! यहाँ 'चूडामणि' का शब्द श्लिष्ट है। शङ्खचूड तो इसका शिरोमणि अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति के अर्थ में प्रयोग करता है किन्तु जीमूतकेतु इसका शाब्दिक अर्थ 'मस्तक मणि' समझता है।

धातुओं की भित्ति पर कठिनाई से दीखने वाली, घने वृक्षों की चोटी पर गाढ़ी (तथा) नीले आकार वाली इस रक्तधारा का, गरुड को देखने का इच्छुक बना हुआ मैं, अच्छी तरह अनुसरण करता जा रहा हूँ।

वृद्धा—[घबराहट के साथ] महाराज ! यह शोक सहित रोते हुए से चेहरे वाला जल्दी से इधर ही आता हुआ मेरे हृदय को व्याकुल बना रहा है। तो पता लगाइए कि यह कौन है ?

जीमूतकेतु—जैसा तुम (देवी) कहो।

शङ्खचूड़—[क्रन्दन करता हुआ] हे तीनों लोकों के एक मात्र चूडामणि ! मैं तुम्हें कहाँ देखूँ ? मैं ठगा गया, अरे ! मैं ठगा गया हूँ।

जीमूतकेतु—[सुनकर, हर्ष पूर्वक हँस कर] देवी ! शोक को त्याग दो। निश्चय से यह इसका चूडामणि माँस के लोभ से मस्तक से उखाड कर किसी पक्षी से ले जाया जाता हुआ इस भूमि पर गिर पडा है।

द्रष्टव्य —√दृश् + तव्यत्—देखने योग्य।

मुषितः —√मुष् + क्त—लुटा हुआ।

उत्खाय—उद् + √खन् + ल्यप्—उखाड कर।

आनीयमानः —आ + √नी + कर्मवाच्य + शानच्—ले जाया जाता हुआ।

वृद्धा—[सपरितोष मलयवती समालिङ्ग्य] अविधवे ! धीरा भव । न खल्वीदृशी आकृतिर्वैधव्यदु खमनुभवति । अविधए धीरा होहि । ण क्खु ईरिसी आकिदी वहव्वदुक्ख अणुभोदि ।

मल०—[सहर्षम्] अम्ब ! युष्माकमाशिषां प्रभावेण । [पादयो पतति] अम्ब ! तुम्हाण आसिसा पभाएण ।

जीमूतकेतु —[शङ्खचूडमुपसृत्य] वत्स ! किं तव चूडामणिरपहृत ?

शङ्खचूड —आर्य ! न ममैकस्य, त्रिभुवनस्यापि ।

जीमूतकेतु —[शङ्खचूडमवलोक्य] वत्स ! कथमिव ? ।

शङ्खचूड —दु खातिभाराद्बाष्पोपरुध्यमानकण्ठो न शक्नोमि कथयितुम् ।

जीमूतकेतु —[आत्मगत] हन्त ! हतोऽस्मि । [प्रकाशम्]

आवेदय ममाऽऽत्मीय पुत्र ! दु ख सुदु सहम् ।
मयि सङ्क्रान्तमेतत्ते येन सह्यं भविष्यति ।। १० ।।

अविधवे —न विधवा अविधवा (नञ् तत्पु०) तत्सम्बोधने—हे सुहागिन !

न अनुभवति--ऐसी आकृति निश्चय ही वैधव्य का दु ख नहीं भोगती । मुकाबले के लिए देखिए कालिदास की उक्ति—तादृशा आकृतिविशेषा चिर दु खभागिन न भवन्ति —विक्रमोर्वशी ।

वैधव्यदु खम्—विधवाया भाव इति वैध०व्यम्, तस्य दु खम्—रडाप के दु ख को ।

युष्माकम् प्रभावेण—यह उक्ति मलयवती के नम्र स्वभाव की परिचायक है । गुरुजनो के आशीर्वाद से ही उसका सौभाग्य सम्भव होता दीख पडता है—ऐसा उसका विचार है ।

दु खातिभारात्—दु खस्य अतिभार (अतिशयित भार) तस्मात्—दुःख के अत्यधिक बोझ के कारण ।

वृद्धा—[सतोष के साथ मलयवती को गले लगा कर] हे सौभाग्यवती! धीरज धरो। ऐसी आकृति निश्चय ही वैधव्य का दुख नही भोगगी।

मलयवती—[हर्ष पूर्वक] माँ! आप के आशीर्वाद के प्रभाव से। [चरणों पर गिरती है]

जीमूतकेतु—[शङ्खचूड के पास आकर] पुत्र! क्या तेरा चूडामणि छिन गया है?

शङ्खचूड—आर्य! केवल मेरा ही नही, तीनो लोको का भी।

जीमूतकेतु—[शङ्खचूड को देखकर] पुत्र! सो कैसे?

शङ्खचूड—दुख के अधिक वेग के कारण आँसुओ से रुके हुए कण्ठ वाला मै कह नही सकता हूँ।

जीमूतकेतु—[अपने आप] हाय! मै मारा गया। [प्रकट रूप से]

पुत्र! अपने असह्य दुख को मुझ बताओ जिससे मुझ में बटा हुआ यह तुम्हारा (दुःख) सहने योग्य हो जाएगा।

बाष्पोपरुध्यमानकण्ठ—बाष्पेण उपरुध्यमान (उप+$\sqrt{}$रुध्+कर्मवाच्य+शानच्—रुका जाता हुआ) कण्ठ यस्य स—आँसुओ से रुके हुए कण्ठ वाला।

अन्वय.—पुत्र! मम आत्मीयम् सुदु सहम दुःखम् आवेदय, येन मयि सङ्क्रान्तम् एतत् ते सह्यम भविष्यति॥ १०॥

सङ्क्रान्तम्—सम्+$\sqrt{}$क्रम्+क्त—तबदील हुआ हुआ बटा हुआ।

सह्यम्—$\sqrt{}$सह्+यत्—सहन करने योग्य।

मयि भविष्यति—स्नेहीजन में बट जाने से दुख का बोझ हलका हो जाता है। कालिदास ने भी इस विचार को यूँ व्यक्त किया है—'स्निग्धजनसविभक्त हि दुख सह्यवेदन भवति"—(अभिज्ञान० IV) हर्ष ने स्वयं भी प्रियदर्शिका के तीसरे अङ्क में ऐसा ही भाव प्रकट किया है—"एत वृत्तान्त निवेद्य सह्यवेदनम् इव दुख करिष्यामि।"

शङ्खचूड —श्रूयताम् । शङ्खचूडो नाम नाग खल्वहम् । आहारार्थं वासुकिना वैनतेयाय[1] प्रेषित । किं बहुना विस्तरेण ? कदाचिदपि रुधिरधारापद्धति पांसुभिरवकीर्यमाणा दुलक्ष्यतामुपयाति, तत् सङ्क्षेपत कथयामि ।—

विद्याधरेण केनापि करुणाऽऽविष्टचेतसा ।
मम सरक्षिता प्राणा दत्त्वात्मानं गरुत्मते ॥ ११ ॥

जीमू०—कोऽन्य एव परहितव्यसनी ? वत्स ! ननु स्पष्टमेवोच्यतां जीमूतवाहनेनेति । हा हतोऽस्मि मन्दभाग्य ।

वृद्धा—हा पुत्रक ! कथ, त्वयैतत कृतम् ? हा पुत्तअ वह तुए एद किद ?

मलयवती—[सास्रम्] कथ, सत्यीभूतमेव दुश्चिन्तितम् ? कह, सच्चीभूदं ज्जव्व दुच्चिन्तिदं ?

[सर्वे मोह गच्छन्ति ।]

शङ्खचूड —[सास्रम्] नूनमेतौ पितरौ तस्य महासत्त्वस्य । कथमप्रियवादिना मया इमामवस्था नीतौ ! अथवा विषाहते विषधरस्य मुखात् किमन्यन्नि सरति ?

रुधिरधारापद्धति —रुधिरस्य या धारा तस्या पद्धति (ष० तत्पु०)—खून की धारा की पक्ति ।

अवकीर्यमाणा—अव + √कृ + कर्मवाच्य + शानच्—बिखरी जाती हुई ।

अन्वय —केन अपि करुणाऽऽविष्ट चेतसा विद्याधरेण आत्मानम् गरुत्मते दत्त्वा मम प्राणा सरक्षिता ॥ ११ ॥

करुणाऽऽविष्टचेतसा—करुणया आविष्ट चेत यस्य तेन (बहुव्री०)—करुणा से परिपूर्ण हृदय वाले से ।

दत्त्वात्मान गरुत्मते—अपने आपको गरुड को देकर । देने के योग में गरुत्मत् (गरुड) के साथ चतुर्थी का प्रयोग हुआ है ।

---

1 गरुड़ के लिए　2 पांसुभि —धूलि-समूह से ।

शङ्खचूड—सुनिए ! मैं शङ्खचूड नामक नाग हूँ। वासुकि ने मुझे गरुड के लिए आहार-रूप में भेजा था। अधिक विस्तार से क्या लाभ ? कहीं यह खून की धारा की पंक्ति धूलि से बिखेरी गई दुर्लक्ष्य (न) हो जाए। तो संक्षेप से कहता हूँ।

करुणा से भरे हृदय वाले किसी विद्याधर ने गरुड को आत्म-समर्पण करके मेरी प्राण-रक्षा की है।

जीमूतवाहन—कौन दूसरा परोपकार के व्यसन वाला होगा ? पुत्र ! स्पष्ट ही कहो कि "जीमूतवान ने" (मेरी रक्षा की है)। हाय ! मैं अभागा मारा गया।

वृद्धा—हा पुत्र ! तुमने यह कैसे किया ?

मलयवती—[आसुओं सहित] कैसे, जिसकी चिन्ता थी वही सच हो गया ?

[सब बेहोश हो जाते हैं।]

शङ्खचूड—[आसुओं सहित] निश्चय ही यह उस महाप्राणी के माता-पिता हैं। कैसे अप्रियवादी मैंने (इनको) इस दशा को पहुँचा दिया है। अथवा विष के बिना साँप के मुँह से और निकल (भी) क्या सकता है ?

परहितव्यसनी—परेषां हितम् एव व्यसनम् अस्य अस्ति इति परोपकार के व्यसन वाला।

उच्यताम्—√वच्+कर्मवाच्य+लोट्—कहा जाए।

विषादृते—विषात्+ऋते, ऋते के योग में पंचमी का प्रयोग।

विषधरस्य-साँप के। यहाँ विषधर शब्द श्लिष्ट है। इसका अन्य अर्थ दुष्ट व्यक्ति समझना चाहिए। अभिप्राय यह कि दुर्जन के मुख से कटु वचनों के अतिरिक्त निकल भी क्या सकता है ?

ग्रहो! प्राणदस्य सुसदृशं प्रत्युपकृतं जीमूतवाहनस्य शङ्खचूडेन। तत् किमद्यनाऽऽत्मानं व्यापादयामि? ग्रथवा—समाश्वासयामि तावदेतौ। तात! समाश्वसिहि। ग्रम्ब! समाश्वसिहि।

[उभौ समाश्वसितः।]

वृद्धा—वत्से उत्तिष्ठ, मा रुदिहि। वयं किं जीमूतवाहनेन विना जीवामः? तद् समाश्वसिहि तावत्। वच्छ, उट्ठहि मा रोम। ग्रह्मे किं जीमूतवाहणेण विणा जीवह्म। ता समस्सस दाव।

मलय०—[समाश्वस्य] हा ग्रार्यपुत्र, क्वेदानीं मया त्वं प्रेक्षितव्यः। हा ग्रज्जउत्त कहिं दाणिं मए तुमं पविक्खदव्वो?

जीमूतकेतु—हा वत्स गुरुचरणशुश्रूषाभिज्ञ!

चूडामणिं चरणयोर्मम पातयता त्वया।
लोकान्तरगतेनापि नोज्झितो[1] विनयक्रमः[2]॥ १२॥

[चूडामणिं गृहीत्वा] हा वत्स! कथमेतावन्मात्रदर्शनः संवृत्तोऽसि। [हृदय दत्त्वा] ग्रहह!—

प्राणदस्य—प्राणं ददाति इति प्राणदः तस्य—प्राण देने वाले का।

प्राणदस्य शङ्खचूडेन—शङ्खचूड की इस उक्ति में तीखा व्यङ्ग्य है। नायक ने तो शङ्खचूड के प्राण बचाए हैं ग्रौर वह उसके माता पिता की विपत्ति का कारण बना है। उपकार का कैसा ग्रच्छा बदला चुकाया है उसने!

व्यापादयामि—वि+ग्रा+√पद्+णिच—वध करता हूँ।

गुरुचरणशुश्रूषाभिज्ञ—गुर्वो चरणयो या शुश्रूषा, ताम् ग्रभिजानाति इति, तत्सम्बोधने—हे माता पिता के चरणों की सेवा (की विधि) को जानने वाले।

ग्रन्वय—मम चरणयो चूडामणिम् पातयता त्वया लोकान्तरगतेन ग्रपि विनयक्रम न उज्झित॥ १२॥

---

1 उज्झितो—छोड़ा गया 2 विनय—नम्रता का क्रम।

ओह ! प्राण देने वाले जीमूत का शङ्खचूड ने समुचित प्रत्युपकार किया है। तो क्या इसी समय अपने आप को मार डालूँ ? अथवा इन दोनो को धैर्य बन्धाता हूँ। पिता जी ! धीरज धरिए। माता जी ! धैर्य धारण कीजिए।

[दोनों सचेत होते हैं।]

वृद्धा—बेटी ! उठो। रोओ मत। क्या हम जीमूतवाहन के बिना जीवित रह सकते हैं ? अत धैर्य धारण करो।

मलयवती—[होश में आकर] आर्यपुत्र ! मैं आपको कहाँ देखूँगी ?

जीमूतकेतु—हा पुत्र ! माता-पिता की चरण-सेवा की विधि को जानने वाले ! चूडामणि को मेरे चरणो में गिरा कर परलोक जाते हुए भी तुम ने विनय की मर्यादा को नही छोडा।

[चूडामणि को लेकर] हा पुत्र ! कैसे तुम्हारे दर्शन इस (चूडामणि) तक ही सीमित हो गए हैं। [हृदय से लगा कर] हाय !

चूडामणि क्रम —जब जीमूतवाहन जीवित था तो पिता को प्रणाम करते समय वह उनके चरणो को अपनी चूडामणि से छूता था। मर कर भी उसने अपनी चूडामणि को उनके चरणो में ही फेंका है अत परलोक जाते समय भी विनय की मर्यादा का पालन किया है।

पातयता —√पत्—णिच + शतृ + तृ०, एक वचन गिराते हुए से।

लोकान्तरगतेन—अन्य लोक इति लोकान्तरम्, तत्र गतेन— परलोक गए हुए से।

एतावन्मात्रदर्शन एतावन्मात्रम् (एतावत् एव) दर्शन यस्य स (बहुव्री०)— इतने तक ही (सीमित) है दर्शन जिस का। अभिप्राय यह कि जीमूतवाहन के दर्शनो की अभिलाषा को अब चूडामणि देख कर ही सन्तुष्ट करना होगा।

अहो ! प्राणदस्य सुसदृशं प्रत्युपकृतं जीमूतवाहनस्य शङ्खचूडेन। तत् किमद्युनैवाऽऽत्मानं व्यापादयामि ? अथवा—समाश्वासयामि तावदेतौ। तात ! समाश्वसिहि। अम्ब ! समाश्वसिहि।

[उभौ समाश्वसितः।]

वृद्धा—वत्से, उत्तिष्ठ, मा रुदिहि। वयं किं जीमूतवाहनेन विना जीवाम ? तत् समाश्वसिहि तावत्। वच्चे, उट्ठेहि, मा रोअ। अह्मे किं जीमूतवाहणेण विणा जीवह्म। ता समस्सस दाव।

मलय०—[समाश्वस्य] हा आर्यपुत्र, क्वेदानीं मया त्वं प्रेक्षितव्य। हा अज्जउत्त, कहिं दाणिं मए तुमं पेक्खिदव्वो ?

जीमूतकेतु.—हा वत्स गुरुचरणशुश्रूषाभिज्ञ !

चूडामणिं चरणयोर्मम पातयता त्वया।
लोकान्तरगतेनापि नोज्झितो[1] विनयक्रमः[2] ! ॥ १२ ॥

[चूडामणिं गृहीत्वा] हा वत्स ! कथमेतावन्मात्रदर्शनः संवृत्तोऽसि।

[हृदये दत्वा] अहह !—

प्राणदस्य—प्राणाः ददाति इति प्राणदः, तस्य—प्राण देने वाले का।

प्राणदस्य…शङ्खचूडेन—शङ्खचूड की इस उक्ति में तीखा व्यङ्ग्य है। नायक ने तो शङ्खचूड के प्राण बचाए हैं और वह उसके माता-पिता की विपत्ति का कारण बना है। उपकार का कैसा अच्छा बदला चुकाया है उसने !

व्यापादयामि—वि+आ+$\sqrt{}$पद्+णिच्—वध करता हूँ।

गुरुचरणशुश्रूषाभिज्ञ—गुर्वोः चरणयो या शुश्रूषा, ताम् अभिजानाति इति, तत्सम्बोधने—हे माता-पिता के चरणों की सेवा (की विधि) को जानने वाले।

अन्वयः—मम चरणयोः चूडामणिम् पातयता त्वया लोकान्तरगतेन अपि विनयक्रम न उज्झित. ! ॥ १२ ॥

1. उज्झितो—छोड़ा गया 2. विनय—नम्रता का ०ग।

ग्रोह ! प्राण देने वाले जीमूत वा शङ्खचूड ने समुचित प्रत्युपकार किया है। तो क्या इमी समय ग्रपने ग्राप को मार डालूँ ? ग्रथवा इन दोनो को धैर्य बन्धाता हूँ। पिता जी ! धीरज धरिए। माता जी ! धैर्य धारण कीजिए।

[दोनों मचेत होते हैं।]

वृद्धा—बेटी ! उठो। रोग्रो मत। क्या हम जीमूतवाहन के बिना जीवित रह सकते हैं ? ग्रत. धैर्य धारण करो।

मलयवती—[होश में ग्राकर] ग्रार्यपुत्र ! मैं ग्रापको कहाँ देखूँगी ?

जीमूतकेतु—हा पुत्र ! माता-पिता की चरण-सेवा की विधि को जानने वाले ! चूडामणि को मेरे चरणो में गिरा कर परलोक जाते हुए भी तुम ने विनय की मर्यादा को नही छोडा।

[चूडामणि को लेकर] हा पुत्र ! कैसे तुम्हारे दर्शन इस (चूडामणि) तक ही सीमित हो गए हैं। [हृदय से लगा कर] हाय !

— —

चूडामणि ''क्रम —जब जीमूतवाहन जीवित था तो पिता को प्रणाम करते समय वह उनके चरणो को ग्रपनी चूडामणि से छूता था। मर कर भी उसने ग्रपनी चूडामणि को उनके चरणो में ही फेंका है ग्रत परलोक जाते समय भी विनय की मर्यादा का पालन किया है।

पातयता – √पत् + णिच् + शतृ + तृ०, एक वचन गिराते हुए से।

लोकान्तरगतेन– ग्रन्य लोक इति लोकान्तरम्, तत्र गतेन – परलोक गए हुए से।

एतावन्मात्रदर्शन एतावन्मात्रम् (एतावत् एव) दर्शनं यस्य स (बहुव्री०)— इतने तक ही (सीमित) है दर्शन जिस का। ग्रभिप्राय यह कि जीमूतवाहन के दर्शनो की ग्रभिलाषा को ग्रब चूडामणि देख कर ही सन्तुष्ट करना होगा।

भक्त्या सुदूरमवनामितनम्रमौले[1]
शश्वत्तव प्रणमतश्चरणौ मदीयौ ।
चूडामणिनिकषणैर्मसृणोऽप्यहित्र
गाढ विदारयति मे हृदय कथ नु ? ॥ १३ ॥

वृद्धा—हा पुत्र जीमूतवाहन ! यस्य ते गुरुजनशुश्रूषा वर्जयित्वा अन्यत् सुख न रोचते स कुत्रदानीं पितरमुज्झित्वा स्वर्गसुखमनुभवितु गतोऽसि ? हा पुत्र जीमूदवाहण ! जस्स दे गुरुप्रणसुस्सूस वज्जिम अण्ण सुह ण रोअदि सो कहि दाणि पिदर उज्झिम सग्गसुहमणुहोदु गदोसि ?

जीमू०—[सास्रम्] देवि ! कि जीमूतवाहनेन विना जीवामो वय यदेव प्रलपसि ?

मल०— तद् देहि मे आर्यपुत्रचिह्न चूडामणि, येनैन हृदये कृत्वा ज्वलन प्रवेशेन अपनयामि हृदयस्य सतापदु खम् । ता देहि मे अज्जउत्तचिण्ह चूडामणि जेण एद हिअर कदुअ जलणपवेसेण अवणेमि हिअअस्स सदावदुक्ख ।

अन्वय —भक्त्या सुदूरमवनामितनम्रमौले मदीयौ चरणौ शश्वत् प्रणमत तव निकषणै मसृण अपि चूडामणि मे हृदयम गाढम कथम नु विदारयति ? ॥ १३ ॥

अवनामितनम्रमौले —अवनामित (अव+नम्+णिच+क्त) नम्र मौलि येन स (बहुव्री०)—झुकाया गया है नम्र सिर जिससे ।

प्रणमत —प्र+√नम्+शतृ+ष०, एक वचन—झुकाते हुए का ।

---

1 मौलि =सिर 2 लगातार 3 निकषणै =रगड़ों से 4 मसृण —चिकना ।

नीच तक नम्र सिर झुकाए, श्रद्धा के साथ सदा मेरे चरणों को प्रणाम करने वाले तुम्हारे सिर की यह मणि (चरणों के साथ) रगडने से मुलायम बनी हुई भी, मेरे हृदय को कैसे अत्यधिक विदीर्ण बना रही है।

वृद्धा—हा पुत्र जीमूतवाहन ! गुरु जनों की सेवा को छोड कर जिसे अन्य सुख अच्छा नही लगता था, वह तुम अब पिता को त्याग कर स्वर्ग का सुख भोगने के लिए कहाँ चले गए हो ?

जीमूतकेतु—[आसुओं सहित] देवी ! क्या जीमूतवाहन के बिना हम जी सकेंगे जो तुम इस प्रकार विलाप कर रही हो।

मलयवती—[पावों में गिर कर, हाथ जोड़े हुए] तो मुझे आर्य पुत्र की निशानी चूडामणि को दे दीजिए, ताकि इसे हृदय से लगा कर मैं अग्नि प्रवेश द्वारा हृदय के सन्ताप के दुःख को दूर करूँ।

विदारयति—वि + √दृ + णिच्—फाड़ती है, टुकडे टुकडे करती है।

भवत्या नु—जीमूतकेतु को आश्चर्य इस बात का है कि मेरे चरणों पर बार बार रगड़ने से मुलायम एवं अहिंसक बनी हुई यह चूडामणि आज मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े कैसे कर रही है ?

ज्वलनप्रवेशेन—ज्वलति इति ज्वलन, तस्मिन् प्रवेशेन—अग्नि में प्रवेश द्वारा।

जीमू०—पतिव्रते ! किमेवमाकुलयसि ? ननु । सर्वथामेवास्माकमय निश्चय ।

वृद्धा—महाराज ! तत् किमस्माभि प्रतिपाल्यते[1] ? महाराअ ! ता किं अम्हेहिं पडिपालीअदि ?

जीमू०—न खलु देवि ! किञ्चित् किन्त्वाहिताग्नेर्नान्येनाग्निना सस्कारो विहितः, अतोऽग्निहोत्रशरणादग्नीनादायाऽऽत्मानमुद्दीपयाम[2] ।

शङ्खचूड.—[आत्मगत] कष्ट ! ममैतस्य कृते सकलमेवेद विद्याधरकुलमुच्छिन्नम् । तदेव तावत् [प्रकाश] तात ! न खल्वनिश्चत्यैव युक्तमिदमीदृश साहसमनुष्ठातुम् । विचित्राणि हि दैवविलसितानि । कदाचिन्नाय नाग इति ज्ञात्वा परित्यजेन्नागशत्रु । तदनयैव दिशा वैनतेयमनुसरामस्तावत्

आकुलयसि—आकुल करोषि इति, आकुल+णिच्+लट (नाम धातु)—व्याकुल कर रही हो ।

किन्त्वाहिताग्नेर्नान्येनाग्निना—किन्तु+आहिताग्ने +न+अन्येन+अग्निना ।

आहिताग्ने —आहिता (आ+$\sqrt{}$धा+क्त) अग्नय येन (बहुव्री०) तस्य —स्थापित कर रखी हैं अग्नियाँ जिसने, उसका । शास्त्र के नियमानुसार गृहस्थी के लिए नित्य प्रति हवन करने का आदेश है । जिन अग्नियों में हवन होता है उन्हे 'गार्हपत्य' आहवनीय' तथा 'दक्षिण कहते हैं । नित्य हवन करने वाले को अग्निहोत्री कहते हैं । अग्निहोत्री का दाह सस्कार भी हवन की अग्नि से विहित है ।

विहितः —वि+$\sqrt{}$धा+क्त—नियत ।

अग्निहोत्रशरणात्—अग्निहोत्रस्य शरणात् अग्नि होत्र के गृह से ।

उच्छिन्नम्—उत्+$\sqrt{}$छिद्+क्त—नष्ट हुआ ।

---

1 प्रतीक्षा की जाती है 2 उद्दीपयाम —जलाते हैं ।

जीमूतकेतु—हे प्रतिव्रते ! क्यों इस प्रकार व्याकुल बना रही हो ? हम सब का भी यही निश्चय है।

वृद्धा—महाराज ! तो हम किस की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

जीमूतकेतु—देवी ! किसी की भी नहीं। किन्तु अग्नि-होत्री का (दाह) संस्कार अन्य अग्नि से नहीं होता, अतः अग्निहोत्र की शाला से अग्नि ला कर अपने को जलाते हैं।

शङ्खचूड—[अपने आप] कितने दुःख की बात है कि मुझ अकेले के लिए यह सारे का सारा विद्याधर कुल नष्ट होने लगा है। तो इस प्रकार (कहता हूँ)। [प्रकट रूप से] पूज्य ! निश्चय ही बिना सोचे ऐसा साहस का कार्य करना उचित नहीं है। भाग्य की लीलाएँ अनोखी होती हैं। "यह नाग नहीं है"—ऐसा जान कर शायद नाग-शत्रु (गरुड, जीमूतवाहन को) छोड़ देवे। तो इसी दिशा में ही गरुड का अनुसरण करते हैं।

खल्वनिश्चित्यैव—खलु+अनिश्चित्य+एव—न निश्चय करके।

अनुष्ठातुम्—अनु+√स्था+तुमुन्—करने के लिए।

दैवविलसितानि—दैवस्य विलसितानि—भाग्य की लीलाएँ।

वृद्धा—सर्वथा देवतानां प्रसादेन जीवत पुत्रस्य मुखं पश्याम । सव्वहा देवदाण पसादेण जीवतस्स पुत्तप्रस्स मुहं दसेमा ।

मलयवती—[आत्मगत] दुर्लभं खल्वेतन्मम मन्दभाग्यायाः । दुल्लहं क्खु एदं मम मदभग्गाए ।

जीमूतकेतु—वत्स ! अवितथैवा तव भारती भवतु । तथाऽपि साग्नीनामेवा स्माकं युक्तमनुसर्तुम् । तदनुसरतु भवान् । वयमप्यग्निशरणादग्निमादाय त्वरितमेवानुगच्छाम । [पत्नीवधूसमेतो निष्क्रान्तः]

शङ्खचूड—तद् यावत् गरुडमनुसरामि । [अग्रतो निर्वर्ण्य]

> कुर्वाणो रुधिरार्द्रचञ्चुकषणैर्द्रोणीरिवाद्रेस्तटी[1][2]
> प्लुष्टोपान्तवनान्तरः स्वनयनज्योतिः शिखाश्रेणिभिः ।
> मज्जद्वज्रकठोरघोरनखरप्रान्तावगाढावनिः,
> शृङ्गाग्रे मलयस्य पन्नगरिपुर्दूरादयं दृश्यते ॥ १४ ॥

अवितथा—तथा(=सत्यम्) न विद्यते इति वितथा (झूठ) न वितथा इति अवितथा (सच) ।

साग्नीनाम्—अग्निभिः सह वर्तमानं, तेषाम्— (तीनों प्रकार की) अग्नियों सहित ।

अनुसर्तुम्—अनु + √सृ + तुमुन्—पीछा करना ।

आदाय—आ√ + दा + ल्यप्—लाकर ।

अन्वय—रुधिरार्द्रचञ्चुकषणैः अद्रेः तटीं द्रोणीरिव कुर्वाणः स्वनयनज्योतिः शिखाश्रेणिभिः प्लुष्टोपान्तवनान्तरः मज्जद्वज्रकठोर-घोर नखर प्रान्तावगाढावनिः अयम पन्नग-रिपुः मलयस्य शृङ्गाग्रे दूराद् दृश्यते ॥ १४ ॥

कुर्वाणः—√कृ + शानच्—करता हुआ, बनाता हुआ ।

---

1. अद्रेः—पर्वत की 2 स्थानों को ।

वृद्धा—सब प्रकार से देवताओं की कृपा से जीवित पुत्र का मुख देखें।

मलयवती—[मन ही मन] मुझ अभागिन के लिए यह दुर्लभ ही है।

जीमूतकेतु—पुत्र ! तुम्हारी यह वाणी सत्य हो। फिर भी अग्नि के साथ ही हमारा अनुसरण करना उचित है। तो आप पीछा करें हम भी अग्नि-शाला से आग ले कर शीघ्र ही पीछे पीछे आते हैं।

[पत्नी तथा पुत्र-वधू सहित चला गया]

शङ्खचूड—तो गरुड का पीछा करता हूँ। [आगे ध्यान से देख कर] खून से गीली चोंच को रगड़ने से पर्वत की ढलानों को नौका की तरह बनाता हुआ, अपने नयनों की ज्योति की ज्वालाओं के समूह से समीप के वन के भीतरी भाग को जलाता हुआ घुसते हुए वज्र की तरह कठोर तथा भयंकर नख के अग्र-भागों से पृथ्वी को धसाता हुआ, मलयपर्वत की चोटी के अग्र-भाग पर दूर से ही वह नाग-शत्रु दीख पड़ता है।

रुधिरार्द्रचञ्चुकषणैः—रुधिरेण आर्द्रा या चञ्चूः तस्या कषणैः—खून से गीली चोंच की रगड़ों से।

द्रोणीरिव—द्रोणी + इव—नौका की तरह। गरुड खून से गीली चोंच को कदाचित् सुखाने के लिए चट्टानों से रगड़ता था जिस से पत्थर के बीच के भाग के उखड़ जाने से, वह नाव जैसा बन जाता था।

प्लुष्टोपान्तवनान्तर—प्लुष्टम् (दग्धम्) उपान्ते (= समीपे) वनस्य अन्तर येन सः (बहुव्री०)—जला दिया है निकट के वन के मध्य भाग को जिस ने।

स्वनयनज्योतिःशिखाश्रेणिभिः—स्वनयनयोः ज्योतिषः शिखानां श्रेणिभिः—अपने नयनों की ज्योति की ज्वालाओं के समूहों से।

मज्जत्०—मज्जत् वज्रवत् कठोरा घोरा नखरा तेषां अग्रैः अवगाढा अवनिः येन सः (बहुव्री०)—घुसते हुए वज्र की तरह कठोर (तथा) भयंकर नाखूनों के अग्र-भागों से धसा दिया है पृथ्वी को जिस ने।

मज्जतः—√मज्ज् + शतृ—घुसते हुए।

अवगाढा—अव + √गाह् + क्त—धसी हुई।

पन्नगरिपु—पन्नगानां रिपुः (ष० तत्पु०)—नागों का शत्रु गरुड।

[तत प्रविशत्यासनस्थ पुरःपतितनायको गरुड]

गरुड — जन्मन प्रभृति भुजङ्गपतीनश्नता नेदमाश्चर्यं मया दृष्ट पूर्वं यदय महासत्त्वो न केवल न व्यथते[1] प्रत्युत[2] प्रहृष्ट इव किमपि दृश्यते । तथाहि–

ग्लानि[3]र्नाधिकपीयमानरुधिरस्याप्यस्ति धैर्य्योदधे-
र्मांसोत्कर्त्तनजा रुजोऽपि वहत प्रीत्या प्रसन्न मुखम् ।
गात्र यन्न विलुप्तमेव पुलक[4]स्तत्र स्फुटो लक्ष्यते
दृष्टिर्मय्युपकारिणीव निपतत्यस्यापकारिण्यपि ॥ १५ ॥

तत कुतूहलमेव जनितमस्या धैर्यवृत्त्या। भवतु न भक्षयाम्येवैनम । पृच्छामि तावत्कोऽयमिति । [अपसर्पति ।]

जन्मन प्रभृति—प्रभृति के योग में जन्मन् के साथ प० विभक्ति का प्रयोग हुआ है ।

भुजङ्गपतीन् —भुजङ्गाना पतीन् (प० तत्पु०)—साँपो के स्वामियो को ।

अश्नता—√अश् + शतृ + त० एक वचन—खाते हुए से ।

अन्वय —अधिकपीयमानरुधिरस्य अपि धैर्योदधे ग्लानि न मांसोत्कर्त्तनजा रुज अपि वहत अस्य प्रीत्या मुख प्रसन्नम्, यत् गात्रम् न विलुप्तम् तत्र एव स्फुट पुलक लक्ष्यते, अपकारिणि अपि मयि उपकारिणि इव दृष्टि निपतति ॥ १५ ॥

अधिकपीयमानरुधिरस्य—अधिक पीयमान (√पा + कर्मवाच्य + शानच्) रुधिर यस्य स (बहुव्री०) तस्य—अधिक पिया गया है खून जिस का उस का ।

धैर्य्योदध —धैर्य्यम् एव उदधि तस्य—धैर्य रूपी समुद्र की ।

मांसोत्कर्त्तनजा —मासस्य उत्कर्त्तनात् जायते इति (उपपद तत्पु०)—मास काटने से पैदा हुई ।

---

1 पीडित होता है 2 बल्कि 3 ग्लानि=दु ख 4 पुलक =रोमाञ्च ।

[तब मन पर बैठा हुआ गरुड तथा सामने पड़ा हुआ नायक प्रवेश करते हैं]

गरुड़ — जन्म से लेकर नाग-पतियों को खाते हुए मैं ने यह आश्चर्य पहले नहीं देखा कि इस महात्मा को केवल पीडा ही नहीं होती, बल्कि (यह) कुछ प्रसन्न सा भी दीख पड़ता है। जब कि —

अधिक खून के पी लिए जाने पर भी इस धैर्य के सागर को ग्लानि नहीं है। माँस काटने से पैदा हुई पीडा का भी सहन करते हुए का मुख प्रीति से प्रसन्न है। जो अंग नष्ट नहीं हुआ वहाँ पर यह रोमाञ्च स्पष्ट दिखाई देता है। इस की दृष्टि भी मुझ अपकार करने वाले पर भी उपकार करने वाले की तरह पड रही है।

इस कारण इस के इस धैर्य स्वभाव से उत्सुकता ही पैदा हुई है। अच्छा इस नहीं खाऊँगा। पूछता हूँ भला यह कौन है? [पंखे हटाता है]

वहत — √वह + शतृ + ष० एक वचन — रखते हुए का सहन करते हुए का।

विलुप्तम् वि + √लुप + क्त नष्ट हुआ हुआ।

दृष्टि० अपकारिण्यपि भावार्थ यह है कि यद्यपि मैं ने इस का अपकार किया है तथापि यह मेरी ओर इस प्रकार देख रहा है मानो मैं ने इस का उपकार किया हो।

नायक —[मांसोत्कर्तनविमुखमुपलक्ष्य]

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।
तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत्, किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ! ॥ १६ ॥

गरुड —[आत्मगतम्] आश्चर्यम्! कथमस्यामवस्थायामेवमूर्जितमभिधत्ते[1]?
[प्रकाशम्] अहो महासत्त्व—

आवर्जितं मया चञ्च्वा हृदयात् तव शोणितम्[2] ।
अनेन धैर्येण पुनस्त्वया हृदयमेव न[3] ॥ १७ ॥

तत कस्त्वमिति श्रोतुमिच्छामि ।

नायक —एवं क्षुधाकुलो[4] भवान्न श्रवणयोग्यः । तत् कुरुष्व तावत् प्रथमं मम मांसशोणितेन तृप्तिम् ।

मांसोत्कर्तनविमुखम्—मांसस्य उत्कर्तनात् विमुखम्—मांस काटने से विमुख हुए को।

अन्वय —गुरुत्मन्! मम शिरामुखैः रक्तम् स्यन्दते एव, मम देहे अद्य अपि मांसम् अस्ति, तव अपि तावत् तृप्तिम् न पश्यामि, तथा अपि भक्षणात् त्वम् किम् विरतः? ॥ १६ ॥

शिरामुखैः —शिराणां मुखैः —नाड़ियों के अगले भागों से ।

विरतः —वि+$\sqrt{}$रम्+क्त—हटा हुआ ।

अन्वय —मया चञ्च्वा तव हृदयात् शोणितम् एव आवर्जितम्, पुनः अनेन धैर्येण त्वया न हृदयम् एव ॥ १७ ॥

---

1 ऊर्जितम्—तेज युक्त 2 खून 3 हमारा 4 भूख से व्याकुल ।

नायक--[मांस काटने से विमुख हुआ देख कर]

(मेरी) नाड़ियों के मुख से रक्त बह रहा है। अब भी मेरे शरीर पर मांस है। तुम्हारी भी अभी तृप्ति नहीं हुई। हे गरुड़! तुम खाने से रुक क्यों गए हो?

गरुड़--[मन ही मन] आश्चर्य! आश्चर्य! इस अवस्था में भी कैसे तेज से युक्त (बात) कह रहा है। [प्रकट] अहो महात्मन्!

मैं ने चोंच से तुम्हारे हृदय मे खून लिया है किन्तु तुमने तो इस धैर्य्य से हमारा हृदय ही ले लिया है।

"तब तुम कौन हो?"--यह सुनना चाहता हूँ।

नायक--इस प्रकार भूख से पीड़ित हुए तुम (मेरी बात को) सुनने के योग्य नहीं हो। मेरे मांस तथा खून से तृप्ति तो कर लो।

आवर्जितम् .न --अभिप्राय यह है कि गरुड़ ने तो नायक के हृदय का एक अंश (अर्थात् खून) ही लिया है, किन्तु जीमूतवाहन ने अपने धैर्य्य से गरुड़ का सारा हृदय ही हर लिया है।

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि गरुड़ का खून लेने का कार्य तो 'कायिक' (Physical) है किन्तु नायक का हृदय हरने का कार्य आध्यात्मिक (spiritual) है।

शङ्खचूडः—[सहसोपसृत्य] तार्क्ष्य ! न खलु न खलु साहसमनुष्ठेयम् । नायं नागः । परित्यजैनम् । मा भक्षय । अहं तवाऽऽहारार्थं प्रेषितोऽस्मि वासुकिना । [उरो[1] ददाति ।]

नायकः—[शङ्खचूडं दृष्ट्वा, सविषादमात्मगतम्] कष्ट ! विफलीकृतो मे मनोरथः शङ्खचूडेनाऽऽगच्छता ।

गरुडः—[उभौ निरूप्य] द्वयोरपि भवतोर्वध्यचिह्नम् । कः खलु नाग इति नावगच्छामि ।

शङ्खचूडः—अस्थाने[2] एव भ्रान्तिः ।

> आस्तां स्वस्तिकलक्ष्म वक्षसि तनौ[3] नालोक्यते कञ्चुक.[4]
> जिह्वे जल्पतः[5] एव मे न गणिते नाम त्वया द्वे अपि ।
> तिस्रस्तीव्रविषाग्निधूमपटलव्याजिह्मरत्नत्विषो
> नैता दुःसहशोकफूत्कृतमरुत्स्फीताः फणाः पश्यसि ! ॥१८॥

अनुष्ठेयम्—अनु+√स्था+यत्—करना चाहिए ।
विफलीकृत—विफल+च्वि+√कृ+क्त—विफल कर दिया ।
अन्वय—वक्षसि स्वस्तिकलक्ष्म आस्ताम्, तनौ कञ्चुकः न आलोकित जल्पतः द्वे मे जिह्वे त्वया न गणिते नाम, तीव्रविषाग्निधूमपटलव्याजिह्मरत्नत्विषः दुःसहशोकफूत्कृतमरुत्स्फीताः एताः फणाः न पश्यसि ? ॥ १८ ॥
आस्ताम्—√आस् (फेंकना)+लोट्—रहने दो ।
स्वस्तिकलक्ष्म—स्वस्तिकस्य लक्ष्म (ष० तत्पु०)—स्वस्तिक का चिह्न । महापुरुषों की छाती पर स्वस्तिक का चिह्न (卐) होता है, ऐसा विश्वास किया जाता था । कई टीकाकारों ने स्वस्तिक के चिह्न को शङ्खचूड की ओर जोड़ने की चेष्टा की है किन्तु यह उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि नागों की छाती पर स्वस्तिक-चिह्न नहीं होता ।

---

1. छाती को 2. बे मौका 3 शरीर पर 4 चोगा, केंचुली 5 बोलते हुए की ।

शङ्खचूड—[सहसा आ कर] हे गरुड ! नही नही। ऐसा साहस नही करना होगा। यह नाग नही है। इसे छोड दो । मुझे खाओ। वासुकि ने तुम्हारे भोजन के लिए मुझे भेजा है।

नायक—[शङ्खचूड को देख कर, दु ख सहित अपने आप] हाय कष्ट ! शङ्खचूड ने आ कर मेरे मनोरथ को भग कर दिया।

गरुड—[दोनों को ध्यान से देख कर] तुम दोनो ही वध्य चिह्न वाले हो। " नाग कौन है ? " —यह नही समझ पा रहा हूँ।

शङ्खचूड—(यह) भ्रम तो कैसा है।

छाती पर स्वस्तिक का चिह्न रहने दो शरीर पर केंचुली को (भी) नही देखा। चालते हुए मेरी दो जीभें सम्भवत आप ने नही गिनी (किन्तु) तीव्र विष की अग्नि के धूएँ के समूह से पीली पडी हुई रत्नो की कान्ति वाले तथा असह्य शोक की फुवार की वायु से बढे हुए ये तीन फण भी नही देख रहे हो ?

तीव्र०—तीव्र विष एव अग्नि, तस्य य धूमपटल, तेन व्याजिह्या रत्नाना त्विष यासा ता (बहुव्री०)—तीव्र विष की अग्नि के धूए के समूह से पीली पडी हुइ रत्नो की कान्ति है जिन की, वे (फण)।

दु सहशोकफूत्कृतमरुतस्फीता —दु सहेन शोकेन यत् फूत्कृत, तस्य मरुता स्फीता —असह्य शोक की फुवार की वायु से फैले हुए ये (फण)।

भावनाम् पश्यसि—शङ्खचूड गरुड से कह रहा है कि तुम्हें नाग तथा नायक में अन्तर स्पष्ट ही दीख पडना चाहिए था। यदि तुम ने इस के स्वस्तिक चिह्न को नहीं देखा तो इस के शरीर में केंचुली का अभाव तो स्पष्ट ही था। यदि तुम ने मेरी दो जिह्वाओं को नही गिना, तो मेरे फण तो तुम्हें दीख जाने चाहिएँ थे।

गरुडः—[उभौ निरूप्य, शङ्खचूडस्य फणां दृष्ट्वा] तत् क खलु मया व्यापादित ?

शङ्खचूड.—विद्याधरवंशतिलको जीमूतवाहन । कथमकारुणिकेन त्वया इदमनुष्ठितम् ?

गरुडः—अपे अयमसौ विद्याधरकुमारो जीमूतवाहन !
सर्वथा महत्यहःपङ्के निमग्नोऽस्मि।

मेरौ मन्दरकन्दरासु हिमवत्सानौ महेन्द्राचले
कैलासस्य शिलातलेषु मलयप्राग्भारदेशेष्वपि ।
उद्देशेष्वपि[1] तेषु तेषु बहुशो[2] यस्य श्रुतं तन्मया
लोकालोकविचारिचारणगणैरुद्गीयमान यश ॥ १९ ॥

नायक. —भो फणिपते ! किमेवमुद्विग्नोऽसि ? ।

शङ्खचूडः —किमस्थानमिदमावेगस्य ?

व्यापादित —वि+आ+√पद्+णिच्+क्त—मार दिया गया ।

अकारुणिकेन—न कारुणिकेन (करुणा शीलम् अस्य इति)—नञ् तत्पु०—कठोर।

अन्वय—मेरौ, मन्दरकन्दरासु, हिमवत्सानौ, महेन्द्राचले, कैलासस्य शिलातलेषु, मलयप्राग्भारदेशेषु अपि तेषु तेषु उद्देशेषु अपि लोकालोकविचारिचारणगणैः उद्गीयमानम् यस्य तत् यश मया बहुश श्रुतम् ॥ १९ ॥

मेरौ—मेरु (पर्वत) पर । मेरु नाम का पुराणों में एक सोने का पर्वत बताया गया है । पौराणिक उक्ति के अनुसार यह पृथ्वी के मध्य में स्थित है तथा नक्षत्र इस के चारों ओर घूमते हैं ।

मन्दरकन्दरासु—मन्दरस्य कन्दरासु (ष० तत्पु०) मन्दर (पर्वत) की कन्दराओं में ।

हिमवत्सानौ—हिमवत (हिमम् अस्य अस्तीति हिमवान् तस्य) सानौ—हिमालय की चोटी पर ।

मलयप्राग्भारदेशेषु—मलयस्य प्राग्भारदेशेषु—मलय के पठारों पर ।

---

1 उद्देशेषु—स्थानों पर 2 बहुत बार ।

गरुड़—[दोनों को ध्यान से देखकर (फिर) शङ्खचूड़ ने फण को देखकर] तब फिर मैं ने किसे मार दिया।

शङ्खचूड़ विद्याधर वंश के शिरोमणि जीमूतवाहन को। तुम निर्दयी ने यह कैसे कर दिया?

गरुड़—अरे! यह (क्या) वह विद्याधर कुमार जीमूतवाहन है?

मेरु पर मन्दर की कन्दराओं में हिमालय की चाटियों पर महेन्द्र पर्वत पर, कैलास के शिलातलों पर, मलय पर्वत के पठारों पर भी तथा उन उन स्थानों पर भी, लोकालोक (पर्वत) पर घूमने वाले चारण समूहों से गाया जाता हुआ जिस का यश मैं ने कई बार सुना है।

नायक—हे नागराज! इस प्रकार व्याकुल क्यों हो?

शङ्खचूड़ क्या यह व्याकुलता का अवसर नहीं है?

लोकालोकविचारि चारणगणैः—लोकालोके ये विचारिणः (—विचरण शीला) य चारिण॰ तथा गण लोकालोक (पर्वत) पर घूमने वाले भाटों के समूहों से।

लोकालोक पुराणों में लोकालोक एक पर्वत बताया गया है जिस ने विश्व के सभी द्वीपों को घेर रखा है। दीखने वाली पृथ्वी की यह अन्तिम सीमा मानी गई है। इस से परे पूर्ण अन्धकार है। सूर्य तथा अन्य नक्षत्र भी इस सीमा का उल्लंघन नहीं करते।

उद्गीयमानम् उत् + √गै + कर्मवाच्य + शानच् गाया जाता हुआ।

महापङ्कः मह (पापम्) एव पङ्कः तस्मिन् (कर्मधा॰) पाप रूपी कीचड़ में।

निमग्न नि + √मज्ज + क्त—डूबा हुआ।

स्वशरीरेण शरीर तार्क्ष्यात् परिरक्षता मदीयमिदम् ।
युक्त नेतु भवता पातालतलादपि तल माम् ? ॥ २० ॥

गरुड —अये ! करुणार्द्रचेतसा अनेन महात्मना अस्मद्ग्रासगोचरपतितस्यास्य फणिन प्राणान् रक्षितु स्वदेह आहारार्थमुपनीत[1] । त महदकृत्यमेत मया कृतम् । किं बहुना, बोधिसत्त्व एवाय व्यापादित । तस्य महत पापस्याग्निप्रवेशादृते नान्यत् प्रायश्चित्त पश्यामि । तत् क्व नु खलु वह्नि समासादयामि ? [दिश पश्यन्] अये ! अमी केऽपि गृहीताग्नय इत एवागच्छन्ति तद् यावदेतान् प्रतिपालयामि[2] ।

शङ्खचूड —कुमार ! पितरौ ते प्राप्तौ ।

नायक —[ससम्भ्रमम्] शङ्खचूड ! समुपविश्यानेनोत्तरीयेणाच्छादितशरीर कृत्वा धारय माम् । अन्यथा कदाचिदीदृश सहसैव मां दृष्ट्वा पितरौ जीवित जह्याताम् ।

अन्वय —स्वशरीरेण मदीयम् इदम् शरीरम् तार्क्ष्यात् परिरक्षता भवता पातालतलात् अपि तलम् माम् नेतुम् युक्तम् ॥ २० ॥

परिरक्षता—परि+√रक्ष्+शतृ+तृ० एक वचन—रक्षा करते हुए (आप) से ।

पातालतलादपि तलम्—पाताल तल से भी नीचे । शङ्खचूड का अभिप्राय है कि आपने अपने प्राणो से मेरी रक्षा कर के, मुझे कही का नही छोडा । आप जैसे महापुरुष के बलिदान ने मुझे पाप का भागी बना दिया है अत वह मुझे उस नरक में धकेल देगा जो साँपों के निवास स्थान पाताल से भी नीचे है ।

करुणार्द्रचेतसा—करुणया आर्द्र चेत यस्य स. (बहुव्रीहि०)—करुणा से सरस चित वाला ।

---

1 साप के 2 प्रतीक्षा करता हूँ ।

अपने शरीर से मेरे इस शरीर की गरुड से रक्षा करते हुए मुझे पाताल तल से भी नीचे ले जाना (क्या) आप के लिए उचित था ?

गरुड—अरे ! करुणा से सरस बने हुए मन वाले इस महात्मा ने हमारा ग्रास बने हुए इस नाग की प्राण रक्षा के लिए अपने शरीर को आहार के लिए भेंट किया है। तो मैं ने यह बहुत बडा पाप किया है। अधिक क्या कहूँ मैं ने तो बोधिसत्त्व को ही मार डाला। उस बडे पाप का प्रायश्चित्त अग्नि-प्रवेश के बिना अन्य नहीं देखता हूँ। तो आग को कहाँ पाऊँ ? [दिशाओं को देखते हुए] अरे ! ये कोई (व्यक्ति) आग को लिए हुए इधर ही चले आ रहे हैं। तो तब तक उन की प्रतीक्षा करता हूँ।

शङ्खचूड—कुमार ! आपके माता पिता आ पहुँचे हैं।

नायक—[घबराहट के साथ] शङ्खचूड ! बैठकर इस दुपट्टे से (मेरे) शरीर को ढक कर मुझे सहारा दो। अन्यथा कहीं मुझ को अचानक ऐसा देखकर माता पिता प्राण न त्याग दें।

अस्मद्ग्रासगोचरपतितस्य—अस्माकं ग्रासस्य गोचरे पतितस्य—हमारे भोजन के वश में पड़े हुए का।

बोधिसत्त्व—व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ ६।

अग्निप्रवेशादृते—अग्निप्रवेशात् + ऋते। ऋते के योग मे पंचमी का प्रयोग।

समासादयामि सम् + आ + √सद् + णिच् + लट्—प्राप्त करूँ।

गृहीताग्नय—गृहीतः अग्निः यैः ते (बहुव्री०)—आग लिए हुए।

आच्छादितशरीरम्—आच्छादित (आ + √छद् + णिच् + क्त) शरीरं यस्य सः (बहुव्री०)—ढके हुए शरीर वाला।

जह्याताम्—√हा + विधि० + द्वि० वचन—छोड़ दें।

शङ्खचूड —[पार्श्वपतितमुत्तरीयं गृहीत्वा तथा करोति ।]

[ततः प्रविशति पत्नीवधूसमेतो जीमूतकेतुः ।]

जीमूतकेतु —[सास्रम्] हा पुत्र जीमूतवाहन !—

आत्मीयः परः इत्ययं खलु कुतः सत्यं कृपया क्रमः ?
'किं रक्षामि बहून् किमेक' मिति ते जाता न चिन्ता कथम् ?
तार्क्ष्यात्त्रातुमहिं[1] स्वजीवितपरित्यागं त्वया कुर्वता
येनाऽऽत्मा, पितरौ वधूरिति हतं निःशेषमेतत्कुलम्[2] ! ॥२१॥

वृद्धा—[मलयवतीमुद्दिश्य] जाते ! विरम मुहूर्तकम् । अविरतनिपतद्बाष्पबिन्दुभिरभिभूयतेऽयमग्नि । जाते ! विरम मुहुत्तअं । अविरतनिवडतबाप्पबिंदुहिं अहिहवीअदि अअं अग्गी ।

जीमूतकेतु —हा पुत्र जीमूतवाहन !

अन्वय — आत्मीयः परः इति अयम् कृपायाः क्रमः खलु कुतः ? सत्यम् । तथापि किम् बहून् रक्षामि किम् एकम् इति ते चिन्ता कथम् न जाता ? येन त्वया तार्क्ष्यात् अहिम् त्रातुम् स्वजीवितपरित्यागम् कुर्वता आत्मा पितरौ वधू इति एतत्कुलम् निःशेषम् हतम् ॥ २१ ॥

आत्मीय कुलम्—दयालु व्यक्ति यह तो नहीं देखता कि जिस पर मैं दया कर रहा हूँ वह अपना है अथवा पराया है । अत अपने माता पिता की उपेक्षा करते हुए जो तुम ने किसी अन्य प्राणी (नाग) की रक्षा की है वह तो हमारी समझ में आ सकता है । किन्तु क्या तुम्हें इस बात का भी ध्यान नहीं आया कि मैं एक प्राणी की रक्षा कर के चार व्यक्तियों—नायक, नायक के माता पिता तथा मलयवती—की मृत्यु का कारण बन रहा हूँ ।

---

1 त्रातुम्—बचाने के लिए 2 निःशेषम्—सम्पूर्ण ।

शङ्खचूड़—[पास पड़े हुए दुपट्टे को ले कर वैसा करता है]

[तब पत्नी तथा पुत्र-वधु के साथ जीमूतकेतु प्रवेश करते हैं]

जीमूतकेतु—[आंसुओं सहित] हा पुत्र जीमूतवाहन !

'यह अपना है" अथवा 'यह पराया है"—इस प्रकार निश्चय ही दया की व्यवस्था कहां (हो सकती है) ?— (तुम्हारे इस विचार से हम सहमत हैं) (किन्तु) तुम्हें यह सोच कैसे नहीं आई कि बहुतों की रक्षा करूं या एक (को बचाऊँ) ? जब कि गरुड से साप को बचाने के लिए अपने जीवन का त्याग करते हुए तुमने अपने आप को, माता-पिता को (तथा) बहू को अर्थात् इस समस्त कुल को ही नष्ट कर दिया।

वृद्धा—[मलयवती की ओर संकेत कर के] बेटी ! क्षण भर तो रुको। निरन्तर बहते हुए अश्रु बिन्दुओं से यह आग बुझी जा रही है।

[सब घूमते हैं]

जीमूतकेतु—हाय पुत्र जीमूतवाहन !

विरम्—वि + √रम् (परस्मै०) + लट्—रुको। √रम् आत्मने० धातु है किन्तु इससे पहले 'वि' उपसर्ग के आने पर इसके रूप परस्मैपद में चलते हैं।

अविरतनिपतद्बाष्पबिन्दुभि—अविरतं यथा स्यात् तथा निपतद्भिः (नि + पत् + शतृ + तृ०, एक वचन), बाष्पस्य बिन्दुभि.—लगातार गिरते हुए आंसुओं के बिन्दुओं से।

अभिभूयते—अभि + √भू + भाव वाच्य—आक्रान्त हो रही है, बुझती जाती है।

गरुडः—[श्रुत्वा] हा जीमूतवाहन ! इति ब्रवीति । तद् व्यक्तमयमस्य पिता । तत् किमेतदीयेनाग्निना आत्मानमुद्दीपयामि ? न शक्नोम्यस्य पुत्रघातापहत या मुख दर्शयितुम् । अथवा किमग्निहेतोः पर्याकुलोऽस्मि ? समीपस्थ एवास्मि जलनिधेः । तद् यावदिदानीम्—

ज्वालाभङ्गैस्त्रिलोकग्रसनरसचलत्कालजिह्वाप्रकल्पैः

सर्पद्भिः सप्त सर्पिष्कणमिव कवलीकर्तुमीशे[1] समुद्रान् ।

स्वैरेवोत्पातवातप्रसरपटुतरैर्धुक्षिते[2] पक्षवातै-

रस्मिन् कल्पावसानज्वलनभयकरे वाडवाग्नौ पतामि ॥२२॥

[इत्युत्पातुमिच्छति]

नायकः—भोः पक्षिराज ! अलमनेनाध्यवसायेन । नाऽयं प्रतीकारोऽस्य पाप्मनः ।

गरुडः—[जानुभ्यां स्थित्वा कृताञ्जलिः] भो महात्मन् ! कस्तर्हि कथय ? ।

तद् व्यक्तमयमस्य पिता—तो स्पष्ट ही यह इस का पिता है । गरुड की यह उक्ति तनिक विचित्र प्रतीत होती है क्यों कि उस की उपस्थिति में शङ्खचूड ने अभी अभी कहा है—"कुमार! आप के माता-पिता आ पहुंचे हैं ।

अन्वयः—त्रिलोकीग्रसनरसचलत्कालजिह्वाप्रकल्पैः सर्पद्भिः ज्वालाभङ्गैः सप्तसमुद्रान् सर्पिष्कणमिव कवलीकर्तुम् ईशे कल्पावसान-ज्वलन-भयकरे उत्पातवात-प्रसर-पटुतरैः स्वैः एव पटुतरैः पक्षवातैः धुक्षिते अस्मिन् वडवाग्नौ पतामि ॥ २२ ॥

ज्वालाभङ्गैः—ज्वालानां भङ्गैः—ज्वालाओं की लहरों से ।

त्रिलोकग्रसनरसचलत्कालजिह्वाप्रकल्पैः त्रिलोकस्य (त्रयाणां लोकानां समाहार—द्विगु०) ग्रसने यः रसः तेन चलन्ती (√चल्+शतृ) या कालस्य जिह्वा तस्याः सम तत्कल्पैः—तीनों लोकों को हड़प करने के आनन्द से चलती हुई यमराज की जीभ के अगले भाग के समान ।

---

1. ईशे—शक्नोमि (समर्थ हूँ) मैं 2 धुक्षिते—प्रज्वलित (जलाए गए) में ।

गरुड—[सुन कर] हाय पुत्र जीमूतवाहन ! "—ऐसा कहता है तो स्पष्ट ही यह इस का पिता है। तो क्या इस की अग्नि से अपने आप को जलाऊँ ? इस के पुत्र के वध की लज्जा से (इस) मुख नहीं दिखा सकता हूँ। अथवा मैं आग के लिए व्याकुल क्यों हो रहा हूँ ? समुद्र तो पास ही है। तो अब—

तीनों लोकों को हड़प करने के आनन्द से चलती हुई यमराज की जीभ के अग्र भाग के समान फलती हुई ज्वालाओं की लहरों द्वारा सात समुद्रों को घी के कण की तरह ग्रास बनाने में समर्थ प्रलय की हवाओं के प्रसार से (भी) अधिक शक्तिशाली (अपने) पंखों की हवाओं से इच्छानुसार भड़काई गई, प्रलय कालीन आग के समान भयंकर इस समुद्र की आग में गिरता हूँ।

[उड़ना चाहता है]

नायक—हे पक्षिराज ! ऐसा निश्चय न कीजिए। इस पाप का यह प्रायश्चित नहीं है।

गरुड—[घुटनों के बल बैठ कर हाथ जोड़े हुए] महात्मन् ! कहिए तो क्या (प्रायश्चित) है ?

सर्पद्भिः—√सृप + शतृ + तृ० बहुवचन—फलती हुई (ज्वालाओं की लहरों से)।

सप्त समुद्रान्—पौराणिक विश्वास के अनुसार लवण इक्षु सुरा घृत, दधि क्षीर तथा जल के सात समुद्र माने जाते थे।

सर्पिष्कणम्—सर्पिषः कणम्—घी के कण।

कवलीकर्तुम्—अकवलं कवलं सम्पद्यमानं कर्तुम् (कवल + च्वि + √कृ + तुमुन्)—ग्रास बनाने के लिए।

उत्पातवातप्रसरपटुतरैः—उत्पाते ये वाताः तेषां प्रसरात् पटुतरः (अतिशयेन पटुः), तैः—प्रलय की हवाओं के फैलाव से भी अधिक शक्तिशाली (पंखों की हवाओं से)।

कल्पावसानज्वलनभयकरे—कल्पस्य अवसाने यः ज्वलनः तद्वत् भयकरे—प्रलय कालीन आग के समान भयंकर।

वाडवाग्नौ—वाडवाग्नि में। समुद्र के बीच चट्टानों के टकराने से 'घोड़ी के मुख' जैसी पैदा होने वाली आग को 'वाडवाग्नि' कहते हैं।

पाप्मन—पाप्मन् (पुं०) का ष० एक वचन—पाप का।

नायकः—प्रतिपालय क्षणमेकम् । पितरौ मे प्राप्तौ । यावदेतौ प्रणमामि ।

गरुड़.—एवं क्रियताम् ।

जीमूतकेतुः—[दृष्ट्वा सहर्षम्] देवि ! दिष्ट्या वर्धसे । अयमसौ वत्सो जीमूतवाहनो न केवलं ध्रियते,[1] प्रत्युत पुरः कृताञ्जलिना गरुडेन शिष्येणेव पर्युपास्यमानस्तिष्ठति ।

वृद्धा—महाराज ! कृतार्थाऽस्मि । अक्षतशरीरस्यैव पुनर्वत्सस्य मुखं दृष्टम् ।

महाराअ ! किदत्थम्हि । अक्खदसरीरस्स एव्व पुत्तअस्स मुहं दिट्ठं ।

मलयवती—अहमार्यपुत्र प्रेक्षमाणाप्यसम्भावनीयमिति कृत्वा न प्रत्येमि ।

अहं अज्जउत्त पेक्खन्तीवि असम्भावणीअं ति करिअ ण पत्तिआमि ।

जीमूतकेतुः—[उपसृत्य] वत्स ! एह्येहि[2] परिष्वजस्व माम् ।

नायकः—[उत्थातुमिच्छन् पतितोत्तरीयो मूर्च्छति ।]

शङ्खचूडः—कुमार ! समाश्वसिहि ।

जीमूतकेतु—हा वत्स ! क्व मां दृष्ट्वापि परित्यज्य गतोऽसि ?

वृद्धा—हा पुत्रक ! कथं वाङ्मात्रेणापि त्वया न सम्भाविताऽस्मि ? हा पुत्तअ !

वह वाआमेत्तेण वि तुए ण सभाविदम्हि ?

मलयवती—हा आर्यपुत्र ! कथं गुरुजनोऽपि ते न प्रेक्षितव्यः । हा अज्जउत्त !

कहं गुरुअणो वि दे ण पेक्खिदव्वो ?

[सर्वे मोहं गच्छन्ति]

पर्युपास्यमान.— परि+उप+√आस्+कर्मवाच्य+शानच्—सेवा किया जाता हुआ ।

अक्षतशरीरस्य—न क्षतं शरीरं यस्य सः (बहुव्री०)—न घायल हुए शरीर वाला ।

प्रेक्षमाणा—प्र+√ईक्ष्+शानच्—देखती हुई । प्रत्येमि—प्रति+√इ+लट्—विश्वास करती हूँ ।

---

1. जीवित है 2. परिष्वजस्व—गले लगाओ ।

नायक —एक क्षण के लिए ठहरो। मेरे माता-पिता आ पहुँचे हैं। इन्हें प्रणाम कर लूँ।

गरुड—ऐसा ही कीजिए।

जीमूतकेतु —[देख कर, हर्ष पूर्वक] देवी! बधाई हो! यह वह पुत्र जीमूतवाहन केवल जीवित ही नही है किन्तु शिष्य की भाँति आगे दोनो हाथ बाँधे हुए गरुड से सेवा किया जाता हुआ बैठा है।

वृद्धा—महाराज! मैं कृतार्थ हूँ। न घायल हुए शरीर वाले पुत्र के मुख को देख पाई हूँ।

मलयवती —" यह असम्भव है "—ऐसा सोच कर, आर्य पुत्र को देखते हुए भी मुझे विश्वास नहीं होता।

जीमूतकेतु [पास आ कर] बेटा आओ आओ। मुझे गले लगाओ।
[नायक उठने की इच्छा करता हुआ, दुपट्टे के गिर पड़ने पर बेहोश हो जाता है]

शङ्खचूड– कुमार धीरज धरो, धीरज धरो।

जीमूतकेतु—हा पुत्र! क्या मुझ देख कर भी छोड कर चले गए हो?

वृद्धा—हाय पुत्र! क्या वाणी मात्र से भी तुम ने मेरा सम्मान नहीं किया?

मलयवती—हाय आर्य पुत्र! कैसे अपने माता पिता को भी नहीं देखा।

[सारे बेहोश हो जाते हैं]

पतितोत्तरीय पतितम् उत्तरीयं यस्य स (बहुव्री०) गिर पडा है दुपट्टा जिस का।

सम्भाविता—सम्+√भू+णिच+क्त—सम्मानित की गई।

शङ्खचूड —हा शङ्खचूडहतक ! कथं गर्भ एव न विपन्नोऽसि, येनैव क्षणे क्षणे मरणातिग दुःखमनुभवसि ?

गरुड —सर्वमिदं मम नृशंसस्या[1]ऽसमीक्ष्यकारितया विजृम्भितम् । तदेव तावत् करोमि । [पक्षाभ्यां वीजयन्[2]] भो महात्मन् ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

नायक —[समाश्वस्य] शङ्खचूड ! समाश्वासय गुरून् ।

शङ्खचूड —तात ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । अम्ब ! समाश्वसिहि । समाश्वसितो जीमूतवाहन, किं न पश्यथ । प्रत्युत युष्मानेव समाश्वासयितुमुपविष्टस्तिष्ठति ।

[उभौ समाश्वसित]

वृद्धा—पुत्र कथं प्रेक्षमाणानामेवास्माकं कृतान्तहतकेनापह्रियसे ? पुत्त ! कहं पेक्खन्ताण ज्जेव्व अम्हाण किदन्तहदएण अवहारीअसि ?

जीमूतकेतु —देवि ! मैवममङ्गलवादिनी भव । ध्रियत एवायुष्मान् । तद् वधू समाश्वास्यताम् ।

विपन्न —वि+√पद्+क्त—मरा हुआ ।

मरणातिगम्—मरणम् अतिक्रम्य गच्छति इति—मौत स बढ कर ।

असमीक्ष्यकारितया —समीक्ष्य (सम्+√ईक्ष्+ल्यप्) न करोति इति असमीक्ष्यकारी, तस्य भाव समीक्ष्यकारिता, तस्या —बिना सोचे समझे किये का ।

समाश्वासय—सम्+आ+√श्वस्+णिच्—धैर्य बधाओ ।

समाश्वासयितुम्—सम्+आ+√श्वस्+णिच्+तुमुन्—धैर्य बन्धाने के लिए ।

प्रेक्षमाणानाम् एव अस्माकम्—हमारे देखते देखते । भाव ष० का प्रयोग है । भाव सप्तमी तथा भाव षष्ठी के प्रयोग में थोडा सा अन्तर है । भाव षष्ठी

---

1. नृशंसस्य—निर्दयी की 2 हवा करते हुए ।

शङ्खचूड—हाय अभागे शङ्खचूड ! तू गर्भ में ही क्यो न मर गया जो तू इस प्रकार क्षण-क्षण में मृत्यु से भी अधिक दु ख भोग रहा है ।

गरुड—यह सब मुझ निर्दयी की अदूरदर्शिता के कारण ही हुआ । तो एमा करता हूँ । [पखों से हवा करते हुए] हे महात्मन् । धीरज धरो धीरज धरो।

नायक [होश में आकर] शङ्खचूड ' माता पिता को धैर्य बधाओ ।

शङ्खचूड—पिता जी ' धैर्य धारण करो माँ ' धैर्य धारण करो । क्या आप देख नहीं रहे कि जीमूतवाहन होश में आ गया है ? यहि आप को धैर्य बधाने के लिए उठ बैठा है ।

[दोनों होश में आते हैं]

वृद्धा—पुत्र ' कैसे हमारे देखते हुए ही दुष्ट यमराज द्वारा लिए जा रहे हो ।

जीमूतकेतु देवी । ऐसे अमङ्गल की बात करने वाली मत बनो । दीर्घ आयु वाला तो जीवित है अत वधू को धैर्य बधाओ ।

का प्रयोग वहा होता है जहा पहली क्रिया की अवहेलना करते हुए दूसरी क्रिया की जाए । य । यमराज का छीनना माता पिता की उपस्थिति की अवहेलना करता है ।

कृतान्तहतकेन कृतान्तश्चासौ हतक (कमधा) दुष्ट यमराज ।

अपह्रियसे अप + √हृ + कर्मवाच्य । लट् लिये जा रहे हो ।

अमङ्गलवादिनी अमङ्गल वदति इति (अमङ्गल + √वद् । णिनि + ई)—अशुभ वादिनी ।

वृद्धा—[मुख वस्त्रेणावृत्य[1] रुदती] प्रनिहतममङ्गलम् । न रोदिष्यामि। मलयवति ! समाश्वसिहि । वत्से । उत्तिष्ठ, उत्तिष्ठ । वरमेतस्या[2] वेलायां[3] त्व भर्तृमुख प्रेक्षस्व । पडिहदममगलम् । ए रोइस्सम् मलग्रवदि ! समस्सस वच्छे ! उटठहि उटठहि । वर एत्ति ग्रवेल तुम भत्तुणो मुह पक्ख ।

मलयवती—[समाश्वस्य] हा आर्यपुत्र ! हा ग्रज्जउत्त !

वृद्धा—[मलयवत्या मुख पिधाय] वत्से ! मैव कुरु । प्रनिहत खल्वेतत् । वच्छे मा ! एव्व करहि । पडिहद क्खु एद ।

जीमूतकेतु —[सास्रमात्मगतम्]—

विलुप्तशेषाङ्गतया प्रयातान् निराश्रयत्वादिव कण्ठदेशम् ।
प्राणांस्त्यजन्त तनय[4] निरीक्ष्य कथ न पाप शतधा व्रजामि ॥२३॥

मलयवती—हा आर्यपुत्र ! ग्रहं दुष्करकारिणी खलु यथा ईदृशमार्यपुत्र प्रक्षमाणाऽपि जीवित न परित्यजामि ! हा ग्रज्जउत्त ! ग्रदिदुक्खरकारिणी क्खु ग्रह, जा ईरिस ग्रज्जउत्त पक्खती ग्रज्जवि जीविग्र ए परिच्चग्रामि !

वृद्धा—[नायकस्याङ्गानि स्पृशन्ती गरुडमुद्दिश्य] नृशस ! कथमिदानीं त्वया एतदापूर्यमाणनवरूपयौवनशोभ तदेव एतदवस्थं पुत्रकस्य मे शरीर कृतम् ? णिसस ! कह दाणि तुए एद ग्रापूरिग्रमाणणवरूवजाव्वणसोह त ज्जेव्व एदावदवत्थ पुत्तग्रस्स मे सरीर किदम ?

अन्वय —विलुप्तशेषाङ्गतया निराश्रयत्वात् कण्ठदेशम प्रयातान् प्राणान् त्यजन्तम तनयम निरीक्ष्य पाप शतधा कथ न व्रजामि ? ॥२३॥

विलुप्तशेषाङ्गतया—विलुप्तानि शेषाणि अङ्गानि यस्य स (बहुव्री०) तस्य भाव , तया—शेष अङ्गों के नष्ट हो जाने से ।

---

1 आवृत्य—ढक कर 2 वरम्—अच्छा 3 समय पर 4 बेटे को ।

वृद्धा—[मुख को वस्त्र से ढक कर रोती हुई] अमङ्गल का नाश हो। मैं नहीं रोऊँगी। मलयवती! होश में आओ, होश में आओ। बेटी! उठो, उठो। अच्छा है, इस समय तुम पति के मुख को देख लो।

मलयवती—[होश में आ कर] हाय आर्यपुत्र!

वृद्धा—[मलयवती के मुख को बन्द करके] बेटी! ऐसा मत कहो। यह (अमंगल) नष्ट हो गया है।

जीमूतकेतु—[आंसू बहाते हुए, अपने आप]

शेष अङ्गों के नष्ट हो जाने से, आश्रय-हीन होने के कारण कण्ठ स्थान को पहुँचे हुए प्राणों को छोड़ते हुए बेटे को देख कर मैं पापी सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाता।

मलयवती—हा आर्यपुत्र! मैं निश्चय ही बड़ी पापिन हूँ जो इस तरह आप को देख कर प्राणों को त्याग नहीं रही हूँ।

वृद्धा—[नायक के अङ्गों को छूती हुई, गरुड़ की ओर संकेत कर के] अरे निर्दयी! नए रूप, यौवन तथा शोभा से भरपूर मेरे पुत्र के शरीर की तुम ने अब यह क्या दशा बना दी है?

प्रयातान्—प्र + √या + क्त—गए हुओं को।

त्यजन्तम्—√त्यज् + शतृ—छोड़ते हुए को।

पाप—पापी, पु० में होने पर 'पाप' शब्द का अर्थ पापी होता है, किन्तु नपुं में होने पर 'पाप' हो जाता है।

आपूर्यमाणनवरूपयौवनशोभम्—आपूर्यमाणानि (आ + पृ + कर्मवाच्य + शानच्—भरे जाते हुए), नव रूप, यौवन शोभा च यस्मिन्, तत् (बहुव्री०)—नए रूप, यौवन तथा शोभा से भरपूर (शरीर)।

एतदवस्थम्—एषा अवस्था यस्य तत् (बहुव्री०)—यह अवस्था है जिस की।

नायक —अम्ब ! मा मैवम् । किमनेन कृतम् ? ननु पूर्वमप्येनदीदृशमेव परमार्थत[1] । पश्य,—

मेदोऽस्थिमांसमज्जाऽसृक्सङ्घातेऽस्मिस्त्वचाऽऽवृते ।
शरीरनाम्नि का शोभा सदा बीभत्सदर्शने ? ॥२४॥

गरुड़ः—भो महात्मन् ! नरकाऽनलज्वालाऽवलीढमिवाऽऽत्मान मन्यमानो दु ख तिष्ठामि । तदुपदिश्यतां, येन मुच्येऽहमस्मदेनस.[2] ।

नायकः—अनुजानातु मां तातो, यावदस्य पापस्य प्रतिपक्षमुपदिशामि[3] ।

जीमूतकेतु'—वत्स ! एवं क्रियताम् ।

नायकः—वैनतेय ! श्रूयताम् ।

गरुड़—[*जानुभ्या स्थित्वा कृताञ्जलि.*] आज्ञापय ।

नायक —

नित्यं प्राणाभिघातात प्रतिविरम[4] कुरु प्राक्कृतस्य[5]ानुतापं[6]
यत्नात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु[7] दिशन् सर्वसत्त्वेष्व[8]भीतिम् ।
मग्नं येनात्र नैन.[9] फलति परिणतं प्राणिहिंसासमुत्थं
दुर्गाधे वारिपूरे लवणपल[10]मिव क्षिप्तमन्तर्ह्रदस्य ॥ २५ ॥

अन्वयः - मेदोऽस्थिमासमज्जाऽसृक्सङ्घाते त्वचावृते सदा बीभत्सदर्शने अस्मिन् शरीरनाम्नि का शोभा ? ॥ २४ ॥

मेदोऽस्थिमासमज्जाऽसृकसघाते—मेदश्च अस्थीनि च मासञ्च मज्जा च असृक् च, तेषा समाहार , तस्य सङ्घाते—चर्बी, हड्डी, मास, मज्जा खन के समूह में ।

त्वचा—' त्वच् ' शब्द का तृ० एक वचन—खाल से ।

शरीरनाम्नि —शरीर नाम यस्य, तस्मिन् (बहुव्री०)—शरीर नाम वाले में ।

बीभत्सदर्शने—बीभत्स दर्शन यस्य, तस्मिन् (बहुव्री०)—भयकर दीखने वाले (शरीर) में ।

1 यथार्थ में 2 पाप से 3 प्रतिपक्षम् =प्रतिकार 4 रुक जाओ 5. प्राक् =पहले 6 अनुताप =पश्चाताप 7. इकट्ठा करो 8 सत्त्वेषु=प्राणियों पर 9 एन =पाप 10 पलम् =छटाक भर, थोड़ा सा ।

नायक—माँ ! ऐसा मत कहो। इस ने क्या किया है ? पहले भी यथार्थ में यह ऐसा ही था। देखो—

चर्बी, हड्डी, माँस, मज्जा, खून के समूह, चमड़े से ढके हुए सदा भयंकर दीखने वाले इस शरीर नाम वाले (पदार्थ) में क्या शोभा ?

गरुड़—हे महात्मन् ! नरक की आग की ज्वालाओं से हड़प किए जाते हुए (शा० चाटे जाते हुए) की तरह अपने को समझता हुआ मैं कठिनता से ठहरा हूँ। तो उपदेश दीजिए जिस से मैं इस पाप से छूट जाऊँ।

नायक—पिता जी मुझे आज्ञा दें, ताकि मैं (उस को) इस के पाप के प्रतिकार का उपदेश दूँ।

जीमूतकेतु—बेटा ! ऐसा ही करो।

नायक—गरुड़ ! सुनिए।

गरुड़—[घुटनों के बल ठहर कर, हाथ जोड़े हुए] आज्ञा दीजिए।

नायक—प्राण-हिंसा से सदा के लिए विमुख हो जाओ, और पहले किए पर पश्चाताप करो। सब प्राणियों को अभय दान देते हुए, यत्न-पूर्वक पुण्यों के प्रवाह का सञ्चय करो ताकि प्राणियों की हिंसा से पैदा हुआ तथा फल बनता हुआ तुम्हारा पाप, इस में डूब कर इस प्रकार न फले जैसे कि भील के अन्दर अगाध जल में फेंका हुआ पल भर नमक।

नरकाऽनलज्वालाऽवलीढम्—नरकस्य ये अनलाः, तेषां ज्वालाभिः अवलीढम् (अव+लिह्+क्त)—नरक की आग की ज्वालाओं से चाटे जाते हुए (अपने आप) को। मन्यमानः– √मन्+शानच्– समझते हुए।

मुच्ये—√मुच्+कर्मवाच्य—छूट जाऊँ।

अन्वयः—नित्यम् प्राणाभिघातात् प्रतिविरम्, प्राक्कृते च अनुतापम् कुरु यत्नात् सर्वसत्त्वेषु अभीतिम् दिशन् पुण्यप्रवाहम् समुपचिनु, येन दुर्गाधे-वारिपूरे ह्रदस्य अन्तःलवणपलम् इव परिणत प्राणिहिंसासमुत्थम् एतत् अत्र मग्नम् न फलति ॥ २५ ॥

मग्नम् –√मज्ज्+क्त—डूबा हुआ। परिणतम् –परि+√नम्+क्त—पका हुआ। प्राणिहिंसासमुत्थम्—प्राणीनां या हिंसा तस्या समुत्थितमिति (उपपद तत्पु०)—प्राणियों की हिंसा से पैदा हुआ। वारिपूरे—वारिणः पूरे (ष० तत्पु०)—जल के समूह में। अन्तर्ह्रदस्य—ह्रदस्य अन्त—भील के अन्दर। नित्य······ह्रदस्य—इस श्लोक में अहिंसा-भाव का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

गरुड —यदाज्ञापयसि ।

अज्ञाननिद्राशयितो भवता प्रतिबोधित ।
सर्वप्राणिवधादेव विरतोऽद्य प्रभृत्यहम् ॥ २६ ॥

सम्प्रति हि—

क्वचिद् द्वीपाकार पुलिनविपुलैर्भोगनिवहैः,
कृतावर्त्तभ्रान्तिर्वलयितशरीर क्वचिदपि ।
व्रजन् कूलात् कूल क्वचिदपि च सेतुप्रतिसम[1][2]
समाजो[3] नागाना विहरतु महोदन्वति सुखम् ॥२७॥

अपि च—

स्रस्तानापादलम्बान्[4] घनतिमिरनिभान् केशपाशान्[5] वहन्त्य
सिन्दूरेणेव दिग्धं प्रथमरविकरस्पर्शताम्रैः कपोलै ।
आयासेनाऽलसाङ्ग्योऽप्यवगणितरुज[6] कानने चन्दनाना-
मस्मिन् गायन्तु रागादुरगयुवतयः कीर्तिमेता तवैव ॥२८॥

अन्वय —अज्ञाननिद्राशयित भवता प्रतिबोधित एष अहम् अद्य प्रभृति सर्वप्राणिवधात् विरत ॥ २६ ॥

अज्ञाननिद्राशयित —अज्ञान (न ज्ञानम्) तत् एव निद्रा तया शयित ($\sqrt{}$शी । क्त)—अज्ञान रूपी नींद में सोया हुआ ।

प्रतिबोधित —प्रति + $\sqrt{}$बुध + णिच् + क्त—जगाया गया ।

विरत —वि + $\sqrt{}$रम् + क्त—रुक गया ।

अन्वय —क्वचित् पुलिनविपुलं भोगनिवहै द्वीपाकार, क्वचित् अपि वलयितशरीर कृतावर्त्तभ्रान्ति, क्वचित् अपि कूलात् कूलम् व्रजन् सेतुप्रतिसम, नागानाम् समूह महोदन्वति सुखम् विहरतु ॥ २७ ॥

द्वीपाकार – द्वीपवत् आकार यस्य स (समाज) द्वीप जसा आकार है जिस का वह (नागो का समाज) ।

पुलिनविपुलं –पुलिनवत् विपुलं –रेतीले किनारो जैसे विशाल (फण-समूह) स ।

भोगनिवहै —भोगाना निवहै (प० तत्पु०)—फणो के समूहो से ।

---

1 सेतु—पुल 2 समान 3 समूह 4 स्रस्तान्—खुले हुए (केश पाशो) को 5 केश समूहो को 6 आयासेन—परिश्रम से ।

गरुड—जो आप की आज्ञा।

अज्ञान की नींद में सोया हुआ तथा (अब) आप से जगाया गया यह मैं आज से ही सब प्राणियों के वध से मुँह मोड़ता हूँ।

अब तो,

कहीं पर रेतीले किनारों जैसे विशाल फणों के समूह से द्वीप का आकार बनाए हुए कहीं पर कुण्डली मारे शरीर से भवर का भ्रम पैदा करते हुए तथा कहीं पर एक किनारे से दूसरे किनारे को जाते हुए पुल के समान (दीखने वाला) नागों का समूह विशाल समुद्र पर सुख से विहार करे।

और भी—

खुले हुए, पैरों तक लम्बे घने अन्धकार की तरह केश समूह को धारण करती हुईं, सूर्य की पहली किरण के सम्पर्क से लाल मानो सिन्दूर से रंगी हुई गालों से (युक्त) परिश्रम के कारण आलस्य युक्त अंगों वाली होती हुईं भी पीडा की उपेक्षा करने वाली नाग-युवतियाँ इस चन्दन वृक्षों के वन में तुम्हारे ही इस यश का गान करें।

कृतावर्तभ्रान्ति—कृता आवर्त्तस्य भ्रान्तिः येन स (बहुव्री०)—भवर का भ्रम पैदा किया गया है जिस से वह (नागों का समूह)।

वलयितशरीर—वलयितानि शरीराणि येन स (बहुव्री०)—कुण्डली मारे हुए हैं शरीर जिन्हों ने वह (नागों का समूह)।

महोदन्वति—महान् चासौ उदन्वान् तस्मिन्—विशाल समुद्र में।

अन्वय—स्रस्तान् आपादलम्बान् तिमिरचयनिभान् केशहस्तान् वहन्त्यः प्रथमरविकरस्पर्शताम्रैः सिन्दूरेण इव दिग्धैः कपोलैः (युक्ता) प्रयासेन अलसाङ्ग्यः अपि अवगणितरुजः उरगयुवतयः अस्मिन् चन्दनानाम् कानने रागात् तव एव एताम् कीर्तिं गायन्तु॥ २८॥

आपादलम्बान्—आपादं लम्बन्ते इति—पाओं तक लटकते हुए (केश समूह) को।

घनतिमिरनिभान्—घन यत् तिमिरं तन्निभान्—घने अन्धकार की तरह।

वहन्त्य—√वह + शतृ + स्त्री० धारण करती हुई।

दिग्धं—√दिह + क्त—रंग हुओं से।

प्रथमरविकरस्पर्शताम्रैः—प्रथमं रवेः किरणानां यः स्पर्शः तेन ताम्रैः—सूर्य की पहली किरणों के सम्पर्क से लाल (कपोलों) से।

अलसाङ्ग्य—अलसानि अङ्गानि यासां, ता (बहुव्री०) आलस्य युक्त अंगों वालीं। अवगणितरुज—अवगणिता रुजो याभिः ताः (बहुव्री०)—पीडा की उपेक्षा करने वाली। उरगयुवतय—उरगाणां (उरसा गच्छन्ति इति उरगः) युवतयः—नागों की युवतियाँ।

नायक —साधु महासत्त्व ! साधु ! ! अनुमोदामहे[1] । सर्वथा दृढसमाधानो भव ।
[शङ्खचूड निर्दिश्य] शङ्खचूड ! त्वयापि स्वगृहमिदानीं गम्यताम् ।

शङ्खचूड —[नि:श्वस्याऽधोमुखस्तिष्ठति ।]

नायक —[नि श्वस्य, मातर पश्यन्]

उत्प्रेक्षमाणा त्वा तार्क्ष्यचञ्चु[2]कोटिविपाटितम्[3] ।
त्वद्दु खदु खिता नूनमास्ते सा जननी तव ॥२६॥

वृद्धा—[सास्रम्] धन्या खलु सा जननी, या गरुडमुखपतितस्याक्षतशरीरस्यैव पुत्रकस्य मुख प्रेक्षिष्यते । धण्णा, क्खु सा जसणी जा गरुडमुहपडिदस्स अक्खदसरीरस्स ज्जेव्व पुत्तअस्स मुह पविक्खस्सदि ।

शङ्खचूड —अम्ब ! सत्यमेवैतत् यदि कुमार स्वस्थो भविष्यति ।

नायक —[वेदना नाटयन्] हहह ! परार्थसम्पादनामृतरसास्वादाक्षिप्तत्वादेतावतीं वेला मया न लक्षिता , सम्प्रति तु मां बाधितुमारब्धा[4] मर्मच्छिदिन्यो वेदना: । [मरणावस्था नाटयति ।]

दृढसमाधान — दृढ समाधानम् (=निश्चय) यस्य स (बहुव्री०)—दृढ निश्चय वाला ।

अन्वय—त्वाम् तार्क्ष्यचञ्चुकोटिविपाटितम् उत्प्रेक्षमाणा त्वद्दु खदु खिता सा तव जननी दु खम् आस्ते ॥ २६ ॥

उत्प्रेक्षमाणा—उत्+प्र+√ईक्ष्+शानच्—अनुमान लगाती हुई ।

अक्षतशरीरस्य—न क्षत शरीर यस्य तस्य (बहुव्री०)—नहीं घायल है शरीर जिसका, उस का ।

सत्यम् भविष्यति—शङ्खचूड का अभिप्राय यह है कि नायक के स्वस्थ होने पर ही मेरी माता अपने आप को धन्य समझेगी । वैसे स्वस्थ' का अर्थ स्वर्ग में ठहरा हुआ, अर्थात् ' मरा हुआ ' भी हो सकता है किन्तु इस शब्द का यह अर्थ समझना शङ्खचूड के चरित्र के साथ बहुत बडा अन्याय करना होगा ।

---

1 हम समर्थन करते हैं 2 कोटि=नोक 3 फाड़े गए 4 पीड़ित करना

नायक—शाबाश ! महा प्राणी ! शाबाश । हम समर्थन करते हैं । सब तरह से दृढ प्रतिज्ञा वाले बनो । [शङ्खचूड़ की ओर संकेत करके] तुम्हें भी अब अपने घर जाना चाहिए ।

शङ्खचूड़ [आह भर कर, मुख नीचा किए ठहरा रहता है]

नायक—[दीर्घ सांस ले कर माता को देखता हुआ]

गरुड की चोंच की नोक से तुम्हारे फाड़े जाने का अनुमान करती हुई तुम्हारे कष्ट से पीडित वह तुम्हारी माँ दुःखी हो रही होगी ।

वृद्धा—[आंसुओं सहित] धन्य है वह माँ जो गरुड के मुख में पड़ कर भी न घायल हुए शरीर वाले पुत्र के मुँह को देखेगी ।

शङ्खचूड़—माँ ! यह सत्य (तभी) होगा, यदि कुमार स्वस्थ हो जाए ।

नायक—[वेदना का अभिनय करते हुए] आह ! परोपकार के कार्य रूपी अमृत के रस का आस्वादन करने में मन के लगे होने के कारण इस समय तक मैं ने महिसूस नहीं किया, अब मर्म-स्थलों को काटने वाली व्यथा पीडित करने लगी है । [मृत्यु की अवस्था का अभिनय करता है]

परार्थ० –परेषाम् अर्थं परार्थं तस्य यत् सम्पादनम्, तस्मिन् अमृतस्य इव यः रसः तस्य आस्वादनेन आक्षिप्तत्वात्—परोपकार कार्य रूपी अमृत के रसास्वादन में लगे होने के कारण ।

मर्मच्छेदिन्य मर्माणि छिन्दन्ति इति (उपपद तत्पु०)—मर्म-स्थलों को काटने वाली ।

जीमूतकेतु —[ससम्भ्रमम्] हा वत्स किमेव करोषि ?

वृद्धा—हा ! किं नु खल्वेवं वर्तते । [सोरस्ताडम्] परित्रायध्वम्, परित्रायध्वम्।[1] एष खलु मे पुत्रको विपद्यते । हा ! किणु क्खु एव्वं वत्तदि ? परित्ताग्रह परित्ताग्रह । एसो क्खु मे पुत्तग्रो विवज्जइ ।

मलयवती—हा आर्यपुत्र ! परित्यक्तुकाम इव लक्ष्यसे । हा अज्जउत्त ! परिच्चइदुकामो विग्र लक्खीग्रसि ।

नायक —[अञ्जलिं कर्तुमिच्छन्] शङ्खचूड ! समानय मे हस्तौ ।

शङ्खचूड.—[कुर्वन्] कष्टम् ! अनाथीकृतं जगत् ।

नायक.—[अर्द्धोन्मीलितचक्षुः पितरं पश्यन्] तात ! अम्ब ! अयं मे पश्चिमः[2] प्रणाम ।

> गात्राण्यमूनि[3][4] न वहन्ति सवेदनत्वम्
>
> श्रोत्रं[5] स्फुटाक्षरपदा न गिरः[6] शृणोति ।
>
> कष्टं निमीलितमिदं[7] सहसैव चक्षु-
>
> र्हा तात ! यान्ति विवशस्य ममासवोऽमी ॥३०॥

सोरस्ताडम्—उरसः ताडेन सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा (क्रिया वि०)—छाती पीटते हुए ।

विपद्यते—वि+√पद्+कर्मवाच्य—मरा जा रहा है ।

परित्यक्तुकाम—परित्यक्तुं कामः यस्य सः (बहुव्री०)—छोडने की इच्छा वाला ।

समानय—सम्+आ+√नी+लोट्+मध्यम पु०, एक वचन—जोड दो ।

अनाथीकृतम्—अनाथ+च्वि+√कृ+क्त—अनाथ बना दिया गया ।

अर्द्धोन्मीलितचक्षुः—अर्द्धम् उन्मीलितं चक्षुः येन सः (बहुव्री०)—आधी खुली हुई आँखो वाला ।

---

1 रक्षा करो 2 अन्तिम 3 गात्राणि=अंग 4 अमूनि=ये 5 कान 6 वाणी को 7 बन्द हो गया ।

जीमूतकेतु —[घबराहट सहित) हा पुत्र ! ऐसा क्यों कर रहे हो।

वृद्धा—हाय ! ऐसा क्या हो रहा है। [छाती पीटते हुए] बचाओ ! बचाओ !! यह मेरा पुत्र मरा जा रहा है।

मलयवती —हाय आर्य पुत्र ! (हमें) छोड़ जाने की इच्छा वाले प्रतीत होते हो।

नायक—[हाथ जोड़ने की इच्छा करते हुए] शंखचूड ! मेरे हाथों को मिला दो।

शङ्खचूड—[मिलाते हुए] दुःख ! विश्व अनाथ बना दिया गया।

नायक—[आधी मुंदी आंखों से पिता को देखते हुए] पिता जी ! माता जी ! यह अन्तिम प्रणाम है।

ये अंग चेतनता को धारण नहीं कर रहे हैं। कान, स्पष्ट अक्षरों तथा पदों वाली वाणी को नहीं सुनता। दुःख है, यह चक्षु सहसा ही बन्द हो गया है। हा पिता जी ! मुझ ववस के ये प्राण चले जा रहे हैं।

अन्वय —विचेतनानि अमूनि गात्राणि न वहन्ति, श्रोत्र स्फुटाऽक्षरपदा गिर न शृणोति कष्टम् ! इदम् चक्षु सहसा एव निमीलितम् हा तात ! विवशस्य अमी असव याति ॥ ३० ॥

स्फुटाक्षरपदा—स्फुटानि अक्षराणि पदानि च यस्याम् (बहुव्री०) सा—स्पष्ट अक्षरों तथा पदों वाली।

असव —प्राण असु के रूप भी, प्राण शब्द की तरह सदा पु०, बहुवचन में बनते हैं।

अथवा किमनेन प्रलपितेन । ["सरक्षता पन्नगमेव पुण्यम्–" इत्यादि पठित्वा पतति ।

वृद्धा—हा पुत्र ! हा वत्स ! हा गुरुजनवत्सल क्वासि ? देहि मे प्रतिवचनम् ।
हा पुत्त ! हा वच्छ ! हा गुरुग्रणवच्छल ! कहिं सि ! देहि मे पडिवग्रण ।

जीमूतकेतुः—हा वत्स जीमूतवाहन ! हा प्रणयिजनवल्लभ ! हा सर्वगुणनिधे ! क्वासि ? देहि मे प्रतिवचनम् ! [हस्तावुत्क्षिप्य]

> निराधारं धैर्य्यं, कमिव शरणं यातु विनयः ?
> क्षमः[1] क्षान्तिं[2] वोढुं क इह ? विरता दानपरता ।
> हृतं सत्यं सत्यं, व्रजतु कृपणा[3] क्वाद्य करुणा ?
> जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय ! लोकान्तरगते ॥ ३१ ॥

प्रणयिजनवल्लभ—प्रणयी स चासौ जनः (कर्मधा०), तस्य वल्लभ तत्सम्बोधने —हे प्रेमी जनों के प्यारे !

अन्वयः—तनय ! त्वयि लोकान्तरगते धैर्य्यम् निराधारम्, विनय कम् इव शरणम् यातु ? इह क्षान्तिम् वोढुम् कः क्षमः ? दानपरता विरता, सत्यम् सत्यम् हृतम्, अद्य कृपणा करुणा क्व व्रजतु ? जगत् शून्यम् जातम् ॥३१॥

निराधारम्—निर्गत. आधारः यस्य तत् (बहुव्री०)—आधार-हीन ।

वोढुम्—√वह् + तुमुन्—धारण करने के लिए ।

विरता—वि + √रम् + क्त—मर चुकी ।

दानपरता—दानम् एव पर यस्य स. (बहुव्री०), तस्य भाव.—दानशीलता ।

सत्यं सत्यम्—दो में से एक 'सत्य क्रिया वि० के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

लोकान्तरगते—अन्यः लोक. इति लोकान्तरम्, तत्र गते—परलोक चले जाने पर ।

---

1. समर्थ 2. क्षमा को 3. बिचारी ।

अथवा इस प्रलाप से क्या ? [सान्त्वना एकाएक भूमि —इत्यादि पर
वर गिर पड़ता है]

वृद्धा—हाय पुत्र ! हाय वत्स ! हाय माता पिता के प्यारे ! कहाँ हो ? मुझ
उत्तर दो।

जीमूतकेतु—हा वत्स जीमूतवाहन ! हाय प्रेमी जनों के प्यारे ! हाय सब गुणों
के भण्डार ! कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो। [रोते हुए आकाश] हे पुत्र !
तुम्हारे परलोक सिधारने पर धैर्य आश्रयहीन हो गया नम्रता
किस की शरण ले ? कहाँ क्षमा धारण करने से कौन समर्थ होगा ? दान-
शीलता मर चुकी। सत्य निस्सन्देह मारा गया। अब बिचारी करुणा
कहाँ जाए ? विश्व (ही) शून्य हो गया।

निराधार गते—अपनी सरलता एवं सहज सौन्दर्य के लिए यह श्लोक नाटक
में विशिष्ट स्थान को प्राप्त किये हुए है।

इस का भावार्थ यह है कि धैर्य नम्रता और दानशीलता, सत्य
तथा करुणा जैसे गुणों के क्षेत्र में नायक अद्वितीय है। उसके परलोक
चले जाने पर इन समस्त गुणों का आधार ही नष्ट हो गया है, अत
ये सब के सब निराश्रित हो गए हैं।

या
बने
को
युद्ध
कर
—
—

अथवा किमनेन प्रलपितेन । ['सरक्षता पन्नगमद्य पुण्यम्–' इत्यादि पठित्वा पतति ।

वृद्धा—हा पुत्र ! हा वत्स ! हा गुरुजनवत्सल क्वासि ? देहि मे प्रतिवचनम् ।
हा पुत्त ! हा वच्छ ! हा गुरुग्रणवच्छल ! कहिं सि ! देहि मे पडिवग्रण ।

जीमूतकेतु—हा वत्स जीमूतवाहन ! हा प्रणयिजनवल्लभ ! हा सर्वगुणनिध !
क्वासि ? देहि मे प्रतिवचनम् ! [हस्तावुत्क्षिप्य]

> निराधार धैर्यं, कमिव शरणं यातु विनय ?
> क्षम[1] क्षान्ति[2] वोढु क इह ? विरता दानपरता ।
> हत सत्य सत्य, व्रजतु कृपणा[3] क्वाद्य करुणा ?
> जगज्जात शून्य त्वयि तनय ! लोकान्तरगते ॥ ३१ ॥

प्रणयिजनवल्लभ—प्रणयी स चासौ जन (कर्मधा०) तस्य वल्लभ तत्सम्बोधने—हे प्रेमी जनो के प्यारे !

अन्वय—तनय ! त्वयि लोकान्तरगते धैर्यम् निराधारम्, विनय कम् इव शरणम् यातु ? इह क्षान्तिम् वोढुम क क्षम ? दानपरता विरता, सत्यम् सत्यम् हतम् अद्य कृपणा करुणा क्व व्रजतु ? जगत् शून्यम् जातम ॥३१॥

निराधारम्—निर्गत आधार यस्य तत् (बहुव्री०)—आधार हीन ।

वोढुम्—√वह् + तुमुन्—धारण करने के लिए ।

विरता—वि + √रम् + क्त—मर चुकी ।

दानपरता—दानम् एव पर यस्य स (बहुव्री०) तस्य भाव—दानशीलता ।

सत्य सत्यम्—दो में से एक 'सत्य' क्रिया वि० के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

लोकान्तरगते—अन्य लोक इति लोकान्तरम् तत्र गते—परलोक चले जाने पर ।

---

1. समर्थ 2 क्षमा को 3 बिचारी ।

अथवा इस प्रलाप से क्या ? [*"सरघता पन्नगमेव पुरुषम्"—इत्यादि पढ़ कर गिर पड़ता है*]

वृद्धा—हाय पुत्र ! हाय वत्स ! हाय माता पिता के प्यारे ! कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो।

जीमूतकेतु—हा वत्स जीमूतवाहन ! हाय प्रेमी जनों के प्यारे ! हाय सब गुणों के भण्डार ! कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो। [*हाथों को उठाकर*] हे पुत्र ! तुम्हारे परलोक सिधारने पर धैर्य्य आधारहीन हो गया, नम्रता किस की शरण ले ? यहाँ क्षमा धारण करने में कौन समर्थ होगा ? दानशीलता मर चुकी। सत्य निस्सन्देह मारा गया। अब विचारी करुणा कहाँ जाए ? विश्व (ही) शून्य हो गया।

निराधार गते—अपनी सरलता एवं सहज सौन्दर्य के लिए यह श्लोक नाटक में विशिष्ट स्थान को प्राप्त किये हुए है।

इस का भावार्थ यह है कि धैर्य्य, नम्रता, शान्ति, दानशीलता, सत्य तथा करुणा जैसे गुणों के क्षत्र में नायक अद्वितीय था। उसके परलोक चले जाने पर इन समस्त गुणों का आधार-भूत स्तम्भ टूट गया है, अतः ये सब के सब निराश्रित हो गए हैं।

मलयवती—हा प्राय्य पुत्र[1] कथ परित्यज्य गतोऽसि ? प्रतिनिघृण मलयवति ! किं त्वया प्रक्षितव्यम् ? या एतावतीं वेलां जीवितासि ! हा ग्रज्जउत्त ! वह पर्वि च्चप्र गदासि ? प्रदिणिग्घिण मलग्रवदि ! किं तुए पक्खिदव्व ? जा एत्तिग्र वल जीविग्रासि ?

शङ्खचूड —हा कुमार ! क्वेम प्राणेभ्योऽपि वल्लभ[2] जन परित्यज्य गम्यते ? तदवश्यमन्वेति त्वा शङ्खचूड ।

गरुड —[सोद्वेगम्] कष्टम् ! ! उपरतो[3]ऽयं महात्मा । तत् किमिदानीं करोमि ।

वृद्धा—[सास्रमूर्ध्वमवलोक्य] भगव तो लोकपाला ! कथमप्यमृतेन सिक्त्वा पुत्रक मे जीवयत । भग्रवतो लोग्रपाला ! कह पि ग्रमिदेण सिंचिग्र पुत्तग्र म जीग्र वहि ।

गरुड—[महर्षमात्मगतम्] ग्रये ! ग्रमृतसङ्कीर्तनात्[4] साधु स्मृतम् । मन्ये प्रमृष्टमयश । तद् यावत् त्रिदशपतिमभ्यर्थ्य तद्विसृष्टेनामृतवर्षेण न केवल जीमूतवाहनम् एतानपि पूर्वभक्षितानस्थिशेषानाशीविषान्[5] प्रत्युज्जीवयामि । यदि न ददात्यसौ तदाऽहम् —

ग्रन्वेति—ग्रनु + √इ + लट पीछा करता है ।

उपरत —उप + √रम् + क्त—मर गया ।

लोकपाला —ससार के सरक्षक देवता । ग्राठ दिशाग्रो की रक्षा के लिए ग्राठ ही लोकपाल नियुक्त किए हुए हैं जिनके नाम क्रमश निम्न लिखित हैं— इन्द्र, वह्नि पितृपति नैर्ऋत वरुण मरुत कुबेर तथा ईश ।

सिक्त्वा—√सिच + क्त्वा—सींच कर ।

प्रमृष्टम्—प्र + √मृज + क्त—पोछा गया ।

---

1 निन्दी 2 प्रिय 3 उपरत =चल बसा 4 जिक्र से 5 आशीविषान् =सांपों को

मलयवती—हाय आर्यपुत्र ! छोड़ कर कैसे चले गए हो। अत्यन्त निष्ठुर मलयवती ! तुम ने (और) क्या देखना है जो इतनी देर तक जीवित हो ?

शङ्खचूड—हाय कुमार ! प्राणों से भी प्यारे इस व्यक्ति को छोड़ कर कहाँ जा रहे हो ? शङ्खचूड अवश्य ही तुम्हारा अनुसरण करेगा।

गरुड—[उद्विग्नता के साथ] दुःख ! यह महात्मा चल बसे। तो अब क्या करूँ ?

वृद्धा—[आँसुओं सहित ऊपर देख कर] हे श्रीमन् लोकपालो ! किसी प्रकार अमृत से सींच कर मेरे पुत्र को जिला दो।

गरुड—[हर्ष पूर्वक अपने आप] अमृत का जिक्र करने से खूब याद आया। मैं समझता हूँ (अब मेरी) बदनामी धुल गई। तो इन्द्र से प्रार्थना कर के उस से की गई अमृत की वर्षा से केवल जीमूतवाहन को ही नहीं बल्कि पहिले के खाए हुए अस्थि-मात्र शेष बचे इन साँपों को भी पुनर्जीवित करता हूँ। यदि वह नहीं देगा तो मैं

त्रिदशपतिम्—त्रिदशानां पतिम् देवताओं के स्वामी (इन्द्र) को। देवताओं को त्रिदश इस लिए कहते हैं क्योंकि उनकी केवल तीन ही दशाएं अथवा अवस्थाएं बाल्य कौमार तथा यौवन होती हैं, वृद्धावस्था तथा मृत्यु नहीं होती

अभ्यर्थ्य—अभि + $\sqrt{}$अर्थ + ल्यप् प्रार्थना करके

तद्विसृष्टेन—तेन विसृष्टेन (वि $\sqrt{}$सृज् क्त तृ० तत्पु०) उस से छोड़े हुए (अमृत) से।

अस्थिशेषान्—अस्थि एव शेषः येषां तान् (बहुव्री०) हड्डी मात्र ही शेष बचे हुए।

प्रत्युज्जीवयामि—प्रति + उत् + $\sqrt{}$जीव + णिच् लट् पुनर्जीवित करता हूँ।

पक्षोत्क्षिप्ताम्बुनाथ पटुतरजवनैः प्रेर्यमाणे समीरे [1]
नेत्राग्निप्लोषमूर्च्छाविधुर[2]विनिपतत्सानलद्वादशार्क ।
चञ्च्वा सञ्चूर्ण्य[3] शक्रा[4]शनि[5]धनद[6]गदाप्रेतलोकेश[7]दण्डान्
आजौ[8] निर्जित्य देवान् क्षणममृतमयीं वृष्टिमभ्युत्सृजामि ॥३२॥

तदय गतोऽस्मि ।

[इति साटोप[9] परिक्रम्य निष्क्रान्त ।]

जीमूतकेतु —वत्स शङ्खचूड ! किमद्यापि स्थीयते ? समाहृत्य दारुणि[10] पुत्रस्य मे विरचय चिता, येन वयमप्यनेन सहैव गच्छाम ।

अन्वय —पटुतरजवनैं प्रेर्यमाणे समीरे पक्षोत्क्षिप्ताम्बुनाथ नेत्राग्निप्लोष मूर्च्छाविधुरविनिपतत्साऽनलद्वादशार्क शक्राशनिधनदगदाप्रेतलोकेशदण्डान चञ्च्वा सञ्चूर्ण्य आजौ देवान् निर्जित्य क्षणम् अमृतमयीम वृष्टिम उत्सृजामि ॥ ३२ ॥

पक्षोत्क्षिप्ताम्बुनाथ —पक्षाभ्याम् उत्क्षित अम्बुनाथ (अम्बूना नाथ —जलों का स्वामी समुद्र) येन स (बहुव्री०)—पखा से उछाल दिया है समुद्र को जिस ने, वह ।

पटुतरजवनैं —पटुतर य जवन , तै —अधिक वेग वाली (हवाओ) से ।

प्रेर्यमाणे —प्र+√इर्+कमवाच्य+शानच्—प्रेरित की जाती हुई (हवाओ) से ।

नेत्रा०—नेत्रयो अग्निना य प्लोष (=दाह) तेन या मूर्च्छा तया विधुरं (=विह्वल) यथा स्यात् तथा विनिपतन्त सानला द्वादशार्का यस्य स (बहुव्री०)—आँखो की ज्वाला से (पैदा की गई) मूर्च्छा के दाह से व्याकुल बने हुए अग्नि सहित बारह सूर्यो को गिराता हुआ ।

---

1 पखों से 2 विधुर=व्याकुल 3 चूर चूर करके 4 शक्र=इन्द्र 5 अशनि=वज्र 6 धनद=कुबेर 7 प्रेतलोकेश=यमराज 8 युद्ध में 9 गर्व सहित 10 लकड़ियों को ।

(पखो से) से प्रेरित की गई अधिक वेग वाली हवाओं से तथा पखो से समुद्र को उछाल कर, आँखो की ज्वाला के दाह से व्याकुल बने हुए अग्नि सहित बारह सूर्यों को गिराता हुआ चाच से इन्द्र के वज्र को, कुबेर की गदा को यमराज के दण्ड को चूर चूर करके, देवताओं का युद्ध मे जीत कर क्षण भर के लिए अमृत की वर्षा करता हूँ।

ता यह मै चला। [इस प्रकार गर्व सहित घूम कर चला गया]

जीमूतकेतु—पुत्र शखचूड ! अब भी क्यो ठहरे हो ? लकडियो का इकट्ठा कर क मेरे पुत्र की चिता बनाओ, ताकि हम भी इस के साथ ही चल।

द्वादशार्का—बारह सूय व्याख्या क लिए देखिए IV 22

शक्र० शक्रस्य अशनिम् च धनदस्य गदाम् च प्रेतनाथस्य दण्ड च (द्वन्द्व) — इन्द्र क वज्र का, कुबेर की गदा को तथा यमराज क दण्ड को।

समाहृत्य सम्+आ √हृ+ल्यप् इकट्ठा कर के।

वृद्धा—पुत्र शङ्खचूड ! लघु सज्जय। दुःखमस्माभिर्विना भ्राता ते तिष्ठति।
पुत्त शङ्खचूड ! लहु सज्जेहि। दुक्खं अम्हेहिं विणा भादुणो दे चिट्ठदि।

शङ्खचूडः—[सास्रम्] यदाज्ञापयन्ति गुरवः। नन्वपत एवाहं युष्माकम्।
[उत्थाय चितारचनां कृत्वा] तात ! अम्ब ! सज्जीकृतेयं चिता।

जीमूतकेतुः—हा वत्स ! भोः। कष्टम् !!

उष्णीषः[1] स्फुट एष मूर्धनि विभात्यूर्णेयमन्तर्भ्रुवो-
श्चक्षुस्तामरसानुकारि हरिणा[2] वक्षःस्थलं स्पर्धते[3]।
चक्राङ्कौ चरणौ तथापि हि कथं हा वत्स मद्दुष्कृतै-[4]
स्त्वं विद्याधरचक्रवर्तिपदवीमप्राप्य विश्राम्यसि ॥ ३३ ॥

जीमूतकेतुः—देवि ! किमपरं रुद्यते ? तदुत्तिष्ठ, चितामारोहामः।

[सर्वे उत्तिष्ठन्ति]

मलयवती—[बद्धाञ्जलिरूर्ध्वं पश्यन्ती] भगवति गौरि ! त्वया आज्ञप्तं, यथा—
"विद्याधरचक्रवर्ती भर्ता ते भविष्यति" इति; तत् कथं मम मन्दभाग्यायाः
कृते त्वमप्यलीकवादिनी संवृत्ता ? भअवदि गोरि ! तुए आणत्तं, जहा
—"विज्जाहरचक्कवट्टी भट्टा दे भविस्सदि" त्ति, ता कहं मम मन्दभग्गाए
किदे तुमं पि अलीअवादिणी संवुत्ता ?

[ततः प्रविशतिससम्भ्रमा गौरी]

गौरी—महाराज जीमूतकेतो, न खलु न खलु साहसमनुष्ठातव्यम्।

जीमूतकेतुः—अये ! कथममोघदर्शना गौरी ?

गौरी—[मलयवतीमुद्दिश्य] वत्से ! कथमहमलीकवादिनी भवेयम् [नागर-
मुपसृत्य कमण्डलुजलेनाभ्युक्षन्ती[5]]

अन्वयः—मूर्धनि एषः उष्णीषः स्फुटं विभाति, भ्रुवोः अन्तः इयम् ऊर्णा
विभाति, चक्षुः तामरसानुकारि, वक्षःस्थलम् हरिणा स्पर्धते, चक्राङ्कौ
चरणौ तथापि हा वत्स ! त्वम् मद्दुष्कृतैः विद्याधरचक्रवर्तिपदवीम् अप्राप्य
कथं विश्राम्यसि ! ॥ ३३ ॥

1. मुकुट 2. शेर से 3. होड़ लेता है 4. दुष्कृते—कुकर्मों से 5. अभ्युक्षन्ती—छिड़कती
हुई।

वृद्धा—पुत्र शंखचूड ! जल्दी तैयार करो। हमारे बिना तुम्हारा भाई (जीमूतवाहन) दुःख से ठहरा होगा।

शंखचूड—[अश्रुओं सहित] जैसे गुरुजनों की आज्ञा। मैं तो आप के आगे ही हूँ। [उठ कर चिता को बना कर] पिता जी ! माता जी ! यह चिता तैयार कर दी गई है।

जीमूतकेतु—महान् शोक की बात है !

मस्तक पर मुकुट (की रेखा) स्पष्ट ही है। भ्रूवों के बीच में यह भौंरी (का चिह्न) है। नेत्र लाल कमल का अनुकरण करता है, छाती शर से होड लेती है। दोनों चरण चक्र से अङ्कित हैं तो भी हाय पुत्र ! मेरे कुकर्मों से तुम विद्याधरों के चक्रवर्ती का पद प्राप्त किए बिना ही कैसे विश्राम कर रहे हो ?

जीमूतकेतु—देवी ! और क्यों रो रही हो ? उठो चिता पर चढ़ते हैं।

[सब उठते हैं]

मलयवती—[हाथ जोड़कर ऊपर देखती हुई] हे भगवती गौरी ! तुमने आदेश दिया था कि, तुम्हारा पति विद्याधरों का चक्रवर्ती (राजा) होगा"। मुझ अभागिन के लिए तुम भी कैसे झूठ बोलने वाली हो गईं ?

[तब घबराहट के साथ गौरी प्रवेश करता है]

गौरी—महाराज जीमूतकेतु ! ऐसा साहस (का काम) निश्चय ही नहीं करना चाहिए।

जीमूतकेतु—अरे ! जिनका दर्शन निष्फल नहीं होता क्या (वही) भगवती गौरी हैं ?

गौरी—[मलयवती की ओर संकेत करके] बेटी ! मैं झूठ बोलने वाली कैसे हो सकती हूँ।

[नायक के पास आ कर कमण्डलु से जल छिड़कती हुई]

उष्णीष०—यह श्लोक 1 18 से मिलता जुलता है अतः इस की व्याख्या वहीं देखिए।

अलीकवादिनी—अलीकं वदति इति (उपपद तत्पु०)—झूठ बोलने वाली।

अनुष्ठातव्यम्—अनु+√स्था+तव्यत्—करना चाहिए।

अमोघदर्शना—न मोघं (=विफलं) दर्शनं यस्याः सा (बहुव्री०)—न निष्फल दर्शन वाली।

निजेन जीवितेनापि जगतामुपकारिण ।
परितुष्टाऽस्मि ते वत्स ! जीव जीमूतवाहन ॥ ३४ ॥

[नायक उत्तिष्ठति ।]

जीमूतकेतु —[सहर्षं] देवि ! दिष्ट्या वयसे ! प्रत्युज्जीवितो वत्स ।

वृद्धा—[भगवत्या प्रसादेन ।] भअवदीए पसादेण ।

[उभौ गौर्या पादयो पतित्वा नायकमालिङ्गत ।]

मलयवती—[गौर्या पादयो पतति] दिष्ट्या प्रत्युज्जीवित आर्यपुत्र । [सहर्ष] दिट्ठिआ पच्चुज्जीविदो अज्जउत्तो ।

नायक —[गौरीं दृष्ट्वा बद्धाञ्जलि] भगवति ! —

अभिलषिताधिकवरदे ! प्रणिपतितजनार्त्तिहारिणि ! शरण्ये !
चरणौ नमाम्यहं ते विद्याधरदेवते ! गौरि !

[इति गौर्या पादयो पतति ।] [सर्वे ऊर्ध्वं पश्यन्ति ।]

जीमूतकेतु —अये ! कथमनभ्रा वृष्टि !! भगवति ! किमेतत् ?

गौरी—राजन् जीमूतकेतो ! जीमूतवाहन प्रत्युज्जीवयितुमेतांश्चास्थिशेषान्[1]उरगपतीन् समुपजातपश्चात्तापेन पक्षिपतिना देवलोकादियममृतवृष्टि पातिता । [अङ्गुल्या निदिश्य] किं न पश्यति भवान् ?—

अन्वय —जीमूतवाहन ! निजेन जीवितेन अपि जगताम् उपकारिण ते परितुष्टा अस्मि, वत्स ! जीव ॥ ३४ ॥

प्रत्युज्जीवित —प्रति+उत्+√जीव्+क्त—पुन जीवित हो उठा ।

अन्वय —अभिलषिताधिकवरदे ! प्रणिपतितजनार्त्तिहारिणि ! शरण्ये ! विद्याधरदेवते ! गौरि ! ते चरणौ अहम् नमामि ॥ ३५ ॥

अभिलषिताधिकवरदे- अभिलषितात् अधिक वर ददाति इति (उपपद तत्पु०)।

प्रणिपतितजनार्त्तिहारिणि—प्रणिपतितानां जनानाम् आर्त्ति हरति इति तत्सम्बोधने (उपपद तत्पु०)—हे झुके हुए व्यक्तियो के दुख को हरने वाली ।

1 उरगपतीन् —नाग राजाओं को ।

अपने प्राणो से भी ससार का उपकार करने वाले तुझ पर, हे पुत्र ! मै प्रसन्न हूँ। जीमूतवाहन ! जी उठो।

[नायक उठ खड़ा होता है]

जीमूतकेतु—[हर्ष पूर्वक] देवी ! बधाई हो। पुत्र पुन जीवित हो गया।

वृद्धा—भगवती (गौरी) की कृपा से।

[दोनों गौरी के चरणों में गिर कर, नायक को गले लगाते हैं]

मलयवती—[हर्ष पूर्वक] सौभाग्य से प्राय पुत्र फिर जीवित हो उठे।

[गौरी के चरणों में गिरती है]

नायक—[गौरी को देख कर, हाथ बाधे हुए] हे भगवती !

मनोरथ से अधिक फल देने वाली ! झुके हुए व्यक्तियो के दुख को दूर करने वाली ! शरण देने वाली ! विद्याधर कुल की देवी, गौरी ! मैं तुम्हारे चरणो मे नमस्कार करता हूँ।

[इस प्रकार गौरी के चरणों में गिरता है]

[सब ऊपर देखते हैं]

जीमूतकेतु—अरे ! क्या बिना बादलो के वर्षा ! भगवती ! यह क्या ?

गौरी—हे राजन् जीमूतकेतु ! जीमूतवाहन तथा अस्थि शप इन नाग राजाओ को पुनर्जीवित करने के लिए, उत्पन्न हुए पश्चात्ताप वाले गरुड ने देवलोक से यह अमृत वर्षा की है। [अञ्जलि से सकेत कर के] क्या आप नहीं देखते?—

शरण्ये—शरण साधु (शरण+यत्+स्त्री०+टाप, तत्सम्बोधने)—हे शरण देने वाली।

अनभ्रा—न अस्ति अभ्र यस्या सा (बहुव्री०)—जिसमें बादल नहीं है वह (वर्षा)।

प्रत्युज्जीवयितुम्—प्रति+उद्+√जीव्+णिच्+तुमुन्—पुनर्जीवित करने के लिए।

समुपजातपश्चात्तापेन—समुपजात पश्चात्ताप यस्य स तेन (बहुव्री०)—पैदा हो गया है पश्चात्ताप जिसे, उस (गरुड) से।

सम्प्राप्ताखण्डदेहाः स्फुटफणमणिभिर्भासुरै[1]रुत्तमाङ्गै-
र्जिह्वाकोटिद्वयेन क्षितिम[2]मृतरसास्वादलोभाल्लिहन्तः ।
सम्प्र[3]त्याबद्धवेगा मलयगिरिसरिद्वारिपूरा इवामी
वक्रैः[4] प्रस्थानमार्गैर्विषधरपतयस्तोयराशिं[5] विशन्ति ॥ ३६ ॥

[नायकमुद्दिश्य] वत्स जीमूतवाहन ! न त्वं जीवितदानमात्रस्यैव योग्यः, तदयमपरस्ते प्रसादः ।—

हंसासाहतहेमपङ्कजरजः सम्पर्कपङ्कोज्झितै-
रुत्पन्नैर्मम मानसादुपनतैस्तोयैर्महापावनैः[6] ।
स्वेच्छानिर्मितरत्नकुम्भनिहितैरेषाऽभिषिच्य स्वयं
त्वां विद्याधरचक्रवर्तिनमहं प्रीत्या करोमि क्षणात् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सम्प्राप्ताऽखण्डदेहाः स्फुटफणमणिभि भासुरैः उत्तमांगैः अमृतरसास्वादलोभात् जिह्वाकोटिद्वयेन क्षितिम् लिहन्त, मलयगिरिसरिद्वारिपूरा इव आबद्धवेगाः अमी विषधरपतयः वक्रैः प्रस्थानमार्गै. सम्प्रति तोयराशिम् विशन्ति ॥ ३६ ॥

सम्प्राप्ताखण्डदेहाः —सम्प्राप्तः अखण्ड देह, यैः, ते (बहुव्री०) — अखण्ड शरीर प्राप्त किए हुए ।

स्फुटफणमणिभि. —स्फुटा ये फणाना मणय, तैः —फणो की उज्ज्वल मणियो से (देदीप्यमान सिरो से)

जिह्वाकोटिद्वयेन—जिह्वायाः कोटिः (=अग्रभागा.), तस्याः द्वयेन—जीभो के अग्रभागो के जोडे स ।

अमृतरसास्वादलोभात् —अमृतरसस्य य आस्वाद, तस्य लोभात्—अमृत के रसास्वादन के लोभ से । लिहन्त —√लिह् + शतृ—चाटते हुए ।

आबद्धवेगाः —आबद्ध वेगः यैः ते (बहुव्री०)—वेग बाँधे हुए ।

1. भासुरै =देदीप्यमान 2. क्षितिम् =भूमि को 3. सम्प्रति=अब 4 टेढे (मार्गो) से
5. तोयराशिम् = समुद्र को 6 महापावनै. =महा पवित्र ।

अपि च—

अग्रेसरीभवतु काञ्चनचक्रमेत-[1]
देष द्विपश्च[2] धवलो[3] दशनैश्चतुर्भिः[4] ।
श्यामो हरिर्मलयवत्यपि[5] चेत्यमूनि
रत्नानि ते समवलोकय चक्रवर्त्तिन् ॥ ३८ ॥

अपि च—आलोक्यन्ताममी शारदशशाङ्कनिर्मलबालव्यजनहस्ता मणिमरीचिरचितेन्द्रचापपतयो भक्त्यावनतपूर्वकाया प्रणमन्ति मतङ्गदेवादयो विद्याधरपतयः । तदुच्यतां, किं ते भूय[6] प्रियमुपकरोमि ?

नायकः—[जानुभ्यां स्थित्वा] अतः परमपि प्रियमस्ति ?—

प्राप्तोऽयं[7] शङ्खचूडः पतगपतिमुखाद्वैनतेयो विनीत-
स्तेन प्राग्भक्षिता ये विषधरपतयो जीविताःस्तेऽपि सर्वे ।
मत्प्राणाप्त्या विमुक्ता न गुरुभिरसवश्चक्रवर्तित्वमाप्तं,
साक्षात्त्वं देवि ! दृष्टा प्रियमपरमतः किं पुनः प्रार्थ्यते यत् ।३९।

अन्वयः—चक्रवर्त्तिन् ! एतत् काञ्चनचक्रम् ते अग्रेसरीभवतु, चतुर्भिः दशनैः धवलः द्विपः, श्यामः हरिः, अपि च मलयवती—अमूनि ते रत्नानि समवलोकय ॥ ३८ ॥

अग्रेसरीभवतु—अनग्रेसरः अग्रेसरः (अग्रे सरतीती—उपपद तत्पु०) सम्पद्यमान भवतु इति; अग्रेसर+च्वि+भू+लोट्—आगे चलने वाला होवे ।

अमूनि रत्नानि०—बौद्धिक विचार धारा के अनुसार राजा के पास निम्नलिखित सात रत्न होने चाहिएँ—चक्र, हस्ति, अश्व, स्त्री, मणि, गृहपति परिणायक । गौरी ने इन में से पहले चार रत्नों को ही गिनवाया है ।

शारदशशाङ्कनिर्मलबालव्यजनहस्ता—शारदः (शरदः प्रथम) स चासौ शशाङ्कः तद्वत् निर्मलानि यानि बालव्यजनानि तानि हस्तेषु येषां ते (बहुव्री०)—शरद् ऋतु के चन्द्रमा की तरह निर्मल चवरों को हाथ में लिए हुए ।

---

1. काञ्चनचक्र=सोने का चक्र 2 द्विप=हाथी 3. सफेद 4 दशनै=दाँतों से 5 हरि=घोड़ा 6. फिर, और 7 प्राप्त=बचाया गया ।

और भी —

यह सामने का चक्र सब से पहले तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होवे यह चार दाँतों से (युक्त) सफेद हाथी काला घोड़ा तथा मलयवती—ये तुम्हारे रत्न हैं। हे चक्रवर्ती! इन्हें अच्छी तरह रखो।

और भी — देखिए मुझ से प्रेरित किए गए शरद् ऋतु के चन्द्रमा की तरह निर्मल चवरों को हाथ में लिए चञ्चल चूडामणियों से इन्द्र धनुष के समूहों की रचना करते हुए श्रद्धा से झुके हुए सिरों वाले मतङ्गदेव आदि विद्याधर राजा नमस्कार कर रहे हैं। तो कहो, इस से अधिक तुम्हारा क्या उपकार करूँ?

नायक—[घुटनों के बल ठहर कर] इस से अधिक क्या प्रिय (हो सकता) है?

इस शङ्खचूड का पक्षिराज के मुख से रक्षा हो गई गरुड नम्र हो गया। उस से जो नाग पति पहले खाए गए थे वे सारे के सारे जीवित हो उठे मेरे प्राणों को (पुनः) पा लेने से माता पिता ने प्राण नहीं त्यागे। (मैंने) चक्रवर्ती की पदवी प्राप्त कर ली। हे देवी! आप के साक्षात् दर्शन हो गए। इस से अधिक क्या प्रिय (हो सकता) है जिस के लिए प्रार्थना करूँ।

मणिमरीचिरचितेन्द्रचापपङ्क्तयः मणीनां मरीचिभिः रचिता इन्द्रचापानां पङ्क्तयः यैः ते (बहुव्री०) —मणियों की किरणों से इन्द्र धनुषों की पंक्तियाँ बनाए हुए

नतपूर्वकायाः —अवनतः पूर्वकायः (—सिर) येषां ते (बहुव्री०) झुके हुए सिरों वाले।

अन्वय —पन्नगपतिमुखात् प्रथमं शङ्खचूडः त्रातः वनतेयः विनीतः प्राक् तनये विषधरपतयः भक्षिताः ते सर्वे अपि जीविताः मत् प्राणाप्त्या गुरुभिः असवः न विमुक्ताः चक्रवर्तित्वम् आप्तम् देवि! साक्षात् त्वम् दृष्टा अतः परम् किम् यत् पुनः प्रार्थ्यते ॥ ३६ ॥

तथाऽपीदमस्तु [भरतवाक्यम्]

वृष्टिं[1] हृष्टशिखण्डिताण्डवभृतो मुञ्चन्तु काले घनाः,
कुर्वन्तु प्रतिरूढसन्ततहरिच्छस्योत्तरीयां क्षितिम्[2] ।
चिन्वानाः सुकृतानि[3] वीतविपदो निर्मत्सरैर्मानसै-
र्मोदन्तां[4] सततं[5] च बान्धवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजाः ॥ ४० ॥

अपि च—

शिवमस्तु[6] सर्वजगतां, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः[7] ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ ४१ ॥

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति पञ्चमोऽङ्कः

समाप्तमिदं नागानन्दम् नाम नाटकम्

भरत वाक्य—संस्कृत नाटक आशीर्वाद एवं प्रार्थना के साथ समाप्त होता है। इस में प्रभु से जन साधारण के लिए घन धान्य, सुख शांति तथा ऐश्वर्य का वरदान माँगा जाता है। इसी प्रार्थना को भरत वाक्य कहते हैं। इसे नाटक के सभी पात्र रंगमञ्च पर मिल कर गाते हैं।

अन्वय—काले हृष्टशिखण्डिताण्डवभृतः घनाः वृष्टिम् मुञ्चन्तु, प्रतिरूढ सन्ततहरिच्छस्योत्तरीयाम् क्षितिम् कुर्वन्तु, निर्मत्सरैः मानसैः सुकृतानि चिन्वानाः, वीतविपदः घनवद्बान्धवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजाः मोदन्ताम् ॥ ४० ॥

हृष्टशिखण्डिताण्डवभृत—हृष्टाः ये शिखण्डिनः (=मयूराः), तेषां ताण्डवं बिभ्रतीति (उपपद तत्पु०)—प्रसन्न हुए मोरों के ताण्डव नृत्य को धारण करने वाले (बादल)।

प्रतिरूढ०—प्रतिरूढम् (प्रति + $\sqrt{}$रुह् + क्त—उगी हुई) सततं यत् हरित् शस्यं तदेव उत्तरीयं यस्याः ताम् (बहुव्री०)—उगी हुई सदा हरी फसल की

---

1 वर्षा को 2 भूमि को 3 पुण्यों को 4 आनन्द मनाएँ 5 सदा 6 शिवम्=कल्याण 7 प्राणी समूह।

तो भी यह होवे—

[भरत वाक्य]

प्रसन्न हुए मोरों के ताण्डव-नृत्य को धारण करते हुए बादल समय पर वर्षा करते रहें, (तथा) पृथ्वी को उग हुए सदा हरी फसलों की चादर प्रोढ़े हुए बनाए रखें। द्वेष-रहित मन से पुण्यों का उपार्जन करते हुए, विपत्तियों से रहित प्रजा गण बन्धुजनों तथा मित्रों की मण्डलियों में आमोद पूर्ण हो कर सदा आनन्द मनाते रहें।

और भी—

सर्व विश्व का कल्याण हो, प्राणी समूह परोपकार में लगा रहे, (काम क्रोध आदि) दोष नष्ट हो जाएँ लोग सब जगह सुखी हों।

[सब चले गए]

पाचवा अङ्क समाप्त

चादर वाली (पृथ्वी) को।

चिन्वाना—√चि+शानच्—बटोरते हुए।

वीतविपद —वीता (वि+√इ+क्त—चली गई) विपद् याम्यः, ता (बहुव्री०)—नष्ट हो गई है विपत्ति जिन की, वे (प्रजा गण)।

निर्मत्सरं —निर्गत मत्सर येभ्य, तं (बहुव्री०)—द्वेष रहित (मनो) से।

बान्धव०—बान्धवाश्च सुहृदश्च (द्वन्द्व) तथा गोष्ठीषु प्रमोद यासां ते (बहुव्री०) —बन्धुओं तथा मित्रों की मण्डलियों में आनन्द मय बने (हुए प्रजागण)।

अन्वयः—सर्वजगताम् शिवम् अस्तु, भूतगणा परहितनिरता भवन्तु, दोषा नाशम् प्रयान्तु, सर्वत्र लोक सुखी भवतु ॥ ४१ ॥

परहितनिरता —परेषा हिते निरता (नि+√रम्+क्त)—दूसरों के हित में लगे हुए।

परिशिष्ट

कुछ आवश्यक बातें

(१) नाटक से सम्बन्धित प्रश्न-पत्र में कम से कम एक प्रश्न श्लोकों तथा गद्य-भागों के हिन्दी में अनुवाद के सम्बन्ध में होता है। इस प्रश्न का उत्तर देते समय विद्यार्थी प्राय भूल जाते हैं कि अनुवाद और व्याख्या में क्या अन्तर है। कई विद्यार्थी संस्कृत पाठ में शब्दों की परवाह न करते हुए हिन्दी अनुवाद में अपनी ओर से बहुत सी आवश्यक सामग्री घुसेड़ देते हैं। अनुवाद यथासम्भव शाब्दिक होना चाहिए किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करने से अर्थ की स्पष्टता में कोई कमी न आए। अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हिन्दी अनुवाद में यदि कोई शब्द अपनी ओर से जोड़ने आवश्यक प्रतीत हों तो उन्हें कोष्ठों में लिखना चाहिए। प्रस्तुत नाटक के हिन्दी अनुवाद में हम ने प्राय इसी शैली को अपनाया है।

अनुवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पद्यों तथा गद्य-खण्डों की सूची इसी परिशिष्ट में आगे दे दी गई है। छात्रों की सुविधा के लिए नाटक में आए समस्त पद्यों की सूची भी साथ ही दे दी गई है।

(२) एक अन्य प्रश्न सप्रकरण अथवा प्रसंग सहित व्याख्या से सम्बद्ध होता है। प्राय ऐसे स्थल पूछे जाते हैं जहाँ जीवन अथवा जगत् के किसी सर्व सामान्य तथ्य का प्रतिपादन हुआ हो जहाँ कोई पौराणिक अथवा ऐतिहासिक संकेत हो, जहाँ किसी सुन्दर उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का विधान हो, जहाँ किसी पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली कोई विशेष उक्ति हो. . इत्यादि। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निम्न बातों का उल्लेख आवश्यक है—

(क) उद्धरण के वक्ता का नाम, (ख) वह परिस्थिति जिस से प्रेरित हो कर वक्ता ने वे शब्द कहे हैं, (ग) प्रयुक्त उपमा आदि का स्पष्टीकरण, (घ)

पौराणिक तथा ऐतिहासिक संकेत पर टिप्पणी (ङ) भावार्थ, (च) अन्त में अपनी ओर से कुछ शब्द।

नाटक में सप्रकरण व्याख्या के लिए आवश्यक अपेक्षित पद्यांशों एवं गद्यांशों का संकलन भी आगे चल कर इसी परिशिष्ट में कर दिया गया है।

(३) कभी कभी नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों पर टिप्पणियां भी पूछी जाती हैं। नाटक में ऐसे पारिभाषिक शब्द जहाँ कहीं भी आए हैं उन पर वहीं उसी पृष्ठ पर ही टिप्पणी लिख दी गई है। इस सम्बन्ध में प्रश्नों की सूची में १३ वें प्रश्न का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए। जिन पृष्ठों पर पारिभाषिक तथा अन्य शब्दों की व्याख्या दी गई है, वे प्रश्न में शब्दों के आगे कोष्ठों में लिख दिए गए हैं।

(४) नाटक के रचयिता, नाटक की कथा वस्तु चरित्र-चित्रण नाटककार की कला आदि के सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछे जा सकते हैं। नाटक की भूमिका जो कि अत्यन्त सरल तथा सरस शैली में लिखी गई है ध्यान से पढ चुकने पर ऐसे किसी भी प्रश्न का उत्तर संतोषजनक ढङ्ग से दिया जा सकता है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ ऐसे सम्भव प्रश्न परिशिष्ट के अन्त में दिए गए हैं। उन के उत्तर तय्यार करने के लिए भूमिका के सम्बन्धित पृष्ठों में दी हुई सामग्री की सहायता लेनी चाहिए।

(५) कभी कभी प्राकृत की संस्कृत छाया देने के सम्बन्ध में प्रश्न दिया जाता है। उस के लिए संस्कृत प्राकृत के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाले नियम सोदाहरण दे दिए गए हैं। विद्यार्थियों को नाटक पढते समय भी प्राकृत से संस्कृत में रूपान्तरित पाठ ध्यान से पढना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास ही इस प्रश्न का सफल उत्तर देने में सहायक हो सकता है। प्राकृत से संस्कृत बनाने के नियमों की सोदाहरण व्याख्या इसी परिशिष्ट में मिलेगी।

महत्त्वपूर्ण प्रष्टव्य स्थल

पद्य

प्रथम अङ्क—१, ५, ६ ८, १० १२ १५ १७ २०

द्वितीय अङ्क—२, ३, १० १३

तृतीय अङ्क—५ ७ ८, ९, १५ १६, १८

चतुर्थ अङ्क—२, ३, ९, १०, १३, १५, २२, २५, २८

पञ्चम अङ्क—२ १२ १३, १७ २०, २१, २४ ३० ३६, ३९

गद्य खण्ड

		पृष्ठांक
सूत्रधार —अलमतिविस्तरेण	निश्चय ।	६, ८
विदूषक —भो	अलं हवोअदु ।	१६
नायक —अद्यैव	गच्छाव ।	२०, २२
विदूषक —भो वअस्स	मलअमारुदो ।	२२
विदूषक —भो	सिद्धकुलसम्भवत्ति ।	४०
मलयवती —हञ्जे	णिव्वत्तइस्सदि ।	४२
तापस —आज्ञापितोऽस्मि	महापुरुषस्य ।	५०
विदूषक भो दिट्ठ	करेमि ।	५६
नायिका—भअव	अवलोएहि ।	६४
मित्रावसु इदमभिहितम्	प्रेषयामि ।	१६७
शङ्खचूड —भो महासत्त्व	चिन्त्यताम ।	१८२
गरुड —अये ! करुणार्द्रचेतसा	प्रतिपालयामि ।	२३८

सप्रकरण व्याख्या के लिए प्रष्टव्य स्थल

क्रमांक		पृष्टाङ्क
१	अथवा कथमहं गुरुचरणपरि चर्य्यासुख परित्यज्य गृहे तिष्ठामि ।	१२
२.	आयासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद् गुण ।	१६
३.	अहो ! अस्य गुरुजनशुश्रूषानुराग ।	१८
४	ननु स्वशरीरात् प्रभृति सर्वं परार्थमेव मया परिपाल्यते ।	२०
५.	कथमतिथिसपर्यां शिक्षिता शाखिनोऽपि ।	३०
६	वन्द्याः खलु देवता ।	३४
७	वयस्य ! अहो गीतम् ! अहो वाद्यम् !	३६
८.	निर्दोषदर्शनाः कन्यका भवन्ति ।	३८
९	अथवा नहि नहि ममैव एकस्य ब्राह्मणस्य ।	४२
१०.	ननु हृदयस्थितो वरो देव्या दत्त ।	४४
११	मम पठितविद्यामिव मुहूर्तं धारयामि ।	४६
१२.	चिरात् खलु युक्तकारी विधि स्यात् यदि युगलमेतदन्योन्यानुरूप घटयेत ।	५२
१३.	सर्वस्याभ्यागतो गुरु ।	
१४.	अहो अस्या शून्यहृदयत्वम् ।	६२
१५	मम पुनरनपराद्धामप्यबलेति श्रुत्वा प्रहरन्त कथ रूज्जसे ।	६४
१५	किं मधुमथनो वक्षःस्थलेन लक्ष्मीमनुद्वहन् निर्वृतो भवति ।	६८
१७	किं स्वजन प्रिय वर्जयित्वाऽन्यद् भणितु जानाति ।	६८
१८.	वयस्य सङ्कटे पातिता स्म ।	९०
१९.	किन्तु न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यत प्रवर्तयितुम् ।	९०
२०.	कथ मैवेयमस्यन्मनोरथभूमि ।	९४
२१.	कस्त्व निवारयितुम् । कथ मरणेऽपि किं त्वमेवाभ्यर्थनीय ।	९६
२२.	अथवा रत्नाकरादृते कुतश्चन्द्रलेखायाः प्रसूतिः ।	९८
२३.	अन्योन्यदर्शनकृत ·· पुण्यवताम् ।	१०४

प्राकृत से संस्कृत बनाने के नियम

जब शिक्षित वर्ग की दैनिक बोल-चाल की भाषा संस्कृत थी और साहित्य-सृजन भी संस्कृत के माध्यम द्वारा होता था, उस समय अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित जन-साधारण की भाषा प्राकृत थी। जिस प्रकार आज भी हमें अपनी प्रादेशिक अथवा देहाती बोली में रचित सुन्दर साहित्य मिलता है, उसी प्रकार प्राकृत ने भी हमें कई स्वतन्त्र महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएं दी हैं। संस्कृत नाटकों में भाषा का यह विधान होता है कि नाटक के मुख्य पुरुष-पात्र संस्कृत बोलते हैं। शेष सभी पात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं। हाँ, अति शिक्षित तथा उच्चगुण सम्पन्न स्त्री-पात्र संस्कृत बोलते हैं।

प्राकृत तथा संस्कृत के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाले कुछ नियम निम्नलिखित हैं।

(१) प्राकृत वर्ण-माला में ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, न, श, ष और विसर्ग नहीं होते।

(२) संस्कृत शब्दों की 'ऋ' प्राकृत के शब्दों के 'अ' में बदल जाती है जैसे, गृहीत=गहिद, कभी कभी 'इ' में जैसे तादृशम्=तादिस, कभी कभी 'ई' में जैसे हृदयसे=दीससि; कभी 'उ' में जैसे पृच्छामि=पुच्छिस्स; कभी कभी 'रि' में जैसे ईदृशेन=ईरिसेण।

यदि ऋ से पूर्व कोई संयुक्त अक्षर हो तो उच्चारण में सहायता के लिए ह्रस्व 'अ' का आगम होता है जैसे स्मृत्वा=सुमरिअ।

(३) ऐ, औ क्रमशः ए, ओ में बदल जाते हैं जैसे नैमिश=णेमिस; कौतूहल=कोदूहल।

व्यञ्जन

(४) न, श तथा ष क्रमशः ण, स तथा स में बदल जाते हैं जैसे वनवासः=वणवासो; कुशलम्=कुसल; एषः=एसो।

(५) आरम्भ में आने वाला 'य' 'ज' में बदल जाता है, जैसे यदि=जदि।

(६) ख, घ, थ, ध, फ, भ को ह हो जाता है जैसे मुखम्=मुहं, राघवाः=

राहत्रा, पथि=पहि नामधयम्=णामहेग्र, निभृत=णिहुद।

(७) ट और ठ ड और ढ में बदल जाते है जैसे मटप=मडा, पठ=पढ।

(८) 'प' प्राय 'व' में बदल जाता है जैस ग्रपि=ग्रवि।

(९) पद के मध्य या ग्रन्त में ग्राने पर क, ग, च, ज, त, द, प, प, तथा व का प्राय लोप हो जाता है जैस सगर=सग्रर, सादरम्=साग्रर, इत्यादि।

(१०) ग्रतिम म् ग्रनुस्वार में बदल जाता है जैस त्वम्=तुम।

सयुक्त ग्रक्षर

(११) सयुक्त ग्रक्षर से ग्रारम्भ होने वाले सस्कृत पद जब प्राकृत में बदलते है तो उनका कवल एक ही व्यञ्जन रह जाता है, दूसरे का लोप हो जाता है। जैमे श्वापद=सावद, प्रिय=पिग्र इत्यादि।

(१२) सयुक्त ग्रक्षरो के ग्रादि में यदि क् ग, ड, त्, द्, प्, ष् में से कोई हो तो उस का लोप हो जाता है ग्रौर ग्रगल वर्ण का द्वित्व हो जाता है जैसे भक्त=भत्त ग्रद्य=ग्रज्ज इत्यादि।

(१३) सयुक्त ग्रक्षरो में म् न्, य् का लोप हो जाता है ग्रौर उन से पहले के वर्ण को द्वित्व हो जाता है जैसे लग्न=लग्ग, इत्यादि।

(१४) सयुक्त ग्रक्षर में ल, व्, र्, का लोप हो जाता है ग्रौर उन से पहले ग्रथवा पीछे वर्ण को द्वित्व हो जाता है जैसे, विक्लव=विक्कव, सर्प=सप्प, इत्यादि।

(१५) त्य को च्च थ्य को च्छ, ध्य को ज्झ, द्य को ज्ज हो जाता है जैसे, परित्यक्त=परिच्चत, ग्रध्ययन=ग्रज्झयण, ग्रद्य=ग्रज्ज।

(१६) त्स को च्छ ग्रौर प्स को च्छ हो जाता है जैसे वत्स=वच्छ, ग्रप्सरसाम् =ग्रच्छराण।

(१७) क्ष को क्ख हो जाता है जैसे पक्षिण=पक्खिणो।

(१८) खलु, ग्रपि, इव, ग्रत्र, एव, पुनर्, दर्शन, भवान् तथा प्रथमम् क्रमश खु, विग्र, एव्व, एत्थ, उण, दसण, भव, तथा पुढम में बदल जाते है।

(१९) प्राकृत में द्विवचन तथा ग्रात्मनेपद नही होते।

(२०) प्राकृत में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।

पद्यानामनुक्रमणी

Important Questions

1 Give the detailed Summary of the play 'नागानन्दम्'।
2 Explain the significance of the title 'नागानन्दम्'। (P 2)
3 Discuss the authorship of the plays ascribed to Harsha
4 "The three plays ascribed to Harsha possess remarkable similarities and are therefore the creations & one of the same author"— Discuss
5 Write a note on the sources of the नागानन्दम् Enumerate & account for the changes introduced by the dramatist
6 "The Play नागानन्दम् has a Buddhistic colouring" Say how far the above statement is correct ?

Or

Harsha has effected a happy synthesis between Hindusim &Buddhisim in his play नागानन्दम् ' —Dicuss

Or

"If Shri Harsha intended to sing the glories of Buddhisim in this play(नागानन्दम्) he must be condemned as a very poor artist " How for do you agree ?

7 "Harsha is said to be a clever borrower ' Illustrate this remark with special reference to his play 'नागानन्दम्'।
8 Give a critical appreciation of [the play नागानन्दम्, with special reference to the construction of the plot
9. Write a detailed note on the Dramatic qualities of Shri Harsha with special reference to his characterisation, his style and language in the play नागानन्दम्

10 "There is a decided lack of harmony between the two distinct parts of the drama but the total effect is far from unsuccessful " — Dicuss this statement of Dr keith

Or

Explain how far Harsha is successful in connecting the two totally distinct parts of the play

11 Trace the character sketches of the following —

1 जीमूतवाहन 2 शङ्खचूड़ 3 मलयवती 4 विदूषक ।

12 Give an account of the personal life of king Harsha with special reference to his attainments in the field of art & literature

Note — The Numbers given in brackets indicate the pages on which notes on these words can be found

13 Write brief *notes* on the following

(a) नान्दी (२) विदूषक (१६) सूत्रधार (६) प्रामुखम् (१?) विष्कम्भक (१५२) प्रवेशक (६०) भरतवाक्य (२३०) कञ्चुकी (१५०) [illegible] (१८) प्रवाराम्यं (४५) पटाक्षेपेण (१६०) नेपथ्य (५) ।

(b) इन्द्रायुध (६) कल्पद्रुम (१६) मदनावस्था (८८) गौरी (३६) कुसुमाकर (८०) गन्धर्व विवाह (१०१) रक्ताशुकयुगलम् (११३) वध्यपट (११८) दृष्टिपातोऽथवा (१६०) मलयवती (१६३) आविमन्य (६) ।